

# अहर्त् वचन

वर्ष - 14, अंक - 2 - 3  
Vol. - 14, Issue - 2 - 3

अप्रैल - सितम्बर 2002  
April-September 2002

विशेष आवरण

25-4-2002

Special Cancellation



नसीयाँ जैन मन्दिर, अजमेर

NASIYAN JAIN TEMPLE, AJMER-305001



100  
भारत INDIA



300  
भारत INDIA

भगवान महावीर 2600 वां जन्म कल्याणक

BHAGWAN MAHAVIRA 2600th JANM KALYANAK

विश्ववन्द्य तीर्थकर महावीर के 2600 वें जन्मकल्याणक वर्ष में जारी विशेष आवरण

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

KUNDAKUNDA JÑANAPĪTHA, INDORE



# कुण्डलपुर पर एक प्रामाणिक सन्दर्भ ग्रन्थ की जरूरत

– आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज



गत 7 मई को इन्दौर के जैन पत्रों के 4 सम्पादकों का एक दल पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के दर्शन एवं उनसे सामयिक विषयों पर मार्गदर्शन प्राप्त करने सिद्धोदय सिद्धक्षेत्र नेमावर (जिला देवास - म.प्र.) गया था। दल में निम्न सदस्य सम्मिलित थे -

1. श्री माणिकचन्द पाटनी, प्रधान सम्पादक - परिणय प्रतीक
  2. श्री जयसेन जैन, सम्पादक - सन्मति वाणी
  3. श्री रमेश कासलीवाल, सम्पादक - वीर निकलंक तथा
  4. डॉ. अनुपम जैन, सम्पादक - अर्हत् वचन एवं प्रधान सम्पादक - महासमिति पत्रिका।
- पूज्य आचार्यश्री ने लगभग 2.5 घंटे की चर्चा में विभिन्न विषयों पर महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान किया।
1. भगवान महावीर 2600 वें जन्मजयन्ती महोत्सव वर्ष की चर्चा के सन्दर्भ में आपने कहा कि मेरा सदैव से स्पष्ट मत है कि हमें अपने मन्दिरों एवं मूर्तियों के निर्माण में शासन से पैसा नहीं लेना चाहिये, यह हमारी श्रद्धा का विषय है। इस कार्य में भक्तों के द्वारा ही राशि लगनी चाहिये।
  2. कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की गतिविधियों पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए आपने श्री देवकुमारसिंहजी कासलीवाल, डॉ. अनुपम जैन एवं उनके सभी सहयोगियों को आशीर्वाद दिया।
  3. बहुचर्चित भगवान महावीर जन्मभूमि प्रकरण पर अपनी राय व्यक्त करते हुए आचार्यश्री ने कहा कि तीर्थकरों की जन्मभूमि का निर्णय दिगम्बर जैन आगमों के आधार पर ही होना चाहिये। आपने कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ को आदेश दिया कि वे परम्परामान्य एवं आगमसम्मत महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) के पक्ष में सभी प्रामाणिक सन्दर्भों को संकलित कर इसके विरोध में उठाये जा रहे प्रश्नों का तर्कपूर्ण समाधान प्रस्तुत करने वाली प्रस्तुत का सृजन कराये। इससे विवादों को विराम मिलेगा।
- डॉ. अनुपम जैन ने इस समय एवं श्रमसाध्य कार्य के यथाशीघ्र क्रियान्वयन का विश्वास दिलाया।

# अर्हत् वचन ARHAT VACANA

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर द्वारा मान्यता प्राप्त शोध संस्थान), इन्दौर द्वारा प्रकाशित शोध त्रैमासिकी

Quarterly Research Journal of Kundakunda Jñānapīṭha, INDORE  
(Recognised by Devi Ahilya University, Indore)

वर्ष 14, अंक 2 - 3  
Volume 14, Issue 2-3

अप्रैल - सितम्बर 2002  
April - September 2002

मानद - सम्पादक

डॉ. अनुपम जैन

गणित विभाग

शासकीय होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय,

इन्दौर - 452 017 भारत

☎ 0731 - 787790, 545421 ☐ E.mail : anupamjain3@rediffmail.com

HONY. EDITOR

DR. ANUPAM JAIN

Department of Mathematics,

Govt. Holkar Autonomous Science College,

INDORE - 452 017 INDIA



प्रकाशक

देवकुमार सिंह कासलीवाल

अध्यक्ष - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ,

584, महात्मा गाँधी मार्ग, तुकोगंज,

इन्दौर 452 001 (म.प्र.)

☎ (0731) 545744, 545421 (O) 434718, 543075, 539081, 454987 (R)

PUBLISHER

DEOKUMAR SINGH KASLIWAL

President - Kundakunda Jñānapīṭha

584, M.G. Road, Tukoganj,

INDORE - 452 001 (M.P.) INDIA

## सम्पादक मंडल / Editorial Board 2001 - 2002

प्रो. लक्ष्मी चन्द्र जैन  
सेवानिवृत्त प्राध्यापक - गणित एवं प्राचार्य  
जबलपुर - 482 002

प्रो. राधाचरण गुप्त  
सम्पादक - गणित भारती,  
झांसी - 284 003

प्रो. पारसमल अग्रवाल  
रसायन भौतिकी समूह, रसायन शास्त्र विभाग  
ओक्लेहोमा विश्वविद्यालय,  
स्टिलवाटर OK 74078 USA

डॉ. तकाओ हायाशी  
विज्ञान एवं अभियांत्रिकी शोध संस्थान,  
दोशीशा विश्वविद्यालय,  
क्योटो - 610 - 03 जापान

श्री सूरजमल बोबरा  
निदेशक - ज्ञानोदय फाउन्डेशन  
इन्दौर - 452 003

डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज'  
शोधधिकारी - सिरि भूवलय परियोजना  
इन्दौर - 452 001

Prof. Laxmi Chandra Jain  
Retd. Professor - Mathematics & Principal  
Jabalpur - 482 002

Prof. Radha Charan Gupta  
Editor - Ganita Bharati,  
Jhansi - 284 003

Prof. Parasmal Agrawal  
Chemical Physics Group, Dept. of Chemistry  
Oklahoma State University,  
Stillwater OK 74078 USA

Dr. Takao Hayashi  
Science & Tech. Research Institute,  
Doshisha University,  
Kyoto - 610 - 03 Japan

Shri Surajmal Bobra  
Director - Jñānodaya Foundation  
Indore - 452 003

Dr. Mahendra Kumar Jain 'Manuj'  
Research Officer - Siri Bhuvalaya Project  
Indore - 452 001

### सम्पादकीय पत्राचार का पता

डॉ. अनुपम जैन

'ज्ञान छाया',

डी - 14, सुदामा नगर,

इन्दौर - 452 009

फोन/फैक्स : 0731 - 787790

Dr. Anupam Jain

'Gyan Chhaya',

D - 14, Sudama Nagar,

Indore - 452 009

Ph./Fax : 0731 - 787790

## सदस्यता शुल्क / SUBSCRIPTION RATES

	व्यक्तिगत INDIVIDUAL	संस्थागत INSTITUTIONAL	विदेश FOREIGN
वार्षिक / Annual	रु./Rs. 125=00	रु./Rs. 250=00	U.S. \$ 25=00
10 वर्ष हेतु / 10 Years	रु./Rs. 1000=00	रु./Rs. 1000=00	U.S. \$ 250=00
सहयोगी सदस्य	रु./Rs. 2100=00	रु./Rs. 2100=00	U.S. \$ 500=00

पुराने अंक सजिल्ड फाइलों में रु. 500.00/U.S.\$ 50.00 प्रति वर्ष की दर से सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं। सदस्यता एवं विज्ञापन शुल्क के म.आ./चेक/ड्राफ्ट कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के नाम देय ही प्रेषित करें। इन्दौर के बाहर के चेक के साथ कलेक्शन चार्ज रु. 25/- अतिरिक्त जोड़कर भेजें।

लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों के लिये वे स्वयं उत्तरदायी हैं। सम्पादक अथवा सम्पादक मण्डल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। इस पत्रिका से कोई भी आलेख पुनर्मुद्रित करते समय पत्रिका के सम्बद्ध अंक का उल्लेख अवश्य करें। साथ ही सम्बद्ध अंक की एक प्रति भी हमें प्रेषित करें। समस्त विवादों का निपटारा इन्दौर न्यायालयीन क्षेत्र में ही होगा।





# अनुक्रम / INDEX

सम्पादकीय - परम्परा के बिना प्रगति संभव नहीं	5
प्रकाशकीय अनुरोध	13
<b>लेख / ARTICLES</b>	
आचार्य श्रीधर और उनका गणितीय अवदान	15
□ डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर), ममता अग्रवाल (मेरठ) एवं प्रशांत तिलवनकर (इन्दौर)	
गणनकृति : स्वरूप एवं विवेचन	31
□ डॉ. उदयचन्द जैन (उदयपुर)	
जैन दर्शन मान्य काल द्रव्य	35
□ समणी मंगलप्रज्ञा (लाड़नूँ)	
काल विषयक दृष्टिकोण	41
□ ब्र. स्नेहरानी जैन (सागर)	
बीसवीं शताब्दी में जैन गणित के अध्ययन की प्रगति	51
□ डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर)	
<b>A Brief Review of the Literature of Jain Karmic Theory</b>	69
□ Ujjawala N. Dongaonkar (Nagpur), Prof. T.M. Karade (Nagpur) and Prof. L.C. Jain (Jabalpur)	
<b>Ācārya Virasena and his Mathematical Contribution</b>	79
□ Pragati Jain (Indore) and Dr. Anupam Jain (Indore)	
<b>K.D. Theory of Time and Conciousness</b>	91
□ Dilip Suraana (Kolkata)	

## टिप्पणियाँ / SHORT NOTES

- जैन गणित के प्रथम विदेशी प्रचारक - डॉ. डेविड यूजीन स्मिथ 99  
□ प्रो. राधाचरण गुप्त (झाँसी)

### A Little Known 19th Century Study of the Ganita-Sāra-Saṁgraha 101

- Prof. R.C. Gupta (Jhansi)

- जैन गणित के अध्ययन का एक गतिशील केन्द्र - होल्कर स्वशासी 103  
विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर  
□ प्रो. श्रेणिक बंडी (इन्दौर)

- श्रुत पंचमी ऐसे मनायें 105  
□ लालचन्द जैन 'राकेश' (गंजबासोदा)

- ध्यान : एक यात्रा (अ) ज्ञात के उस पार 108  
□ एन. एन. सचदेवा (इन्दौर)

- धर्म एवं विज्ञान 109  
□ जतनलाल रामपुरिया (कोलकाता)

- जैन गणित को समर्पित - आर्यिका श्री विशुद्धमती माताजी 111  
□ डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर)

## आख्या / REPOTS

- श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार समर्पण समारोह, केकड़ी - 2002 113  
□ जयसेन जैन (इन्दौर)

- गोपाचल : दशा एवं दिशा, राष्ट्रीय संगोष्ठी, ग्वालियर 115  
□ डॉ. अभयप्रकाश जैन (ग्वालियर)

- सिरिभूवल्लय अनुसंधान परियोजना - बढ़ते कदम 119  
□ डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज' (इन्दौर)

## पुस्तक समीक्षाएँ / BOOK REVIEWS

### Ganita-Sāra-Saṁgraha with Kannada Translation by Padmavathamma 124

- Dr. Anupam Jain

- गतिविधियाँ 125

- मत - अभिमत 143





## परम्परा के बिना प्रगति संभव नहीं

डॉ. ओम नागपाल स्मृति व्याख्यान

परम पुनीत दशलक्षण पर्व के मध्य भाद्रपद शुक्ला षष्ठी तदनुसार 12 सितम्बर 2002 की शाम अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। इस दिन इन्दौर के प्रसिद्ध रवीन्द्र नाट्य गृह सभागार में प्रथम डॉ. ओम नागपाल स्मृति व्याख्यान देते हुए भारत के केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्री एवं प्रसिद्ध भौतिकविद् डॉ. मुरली मनोहर जोशी ने कहा कि 'परम्परा के बिना प्रगति संभव नहीं है। यदि हमें लम्बी छलांग लगानी है तो एक पैर उठाने के साथ ही दूसरा पैर मजबूती के साथ जमीन पर रखना होगा। जमीन पर रखा हमारा पैर ही परम्परा का द्योतक है। जो दूसरे पैर प्रगति की लम्बी छलांग का आधार बनाता है।'

विज्ञान की भारतीय परम्परा शीर्षक अपने धारा प्रवाह सरल, सरस, किन्तु तार्किक एवं ज्ञानवर्द्धक उद्बोधन में डॉ. जोशी ने कहा कि भारतीयों का यह दायित्व है कि वे विचार करें कि क्या वाकई विज्ञान पश्चिम से आया? वे समझे कि विज्ञान, दर्शन, साहित्य आदि की दिशाओं में भारत ने क्या प्रगति की। आपने ज्ञान-विज्ञान के अनेक क्षेत्रों में दिये गये भारतीय योगदान की सिलसिलेवार प्रामाणिक रिपोर्टों के आधार पर चर्चा करने के बाद स्थापित किया कि दर्शन या विज्ञान का कोई भी विषय ऐसा नहीं है जिसकी परम्परा का कोई न कोई हिस्सा भारतीय नहीं हो। उन्होंने कहा कि भारत को जानने के लिए हमें वेद, उपनिषद, कालिदास और संस्कृत को जानना होगा।

डॉ. जोशी के उक्त विचारों से मुझमें एक स्फूर्ति का संचार हुआ। देश के शीर्ष नेतृत्व में बैठे एक वरिष्ठ प्राध्यापक के मन में भारतीयता के गौरव को बढ़ाने की इतनी पीड़ा है। अनेक इतिहासज्ञों द्वारा भारतीयता को उसके गौरव से वंचित रखने के षड्यंत्र के प्रति उनके मन की वेदना व्याख्यान में स्पष्ट झलक रही थी। उनका कथन कि जिन अंग्रेजों को 1000 से ज्यादा गिनती नहीं आती थी वे 1000 के बाद फिर 1000 जोड़ते थे (Thousand Thousand) क्या उनकी शक्ल देखते ही हमारे अन्दर वैज्ञानिक प्रतिभा प्रस्फुटित हो गई? कदापि नहीं। भारत में कृषि, धातु शोधन, रसायन, गणित, खगोल, चिकित्सा आदि क्षेत्रों में विज्ञान की निरंतर परम्परा हजारों साल पुरानी है। इस परम्परा को जानने के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है एवं हर भारतीय को अपने देश की परम्परा एवं संस्कृति का ज्ञान होना आवश्यक है।

अपने देश एवं उसकी संस्कृति से प्रेम रखने वाले किसी भी भारतीय को झकझोरने में डॉ. जोशी के ये संवाद पर्याप्त हैं। भारतीय संस्कृति श्रमण एवं वैदिक संस्कृतियों का समन्वित रूप है। डॉ. जोशी जहां भारतीय संस्कृति के गौरव की बात कर रहे हैं वहां जैन, बौद्ध एवं वैदिक तीनों संस्कृतियां सम्मिलित हैं। संस्कृत भाषा में निहित ज्ञान को व्यापक अर्थ में समस्त प्राचीन भारतीय भाषाओं में निहित ज्ञान के रूप में लिया जाना चाहिये। इस दृष्टि से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के यशस्वी अध्यक्ष श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल द्वारा 1987 में देखे

गये स्वप्न जो अब किंचित साकार रूप ले रहे हैं एवं डॉ. जोशी के विचारों में एक साम्य है। यदि डॉ. जोशी समग्र भारतीय संस्कृति के गौरव में अभिवृद्धि हेतु सतत सचेष्ट हैं तो श्री कासलीवालजी भी उसी के एक अंग - जैन संस्कृति में निहित विज्ञान को प्रकाश में लाने हेतु प्रयत्नशील हैं। यह प्रयास भी अन्ततोगत्वा भारतीयता के गौरव को ही बढ़ायेगा। किन्तु यदि शीर्ष राजनेता को इस कार्य में अनेक परेशानियों से दो-चार होना पड़ रहा है तो फिर श्री कासलीवालजी के विचार को मूर्त रूप लेने में व्यवधान नहीं आयेगें, यह कैसे सोच लिया जाये। व्यवधान आन्तरिक एवं बाह्य दोनों होते हैं। कभी आर्थिक तो कभी मनोवैज्ञानिक। कभी समग्र सोच के स्तर पर तो कभी प्रक्रियागत किन्तु इन व्यवधानों पर विजय प्राप्त करना जरूरी है। इसे एक अनुष्ठान मानकर आने वाले व्यवधानों से हतोत्साहित न होते हुए लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सतत सचेष्ट होना एवं दायित्व का अहसास कर कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ना चाहिये। तभी जैन संस्कृति का वैज्ञानिक स्वरूप प्रतिष्ठापित होगा। भारतीय गणित की एक मुख्य धारा जैन गणित एवं पर्यावरण संरक्षण में जैन धर्म की भूमिका तथा जैन आयुर्वेद के अध्ययन के क्षेत्र में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने पर्याप्त प्रगति की है। अर्हत् वचन का प्रस्तुत एवं गत अंक जैन गणित की इसी गौरवशाली परम्परा की एक झलक प्रस्तुत करता है। डॉ. जोशी की प्रेरणा के अनुरूप हम सब परम्परा को संरक्षित करते हुए प्रगति की ओर कदम बढ़ाने हेतु संकल्पित हैं।

#### मेटसेट का प्रक्षेपण -

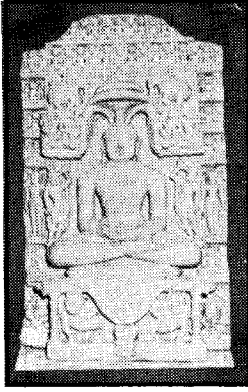
हमने बात 12 सितम्बर से शुरू की है। वह तिथि वाकई बड़ी महत्वपूर्ण है। इसी दिन 12.9.02 को भारत के अंतरिक्ष वैज्ञानिकों ने दोपहर 3.57 पर राष्ट्र का 1060 किलो वजनी मौसम उपग्रह मेटसेट भूसमस्थानिक कक्षा में सफलतापूर्वक प्रतिस्थापित कर भारतीय मेघा के वैशिष्ट्य को पुनर्प्राणित किया।

#### सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय -

लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण है भारत के सर्वोच्च न्यायालय का 12 सितम्बर का एक निर्णय जिसमें न्यायालय ने भारत सरकार द्वारा NCERT के पाठ्यक्रम में संशोधन कर कतिपय तथाकथित इतिहासज्ञों द्वारा लिखित भारतीय परम्परा को अपमानित करने वाले अंशों को हटाने की सरकार को अनुमति प्रदान की। डॉ. आर.एस. शर्मा द्वारा लिखित एवं NCERT द्वारा प्रकाशित कक्षा 11 की पाठ्य पुस्तक प्राचीन भारत एवं इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त वि.वि. के प्रकाशन धार्मिक बहुलवाद में जैन धर्म के बारे में अनेक अनर्गल बातें लिखी हैं। उनमें से कुछ का उल्लेख डॉ. जोशी ने अपने भाषण में भी किया। इन अंशों को हटाकर समीचीन अंशों को सम्मिलित करने के प्रयासों को वामपंथी विचारधारा के कतिपय इतिहासज्ञों ने भगवाकरण की संज्ञा देकर न्यायालय में जनहित याचिका के माध्यम से रूकवा दिया था। 12 सितम्बर को न्यायालय ने याचिका रद्द कर ऐसे संशोधन परिवर्तन करने की अनुमति दी। न्यायालय ने कहा कि 'सरकार को ऐसी मूल्य आधारित शिक्षा लागू करने का प्रयास करना चाहिये जो सच्चाई, सही रास्ता दिखाने वाली, सहयोग की भावना बढ़ाने वाली, अहिंसा एवं अन्य धर्मों का सम्मान करने की प्रेरणा देने वाली हो।'

हमें विश्वास है कि सर्वोच्च न्यायपीठ की इस आज्ञा का पालन न केवल शासन





अपितु अन्य सभी प्रकाशक करेंगे। हमने पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से वर्ष 1999 में "जैन धर्म के विषय में प्रचलित भ्रांतियाँ एवं वास्तविकतायें" शीर्षक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसमें 30 पुस्तकों की त्रुटियों को सूचीबद्ध किया था। बाद में 12 जून 2000 में माता जी ने हस्तिनापुर में इतिहासज्ञों एवं जैन दर्शन के विशेषज्ञों की एक बैठक NCERT के प्रतिनिधियों की उपस्थिति में बुलाई जिसमें NCERT की पुस्तकों में संशोधन का ठोस आधार बन सका। पूज्य माताजी की प्रशक्त प्रेरणा एवं मार्गदर्शन से ही जैन परम्परा के संरक्षण का यह कार्य अब रूप ले सका है। इस संपूर्ण प्रक्रिया में श्री खिल्लीमल जैन एडवोकेट (अलवर) एवं ब्र. (कु.) स्वाति जैन (संघस्थ-गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी) का सहयोग भी श्लाघनीय रहा। पूज्य आचार्य श्री विद्यानन्दजी महाराज ने भी इस विषय में पर्याप्त रुचि ली थी।

### पुस्तक 'प्राचीन भारत' एवं 'धार्मिक बहुलवाद' के आपत्तिजनक अंश

'जैन धर्म के संस्थापक वर्धमान महावीर और बौद्ध धर्म के स्थापक गौतम बुद्ध दोनों क्षत्रिय वंश के थे और दोनों ने ब्राह्मणों की मान्यता को चुनौती दी। परन्तु इन धर्मों के उद्भव का यथार्थ कारण है पूर्वोत्तर भारत में एक नई कृषिमूलक अर्थव्यवस्था का उदय।'

'यदि महावीर को अन्तिम या चौबीसवें तीर्थंकर मानें तो जैन धर्म का उद्भव काल ईसा पूर्व नवीं सदी ठहरता है।'

'स्पष्ट है कि इन तीर्थंकरों की, जो अधिकतर मध्य गंगा मैदान में उत्पन्न और बिहार में निर्वाण प्राप्त हुए, मिथक कथा जैन सम्प्रदाय की प्राचीनता सिद्ध करने के लिये गढ़ी गई हैं। किन्तु यथार्थ में जैन धर्म की स्थापना उनके आध्यात्मिक शिष्य वर्धमान महावीर ने की।'

'अपनी 12 साल की लम्बी यात्रा के बीच उन्होंने एक बार भी अपने वस्त्र नहीं बदले।'

'उनका निर्वाण 468 ई.पू. में बहत्तर साल की उम्र में आज के राजगीर के समीप पावापुरी में हुआ।'

'जैन धर्म में युद्ध और कृषि दोनों वर्जित हैं।'

'बौद्ध और जैन दोनों ही धर्म मूल रूप से प्राचीन हिन्दू धर्म की ही शाखायें हैं।'

'जैन धर्म के अनुसार समय को चौबीस महाचक्रों में विभाजित किया गया है और एक महाचक्र में एक तीर्थंकर अवतरित होते हैं।'

'यह विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि दिगम्बर सम्प्रदाय में स्त्री तपस्वी, जिसे साध्वी कहा जाता है, नहीं होती है।'

## पुस्तकों की सूची, जिनमें आपत्तिजनक अंश पाये गये

1. प्राचीन भारत, कक्षा - 11 के लिये इतिहास की पाठ्यपुस्तक, रामशरण शर्मा, हिन्दी अनुवाद - गोविन्द झा।
2. धार्मिक बहुलवाद, समाज और धर्म का खंड - 5, खंड सम्पादक - प्रो. जे. एस. भंडारी।
3. सामाजिक विज्ञान, कक्षा - 6, राजस्थान राज्य पुस्तक मंडल, जयपुर, लेखक - सत्यनारायण मेढी, कृष्ण मुरारीलाल श्रीवास्तव।
4. इतिहास, हाईस्कूल, लेखक - विश्वनाथ तिवारी, भारती भवन, पटना।
5. सभ्यता का इतिहास, डॉ. कौलेश्वर राय, बिहार टेक्स्ट बुक कमेटी, पटना।
6. किशोर भारती, भाग - 3, डॉ. योगेन्द्र मिश्र, बिहार टेक्स्ट बुक कमेटी, पटना।
7. हमारा इतिहास और नागरिक जीवन, भाग - 1, कक्षा - 6, बैसिक शिक्षा परिषद - उ.प्र.।
8. हमारी दुनिया - हमारा समाज, भाग - 3, कक्षा - 5 हेतु, राजकीय प्रकाशन, शिक्षा विभाग उ.प्र., खंड - 1, भूगोल।
9. भारती, भाग - 4, कक्षा - 4, माध्यमिक शिक्षा मंडल म.प्र., भोपाल।
10. प्राचीन भारत - कक्षा - 6 हेतु इतिहास की पाठ्यपुस्तक, रोमिला थापर, अनुवादक - गुणाकर मुले, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली।
11. यूनिफाइड इतिहास, बी.ए. - तृतीय वर्ष, डॉ. एस. के. मित्तल एवं डॉ. आर. अग्रवाल, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
12. प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, बी.एन. लूणिया, कमल प्रकाशन, इन्दौर।
13. भारत की सामाजिक आर्थिक संरचना एवं संस्कृति के तत्त्व, डॉ. एस. के. पारीख एवं ए.सी. दहीभाते, रामप्रसाद एण्ड सन्स, आगरा।
14. भारत का इतिहास, कामेश्वर प्रसाद सिंह, भारती भवन, पटना।
15. प्राचीन भारत, एल. पी. शर्मा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।
16. A Text Book of Certificate History by Sri H.E. Simen & Shri Y.N. Nigam, Oswal Printers & Publishers Pvt. Ltd., Agra.
17. पर्यावरण अध्ययन, कक्षा - 2, प्राथमिक एवं माध्यमिक पुस्तक प्रकाशन, अलवर, पुरुषोत्तमलाल तिवारी एवं श्री प्रमाद शर्मा।
18. भारत की महान विभूतियाँ, भाग - 2, कक्षा - 7 हेतु, राजकीय प्रकाशन, शिक्षा विभाग उ.प्र.।
19. The World We Live In, Book-III, Class-VIII, J. Fuste, Pitambar Book Depot, New Delhi.
20. Steps to Social Studies, Book-III, Environmental Studies-1, Mrs. S. David, Arya Book Depot, Delhi.
21. Primary Social Studies, Book-V, Rajkumar, Mrs. S.Jeet, Frank Bros. & Co.
22. History of India, Part-I, N.N. Kher, Pitambar Publishing Co., New Delhi.
23. इतिहास के महापुरुष, जवाहरलाल नेहरू, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली।
24. न्यू पैटर्न अतुल इतिहास, बी.ए. - प्रथम वर्ष, गाईड, डॉ. विशन बहादुर, आगरा।
25. प्राचीन भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग - 1, विमलचन्द पाण्डेय, सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद।
26. अद्भुत भारत, ए.एल. बाशम, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा।



27. भारत का वृहत् इतिहास, भाग - 1, प्राचीन भारत, मजूमदार राय चौधरी, हेमचन्द राय चौधरी, दत्त - मेकमिलन इंडिया लिमिटेड, दिल्ली।
28. प्राचीन भारत, एल. पी. शर्मा, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं., आगरा।
29. Ancient India, V.D. Mahajan, S. Chand & Co., New Delhi.
30. संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

इन पुस्तकों में जो आपत्तिजनक बातें निहित हैं वे प्रमुखतः निम्न हैं -

1. जैन धर्म के संस्थापक भगवान महावीर थे।
2. जैन धर्म बौद्ध धर्म के समकालीन धर्म है।
3. जैन धर्म अनीश्वरवादी (नास्तिक) धर्म है।
4. जैन धर्म हिन्दू धर्म की एक शाखा है।
5. बौद्धों के समान जैन लोग भी आरंभ में मूर्तिपूजक नहीं थे।
6. तीर्थंकरों की, जो अधिकांशतः मध्य गंगा मैदान में उत्पन्न और बिहार में निर्वाण को प्राप्त हुए, मिथक कथा जैन सम्प्रदाय की प्राचीनता सिद्ध करने हेतु गढ़ ली गई है।
7. जैन धर्म के उद्भव का यथार्थ कारण है पूर्वोत्तर भारत में एक नई कृषिमूलक अर्थव्यवस्था का उदय।
8. ब्राह्मणों की कानून की किताबों में सूद पर धन लगाने के कारोबार की निन्दा के कारण जो वैश्य व्यापार/वाणिज्य में वृद्धि होने के कारण महाजनी करते थे, आदर नहीं पाते थे किन्तु अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ाने को उत्सुक थे, उन्होंने जैन धर्म की मदद की।
9. पार्श्वनाथ वस्त्र धारण करने के विरोधी नहीं थे किन्तु महावीर ने सांसारिकता से पूर्ण अनासक्ति के लिये नम्र रहना आवश्यक समझा।
10. दिगम्बर सम्प्रदाय में स्त्री तपस्वी, जिसे साध्वी कहा जाता है, नहीं होती है।
11. अहिंसा का एक आर्थिक परिणाम यह हुआ कि इस समुदाय के भोले-भाले लोगों ने खेती करना इसलिये बन्द कर दिया कि हल चलाते कहीं वे जीव की हत्या न कर बैठें। इसीलिये वे अहिंसक पेशे यथा व्यापार और साहूकारी की ओर मुड़ गये।
12. हस्तिनापुर के राजा दुष्यन्त एवं रानी शकुन्तला के पुत्र भरत के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा।
13. वर्द्धमान (भगवान महावीर) की पत्नी का नाम यशोधरा एवं बड़े भाई का नाम नन्दिवर्द्धन था एवं बड़े भाई की आज्ञा से ही उन्होंने सन्यास ग्रहण किया। (एक पक्षीय विचारधारा)
14. भगवान महावीर की पुत्री का नाम अणोज्जा या प्रियदर्शना एवं दामाद जामलि थे। (एक पक्षीय विचारधारा)

यदि हमें विश्व समुदाय के साथ प्रगति करनी है तो यत्नपूर्वक परम्परा का संरक्षण करना होगा। जैन धर्म एवं संस्कृति की महान परम्पराओं के साथ जहां भी छेड़छाड़ हो, आपत्तिजनक प्रकाशन हो, अनर्गल प्रलाप हो उसे यत्नपूर्वक रोकना होगा।

**महापुरुषों की जन्मभूमियों पर विवाद -**

दैनिक जागरण (कानपुर) दिनांक 17.7.02, नवभारत (इन्दौर) (अगस्त-02), दैनिक भास्कर (इन्दौर) दिनांक 28.08.02 में एक समाचार प्रकाशित हुआ जिसके अनुसार महात्मा बुद्ध का जन्म परम्परागत रूप में मान्य बुद्ध की जन्मभूमि लुम्बिनी (नेपाल) के स्थान पर उड़ीसा की राजधानी भुवनेश्वर के बाहरी इलाके में स्थित कपिलेश्वर के समीप स्थित लुम्बिनी ग्राम में हुआ था। भास्कर में प्रकाशित समाचार हम यहाँ आविकल रूप में उद्धृत कर रहे हैं।

“महात्मा बुद्ध के जन्म स्थान को लेकर विवाद तूल पकड़ने लगा है। दो जाने-माने इतिहासकारों और कुछ पुरातत्वेत्ताओं ने दावा किया है कि बुद्ध का जन्म उड़ीसा के प्राचीन गांव लुम्बिनी में हुआ था न कि नेपाल के लुम्बिनी गांव में।

उड़ीसा संग्रहालय के 15 शोधकर्ताओं की एक टीम ने जुलाई-02 में दावा किया था कि महात्मा बुद्ध का जन्म भुवनेश्वर के बाहरी इलाके स्थित प्राचीन कपिलेश्वर गांव के नजदीक लुम्बिनी में हुआ था। उनका दावा है कि बुद्ध नेपाल के लुम्बिनी में नहीं बल्कि उड़ीसा के लुम्बिनी में जन्में हैं। बौद्ध इतिहास के विशेषज्ञ माने जाने वाले मन्मथनाथ दास ने कहा कि यूं तो उन्होंने इस सिलसिले में पुरातात्विक साक्ष्य नहीं देखे हैं, लेकिन इसकी संभावना है कि बुद्ध का जन्म उड़ीसा के लुम्बिनी गांव में हुआ होगा। दास ने आई.ए.एन.एस. से बातचीत करते हुए कहा कि उन्होंने बौद्ध धर्म और इतिहास का गहरा अध्ययन किया है। मौजूद लिखित साक्ष्यों से पता चलता है कि बुद्ध का जन्म नेपाल के लुम्बिनी में हुआ था, लेकिन इसके पक्ष में पुरातात्विक साक्ष्य कमजोर हैं। यह पहला मौका नहीं है जब उड़ीसा में महात्मा बुद्ध के जन्म होने का दावा किया गया है। राज्य के जाने-माने इतिहासकार चक्रधर मोहपात्रा ने 1963 में इसी तरह का दावा किया था। दास के मुताबिक मोहपात्रा ने इस विषय पर शोध पत्र भी तैयार किया था और उन्होंने अपने दावे के पक्ष में एक किताब भी लिखी थी। इतिहासकार प्रो. सगिदानंद मिश्रा का कहना है कि तराई क्षेत्र में मिले एक शिलालेख के आधार पर ही नेपाल को बुद्ध का जन्म स्थान घोषित कर दिया गया।”

हमने इस समाचार के विपक्ष में जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की। 09.08.02 के जनसत्ता (दिल्ली) में प्रकाशित टिप्पणी के अनुसार -

विश्व के बौद्ध धर्मावलंबियों की आस्था का केन्द्र गौतम बुद्ध की जन्मस्थली नेपाल स्थित लुम्बिनी न होकर ओड़ीसा में बताया जाना दुर्भाग्यपूर्ण है।

यह बात दीनदयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय गोरखपुर के प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के विशेषज्ञ डॉ. कृष्णानंद त्रिपाठी ने कही। त्रिपाठी ने बताया कि शोधकर्ताओं का यह दावा पूरी तरह से तथ्य विहीन, भ्रामक एवं बेबुनियाद है। उन्होंने इस प्रचार को भगवान बुद्ध में आस्था रखने वाले पर्यटकों को गुमराह करने वाला बताया है। उन्होंने कहा कि इस विवाद ने सम्राट अशोक के स्तंभ सहित अन्य सभी प्रमाणों पर प्रश्न चिन्ह खड़ा किया है।

भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि यहाँ के महापुरुष स्वयं का इतिहास बनाने, अपने जीवनकाल में स्मारकों के निर्माण आदि में रुचि नहीं रखते थे। वे व्यक्ति एवं समाज की रचना में विश्वास रखते थे। यही कारण है कि आज भारतीय महापुरुषों के सन्दर्भ में विवाद उत्पन्न हो रहे हैं।

प्रस्तुत प्रकरण पर डॉ. कृष्णानंद त्रिपाठी का यह कथन कि भुवनेश्वर के कपिलेश्वर गांव के समीप वाले लुम्बिनी को भगवान बुद्ध की जन्म स्थली बताकर इतिहासकारों और पुरातत्ववेत्ताओं ने जहाँ अनावश्यक विवाद खड़ा कर दिया वहीं बौद्ध तीर्थयात्रियों और सैलानियों को असमंजस की स्थिति में डाल दिया है।' अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं विचारणीय है। क्योंकि इससे परम्परा भंग हो रही है।

सामयिक रूप से यहाँ उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि जैन धर्म के 24 वें एवं अंतिम तीर्थंकर महावीर की जन्मभूमि के बारे में 20 वीं शताब्दी में प्रश्नचिन्ह लगाया गया है। परम्परागत रूप से मान्य भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर (वर्तमान बिहार प्रान्त के नालन्दा जिले) के बारे में कतिपय इतिहासकारों द्वारा विवाद उत्पन्न कर वैशाली या उसके आस-पास जन्मभूमि को तलाशने के प्रयासों ने भी तीर्थयात्रियों एवं श्रद्धालुओं के सम्मुख भ्रम की स्थिति निर्मित कर दी है। यद्यपि आज भी 95% तीर्थयात्री परम्परामान्य जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालन्दा) की वन्दना करने जाते हैं। तथापि इस प्रकार के प्रयासों से भ्रम तो बनता ही है। इतिहासकारों को जन श्रद्धा एवं आस्था के केन्द्रों पर अपना अभिमत व्यक्त करने से पूर्व जन भावनाओं को भी ध्यान में रखना चाहिये।

Bonn 29<sup>th</sup> march 1911  
59 Niebubro trasse

Dear Sir,

I had much pleasure in the receiving your letter dated Feb.27 which contained good news from you and kind wishes for me. I also beg to acknowledge receipt of material, which contains useful information of Nalanda and Kundalpur being birthplace of Lord Mahavira. It becomes very useful to me, in many ways. You have urged me to rewrite my article on "Jainism" in the Encyclopedia of religion & ethics. Regarding Kundalpur near Nalanda, there are some references in Tillopanntti, I agree with them.

I hope, however to induce Prof.W. Sohribring who is without doubt our best Jain scholar, historian, well groomed in Siddhanta to undertake a similar work. I am sure that he will do important work for Jain world.

Mr. K.P.Modi sent me some photographs of Kundalpur.

Hoping you well

I remain yours sincerely

*Hermann Jacobi*  
(HERMANN JACOBI)

यह जैन समाज का दुर्भाग्य ही है कि भगवान महावीर की जन्मभूमि, केवलज्ञान, निर्वाणभूमि तीनों के बारे में कतिपय इतिहासज्ञों ने विवाद पैदा कर दिया है। जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालन्दा) या वैशाली या बासोकुण्ड या लिछुवाड, केवलज्ञान भूमि राजगृही या अन्य, निर्वाण भूमि पावापुरी (बिहार) या पावापुरी (पडरौना) या पावागढ फजिल्का साठियावाह निकट देवरिया (उ.प्र.) मात्र इतना ही क्यों? जन-जन की आस्था के केन्द्र 20 तीर्थंकरों की निर्वाण भूमि परम पावन तीर्थ सम्मदशिखर पर भी तिवारी बन्धुओं ने विवाद खड़ा करने की कोशिश की है। (देखें : तित्थयर (कोलकाता), वर्ष-10, अंक-3, जुलाई 1986, पृ. 69-81) डॉ. हरमन जैकोबी का नाम वैशाली को भगवान महावीर की जन्मभूमि मानने वालों की श्रेणी में प्रमुखता से रखा जाता है। किन्तु गत माह डॉ. अभयप्रकाश जैन ने हमें डॉ. जैकोबी का शिवपुरी संग्रहालय में संरक्षित एक पत्र भेजा है



जो एक अलग ही बात कहता है। हम बिना किसी टिप्पणी के इसे अविकल रूप में छाप रहे हैं।

हमारा विनम्र आग्रह है कि आस्था के केन्द्रों से छेड़छाड़ उचित नहीं है। इस प्रसंग को लेकर समाज में मनमुटाव होना किसी दृष्टि से भी हितकर नहीं है। यदि हमने अपनी सुस्थापित परम्परायें छोड़ दी तो हम प्रगति कदापि नहीं कर सकते हैं। यदि परम्परा को छोड़कर छलांग लगाने का प्रयास करेंगे तो हश्र क्या होगा यह प्रबुद्ध पाठकों को बताने की जरूरत नहीं है।

### भारतवर्षीय दिगम्बर (जैन श्रुत संवर्द्धिनी) महासभा का गठन -

लखनऊ से प्राप्त समाचार के अनुसार श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन धर्मसंरक्षिणी एवं तीर्थ संरक्षिणी महासभा के बाद अब श्रुत संवर्द्धिनी महासभा का गठन किया गया है। यह महासभा एजुकेशन बोर्ड का नया नाम है। हम इसका स्वागत करते हैं। मुझे याद आ रहा है कि 1981 में डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर' (नागपुर), डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल (जयपुर) एवं मुझे स्वयं शिक्षानीति बनाने का दायित्व दिया गया था किन्तु अनेक बार सम्पर्क के बाद भी एक भी बैठक नहीं हुई। 10-5 वर्ष बाद फिर एक बार चर्चा आई किन्तु परिणाम अभी तक शून्य है। अब नये नाम एवं पूरे उत्साह के साथ स्वयं सेठीजी ने पहल की है। सेठीजी की घोषणा 'यह संस्था जैन समाज के विद्यालयों की स्थिति सुधारने, कम्प्यूटर शिक्षा, धार्मिक शिक्षा की दिशा में कार्य करेगी और इसका लक्ष्य एक जैन विश्वविद्यालय की स्थापना करना भी रहेगा। यह संस्था सभी विद्यालयों की सहयोगी रहेगी तथा भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में शिक्षा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी।' स्वागत योग्य है।

हमें विश्वास है कि यह संस्था जैन धर्म, दर्शन एवं साहित्य की महान परम्पराओं का संरक्षण करते हुए प्रगति की ओर कदम बढ़ायेगी एवं अपने लक्ष्य प्राप्त कर सकेगी। हम महासभा को वांछित सहयोग प्रदान कर प्रसन्न होंगे। इस उपक्रम की सफलता हेतु कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ।

वर्ष 13 (3-4) के बाद 14 (2-3) के रूप में पुनः हमें सयुक्तांक देना पड़ा। हम पाठकों की पीड़ा को समझते हैं एवं आशा करते हैं कि महान परम्पराओं के संरक्षण एवं प्रचार-प्रसार की नवीन प्रेरणाओं से जनित उत्साह हमें इतनी शक्ति देगा कि आगामी अंक नियमित एवं यथासमय मिलते रहें।

अहिंसा, शाकाहार एवं पर्यावरण संरक्षण पर यथेष्ट मौलिक सामग्री न प्राप्त होने के कारण प्राप्त सामग्री को आगामी अंक 14 (4) की सामग्री में समाहित कर नया अंक नवम्बर में ही प्रकाशित कर रहे हैं। सुधी पाठकों को हुई असुविधा हेतु हमें खेद है एवं आशा है कि उनका स्नेह एवं संरक्षण हमें पूर्ववत् मिलता रहेगा। प्रस्तुत अंक में हमने सामान्य से अधिक सामग्री संयुक्तांक के कारण ही दी है।

अंक के प्रकाशन में संरक्षण हेतु मैं आश्रम ट्रस्ट के सभी ट्रस्टियों, निदेशक मंडल तथा सम्पादक मंडल के सभी सदस्यों एवं सहयोग हेतु ज्ञानपीठ परिवार के सभी सदस्यों अरविन्दजी, सुरेखाजी, मानिकचन्दजी, नीतूजी आदि को धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।



वर्ष 2002 के परम पावन दशलक्षण पर्व की समाप्ति पर मैं समस्त कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार की ओर से शुद्ध हृदय से आप सबसे विगत वर्ष की भूलों हेतु क्षमायाचना करता हूँ। ज्ञानपीठ को अनवरत प्राप्त आपका प्रेम, स्नेह, वात्सल्यपूर्ण मार्गदर्शन एवं निस्पृह सहयोग हमारी सम्पत्ति है।

मुझे इस सत्य का अहसास है कि वर्ष 13 (3-4) के बाद 14 (2-3) का संयुक्तांक निकलना पाठकों को रुचिकर नहीं लग रहा होगा। पाठकों के पत्र इस बात के गवाह है कि उन्हें अंक का बेसब्री से इंतजार रहता है। हम अपने नेटवर्क की समीक्षा कर उन कारणों के निदान हेतु प्रयत्नशील हैं जिनके कारण लगभग 12 वर्ष तक नियमित रूप से प्रकाशन के उपरान्त वर्ष 13 एवं 14 (2001 एवं 2002) में यह पत्रिका कुछ अनियमित हो गई। हम पाठकों को विश्वास दिलाते हैं कि अगले अंक से पत्रिका नियमित रहेगी।

हमारे अनुरोध पर पत्रिका के अनेक आजीवन सदस्यों ने 1100=00 की अतिरिक्त राशि भेजकर पत्रिका के सहयोगी सदस्य बनना स्वीकार किया है। हम 22.9.2002 तक सहयोगी सदस्यता ग्रहण कर चुके सदस्यों के नाम प्रकाशित कर रहे हैं। इन सभी को पूर्ववत् पत्रिका नियमित जाती रहेगी।

1. श्री मोहनलाल खादीवाल, बैंगलौर
2. डॉ. एन.के. जैन, नागपुर
3. मेसर्स भगवानदास शोभालाल, सागर
4. श्री एस. सी. जैन, नई दिल्ली
5. श्री प्रेमचंद जैन, खारी बावली, नई दिल्ली
6. श्रीमती जया जैन, ग्वालियर

एक बार पुनः हम पूर्व में आजीवन सदस्यता (10 वर्ष हेतु) ग्रहण कर चुके सदस्यों से अनुरोध करेंगे कि वे 1100=00 रु. की राशि भेजकर सहयोगी सदस्यता ग्रहण करने का कष्ट करें।

अगले अंक में प्रकाश्य लेखों/टिप्पणियों का चयन कर हमने उन्हें अगले पृष्ठ पर सूचीबद्ध किया है। इससे स्पष्ट है कि अगले अंक में हम जैन इतिहास, पुरातत्व एवं पर्यावरण पर उपयोगी सामग्री पाठकों से प्रस्तुत कर सकेंगे।

पत्रिका की विषय वस्तु के सन्दर्भ में पाठकों की प्रतिक्रियाओं का सदैव की भाँति स्वागत है।

22.09.2002

देवकुमारसिंह कासलीवाल

## अगले अंक (14 - 4) अक्टूबर - दिसम्बर 2002 में प्रकाश्य आलेख

- **The Jaina Hagiography and the Śaṅkhandāgama**, Dr. Bhuvanendra Kumar Jain (Canada)
- **Environment, Life Ethics and Jaina Religion**, Dr. N. P. Jain (Indore)
- **On the Vikram Era**, Prof. L. C. Jain & Br. Prabha Jain (Jabalpur)
- **Hinduism : Civilization of Unity in Diversity**, Dr. N. N. Sachdeva (Indore)
- अहिंसा की वैज्ञानिक आवश्यकता और उन्नति के उपाय, अजित जैन 'जलज' (ककरवाहा - टीकमगढ़)
- जैन सभ्यता से जुड़ी माया सभ्यता, डॉ. जे. डी. जैन (जयपुर)
- अशोक स्तम्भ की संरचना में जैन धर्म का प्रभाव, शीतलकुमार जैन एवं पवनकुमार जैन (वाराणसी)
- भारतीय राष्ट्रीयता का अतिपुरुष - श्री सुहेलदेव, डॉ. पुरुषोत्तम दुबे (इन्दौर)
- संग्रहालयों में जैन प्रतीकों की भ्रामक प्रस्तुतियाँ, डॉ. स्नेहरानी जैन (सागर)
- सराक लोक कला की सांस्कृतिक धरोहर, डॉ. अभयप्रकाश जैन (ग्वालियर)

### निदेशक मंडल - सन् 2001 - 2002

#### अध्यक्ष

प्रो. ए.ए. अम्बासी  
पूर्व कुलपति,  
बी - 417, सुदामा नगर,  
इन्दौर - 452 009  
फोन : 0731 - 482894

#### सचिव

डॉ. अनुपम जैन  
स. प्राध्यापक - गणित,  
शा. होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय,  
'ज्ञान छाया', डी - 14, सुदामा नगर,  
इन्दौर - 452 009  
फोन : 0731 - (नि.) 787790 (का.) 545421

#### सदस्य

##### 1. प्रो. आर. आर. नांदगांवकर

पूर्व कुलपति,  
चन्द्रदीप अपार्टमेंट, निकालस मन्दिर, इतवारी,  
नागपुर - 440 002  
फोन : 0712 - 763186

##### 3. प्रो. सुरेशचन्द्र अग्रवाल

प्राध्यापक एवं अध्यक्ष - गणित,  
ए - 2, चौधरी चरणसिंह वि.वि. परिसर,  
मेरठ - 250 404 (उ.प्र.)  
फोन : 0121 - 762526

##### 2. प्रो. नलिन के. शास्त्री

कुलसचिव - बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर  
केन्द्रीय विश्वविद्यालय, रायबरेली रोड़,  
लखनऊ (उ.प्र.)  
फोन : 0522 - 440822

##### 4. डॉ. एन.पी. जैन

पूर्व राजदूत,  
ई - 50, साकेत,  
इन्दौर - 452 001  
फोन : 0731 - 561273

##### 5. डॉ. प्रकाशचन्द जैन

91/1, गली नं. 3, तिलकनगर,  
इन्दौर - 452 001  
फोन : 0731 - 490619



## आचार्य श्रीधर और उनका गणितीय अवदान

■ डॉ. अनुपम जैन \*, ममता अग्रवाल (मेरठ) \*\*, एवं प्रशान्त तिलवनकर (इन्दौर) \*\*\*

### भाग - 2

अर्हत् वचन, वर्ष-8, अंक-1, जनवरी 1996 में 'आचार्य श्रीधर एवं उनका गणितीय अवदान' (अनुपम जैन एवं कु. ममता सिंघल) शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था। इस आलेख में आचार्य श्रीधर के जीवन, जीवनकाल, कृतियों, धार्मिक मान्यता के बारे में विस्तार से विवेचन किया गया है। इस आलेख में लेखकों ने आचार्य श्रीधर पर 1995 तक किये गये शोध कार्यों को भी सूचीबद्ध किया है। प्रस्तुत आलेख में उनकी कृतियों में निहित गणित का विवेचन किया गया है। - सम्पादक

श्रीधराचार्य (799 ई.) के ज्ञान का मूल स्रोत जैन परम्परा का पारम्परिक ज्ञान था, उन्होंने अपनी-अपनी प्रतिभा का उपयोग करते हुए उसे परिष्कृत, विस्तृत एवं विवेचित किया है। प्रस्तुत अध्याय में हम पाटीगणित के तत्कालीन विषयों पर बिन्दुवार चर्चा करेंगे।

अनेक विषय, जिन पर श्रीधर एवं महावीर दोनों ने लेखनी चलाई है, उनको हमने लेख के भाग-3 में तुलनात्मक रूप में विस्तार से विवेचित किया है। फलतः यहाँ उनको स्पर्श मात्र किया है। अतः श्रीधर के गणितीय अवदान को सम्यक् रूप से समझने हेतु प्रस्तुत भाग-2 एवं शीघ्र प्रकाश्य भाग-3 दोनों देखना चाहिये।

### अष्ट परिकर्म

पारम्परिक रूप से अष्ट परिकर्म के अन्तर्गत पाटीगणित में संकलन, व्यकलन, गुणन, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन एवं घनमूल को सम्मिलित किया जाता है। इनके पहले संख्याओं एवं स्थानमान की सूचियाँ दी जाती हैं। हम यहाँ श्रीधर की सूची प्रस्तुत कर रहे हैं।

1. एक	= $10^0$	10. अब्ज	= $10^9$
2. दश	= $10^1$	11. खर्व	= $10^{10}$
3. शत	= $10^2$	12. निखर्व	= $10^{11}$
4. सहस्र	= $10^3$	13. महासरोज	= $10^{12}$
5. अयुत	= $10^4$	14. शंकु	= $10^{13}$
6. लक्ष	= $10^5$	15. सरितापति	= $10^{14}$
7. प्रयुत	= $10^6$	16. अन्त्य	= $10^{15}$
8. कोटि	= $10^7$	17. मध्य	= $10^{16}$
9. अर्बुद	= $10^8$	18. परार्ध	= $10^{17}$

श्रीधर ने अपनी पाटीगणित एवं पाटीगणितसार में मापन पद्धतियों की भी चर्चा की है।

अष्ट परिकर्मों की श्रृंखला में संकलन एवं व्यकलन अत्यन्त सरल है। श्रीधर ने

\* गणित विभाग, होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर - 452 017

\*\* केनरा बैंक क्षेत्रीय कार्यालय, 144 - 145, प्रसाद हाऊस, दिल्ली रोड, मेरठ - 50 002

\*\*\* शोध छात्र - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, म. गांधी मार्ग, इन्दौर - 452 001



त्रिशतिका के प्रारंभिक श्लोकों में इन परिकर्मों की चर्चा की है। संकलन एवं व्यकलन के क्रम में उन्होंने श्रेणियों के पदों को जोड़ने एवं घटाने की चर्चा की है।

हम अब शेष 6 परिकर्मों की चर्चा करेंगे।

### गुणन

श्रीधराचार्य ने गुणन की चार विधियों का वर्णन किया है -

1. कपाट - सन्धि
2. तत्स्थ
3. रूपविभाग
4. स्थानविभाग

**कपाट सन्धि** - श्रीधराचार्य के अनुसार गुणक के नीचे कपाट सन्धि<sup>1</sup> की भाँति गुण्य को रखकर विलोम अथवा अनुलोम विधि के अनुसार गुणक को एक-एक स्थान हटा-हटा कर क्रम से गुणा करना कपाट सन्धि विधि है।<sup>2</sup>

इस विधि की दो विशेषताएँ हैं -

1. गुण्य और गुणकार के सापेक्ष स्थान और
2. गुण्य के अंकों का मिटाना और उनके स्थान में गुणनफल के अंकों का स्थापन।

पहली विशेषता के कारण इस विधि का नाम कपाट संधि पड़ा और दूसरी विशेषता के कारण गणित के ग्रन्थों में मिलने वाले हनन, वध इत्यादि शब्दों को आविर्भाव हुआ। कपाट-सन्धि की क्रम और उत्क्रम विधि को समझने के लिये निम्नलिखित उदाहरण सहायक हैं।

### क्रम (अनुलोम विधि) -

**उदाहरण** - 135 को 12 से गुणा करो। पहले उन संख्याओं को पाटी पर निम्नलिखित प्रकार से लिखते हैं -

गुणक	12
गुण्य	135

इसके पश्चात गुण्य के इकाई वाले अंक (5) को गुणक के अंकों से गुणा करते हैं। इस प्रकार  $5 \times 2 = 10$  ; 0 को 2 के नीचे लिखते हैं और 1 को एक स्थान बायीं ओर ले जाते हैं। इसके बाद  $5 \times 1 = 5$  ; इसमें (आगे ले गये अंक) 1 को जोड़ने पर 6 प्राप्त होता है। (पाटी पर लिखे हुए) 5 की अब आवश्यकता न होने से उसे मिटा देते हैं और उसके स्थान में प्राप्त 6 लिख देते हैं। इस प्रकार पाटी पर अब निम्नलिखित संख्याएँ होती हैं -

12  
1360

अब गुणक को एक स्थान बायीं ओर हटाते हैं।

12  
1360

अब 3 को गुणक के अंकों से गुणा करते हैं। इसका विवरण यह है -  $3 \times$

$2 = 6$  ; इस 6 को 2 के नीचे लिखते हुए 6 में जोड़ने पर 12 प्राप्त होता है। 6 को मिटा कर उस स्थान पर 2 लिख देते हैं। 1 को आगे ले जाते हैं। इसके बाद  $3 \times 1 = 3$  ;  $3 +$  (आगे ले जाया गया)  $1 = 4$  ; 3 को मिटाकर उसके स्थान पर 14 को फिर एक स्थान बायीं ओर हटाकर लिखते हैं। अब पाटी पर निम्नलिखित संख्याएँ होती हैं -

12  
1420

अब  $2 \times 1 = 2$  ;  $2 + 4 = 6$  ; 4 को मिटाकर उसके स्थान पर 6 लिखते हैं।  $1 \times 1 = 1$  ; को 6 के बायीं ओर लिखते हैं। अब क्रिया समाप्त हो जाने के कारण, गुणक 12 को मिटा देते हैं और पाटी पर निम्नलिखित संख्या शेष रहती है -

1620

इस प्रकार 12 और 135 संख्याओं का 'हनन'<sup>3</sup> हो गया और एक नयी संख्या 1620 'प्रत्युत्पन्न'<sup>4</sup> हो गई।

कभी-कभी गुण्य के किसी अंक को गुणक से गुणा करने पर गुणनफल गुणक के अन्तिम स्थान से आगे निकल जाता है। ऐसी परिस्थिति में आंशिक गुणनफल का अन्तिम अंक अन्यत्र लिख लिया जाता है। 135 को 99 से गुणा करने पर इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा।

### उत्क्रम (विलोम) विधि -

यह विधि दो प्रकार से प्रयोग की जाती है -

(अ) पहली विधि में संख्याएँ निम्न प्रकार से लिखी जाती हैं -

गुणक	12
गुण्य	135

गुणन का आरम्भ गुण्य के अंतिम अंक से होता है। इस प्रकार  $1 \times 2 = 2$  ; 1 को मिटाकर उसके स्थान पर 2 लिखा जाता है, इसके बाद  $1 \times 1 = 1$  ; यह 1 उसके बायीं ओर लिखा जाता है। इसके बाद गुणक 12 को एक स्थान दाहिनी ओर हटाते हैं। पाटी पर अब निम्न संख्याएँ होती हैं -

12  
1235

अब,  $3 \times 2 = 6$  ; 3 को मिटाकर उसके स्थान पर 6 लिखते हैं। अब  $3 \times 1 = 3$  और  $3 + 2 = 5$  ; 2 को मिटाकर उसके स्थान में 5 लिखते हैं। इसके बाद गुणक को पुनः एक स्थान दाहिनी ओर हटाते हैं। पाटी पर अब निम्न संख्याएँ होती हैं -

12  
1565

अब,  $5 \times 2 = 10$  ; 5 को मिटाकर उसके स्थान पर 0 लिखते हैं। अब  $5 \times 1 = 5$ ,  $5 + 1 = 6$  ;  $6 + 6 = 12$  ; 6 को मिटाकर उसके स्थान पर 2 रखते

हैं और 1 को दहाई में ले जाते हैं अर्थात् 5 में जोड़ते हैं, इस प्रकार 5 को मिटाकर उसके स्थान में 6 लिखते हैं। पाटी पर अब निम्न संख्या होती है -

1620

जो कि इष्ट गुणनफल है। दहाई में जोड़े जाने वाले अंक पाटी पर अन्यत्र लिख लिये जाते हैं और उनका जोड़ हो चुकने पर मिटा दिये जाते हैं।

(ब) दूसरी विधि में (गुणक के अंकों द्वारा) आंशिक गुणनफल क्रम विधि से किया जा सकता है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि आंशिक गुणनफल उत्क्रम विधि से करने की परिपाटी थी।

उदाहरण - 324 को 753 से गुणा करो। गुणक और गुण्य निम्न क्रम से रखे जाते हैं -

गुणक	753
गुण्य	324

गुणन का आरम्भ गुणक के अन्तिम स्थान से होता है।  $3 \times 7 = 21$  ; 1 को गुणक 7 के नीचे रखते हैं और 2 को उसकी बायीं ओर निम्न प्रकार से -

753  
21 324

इसके बाद  $3 \times 5 = 15$  ; 5 को गुण्य 5 के नीचे रखते हैं और 1 को दायीं ओर रखते हुए 1 में जोड़ देते हैं; अर्थात् 1 को मिटाकर उसके स्थान में योगफल 2 को लिखते हैं। अब पाटी पर निम्न संख्याएँ होती हैं -

753  
225324

अब  $3 \times 3 = 9$  ; गुण्य के 3 को मिटाकर उसके स्थान में 9 को लिखते हैं -

753  
225924

अब गुणक को एक स्थान दाहिनी ओर हटाते हैं।

753  
225924

अब  $7 \times 2 = 14$  ; 4 को 7 के नीचे वाले 5 में और 1 को 5 के बायीं ओर के 2 में जोड़ते हैं।

753  
239924

अब  $5 \times 2 = 10$  ; इस 10 को 5 के नीचे वाले अंकों में जोड़ते हैं -

753  
240924

अब,  $2 \times 3 = 6$  ; इस 6 को 3 के नीचे वाले 2 को मिटा कर उसके स्थान में रखते हैं।

753  
240964

इसके बाद गुणक को पुनः एक स्थान दाहिनी ओर हटाते हैं-

753  
240964

अब 4 को क्रमानुसार गुणक के 7, 5 और 3 से गुणा करते हैं; पहले दो गुणनफलों को क्रमशः 7 और 5 के नीचे लिखी संख्याओं में जोड़ते हैं और अन्तिम को 3 के नीचे वाले 4 को मिटाकर उसके स्थान में लिखते हैं। इस प्रकार क्रम से निम्नलिखित संख्याएँ मिलती हैं -

(अ) 753  
243764  
(ब) 753  
243964  
(स) 753  
243972

यही अन्तिम संख्या 243972 इष्ट गुणनफल है।

## 2. तत्स्थ -

श्रीधराचार्य ने इस विधि का विवरण नहीं दिया है। वे केवल यही लिखते हैं कि 'अन्य (विधि) जिसमें गुण्य स्थिर रहता है तत्स्थ कहलाती है।' <sup>5</sup> यह विधि बीजीय है और इसे बीजगणित के तिर्यक् गुणन अथवा वज्राभ्यास के सदृश बतलाया गया है।

## 3. रूप - खण्ड गुणन -

इस विधि के दो भेद हैं -

1. गुणन के दो या अधिक ऐसे भाग करते हैं जिनका जोड़ गुणक के तुल्य होता है। इसके अनन्तर गुण्य को उन भागों से अलग-अलग गुणा करके उन गुणनफलों को जोड़ लेते हैं।

2. गुणक को दो या दो से अधिक गुणनखण्डों में विभक्त करते हैं। उसके बाद गुण्य को एक-एक करके उन गुणनखंडों से गुणा करते हैं। अन्तिम गुणनफल इष्ट गुणनफल होता है।

## स्थान विभाग -

इस विधि के अनुसार गुणा करने में अंक स्थापन में कई क्रमों का उपयोग किया गया है। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं -

(1)	135 <u>12</u> 12 36 <u>60</u> 1620	(2)	12 12 12 1 <u>3</u> 5 1260 <u>36</u> 1620	(3)	135 135 <u>1 2</u> 270 <u>135</u> 1620
-----	---	-----	---	-----	--



## भागहार

भाग की आधुनिक विधि का वर्णन सबसे पहले श्रीधर की त्रिशतिका में मिलता है। यह विवरण निम्नवत् है -

‘भाज्य और भाजक को तुल्य राशि से अपवर्तन करने के अनन्तर भाज्य को (एक - एक अंक करके) क्रम से विलोम विधि के अनुसार भाग देना चाहिये।’<sup>6</sup>

### वर्ग/वर्गमूल

वर्ग करने के सम्बन्ध में श्रीधर का कथन है - ‘दो समान संख्याओं का गुणनफल वर्ग है।’<sup>7</sup> आगे लिखा है कि -

‘अन्तिम अंक का वर्ग करके, अन्तिम अंक के दूने को शेष अंकों से गुणा करो। उन शेष अंकों को एक स्थान दाहिनी ओर हटाओ और पुनः वही क्रिया करो। वर्ग निकालने के लिये इस प्रकार शेष को एक - एक स्थान हटा - हटा कर उपर्युक्त क्रिया करना चाहिये।’

वर्गमूल निकालने की विधि का विवरण इस प्रकार दिया है -

‘(अन्तिम) विषमस्थान में (बड़ी से बड़ी संख्या के) वर्ग को हटाओ (जो घट जाये)। उसके बाद वर्गमूल के दूने को एक स्थान (दाहिनी ओर) हटा कर (नीचे की पंक्ति में) रखो और उससे (दी हुई संख्या के) शेष को भाग दो। प्राप्त लब्धि को भी नीचे की पंक्ति में रखो। उस (लब्धि) के वर्ग को (दी हुई संख्या के शेष में) घटाओ और उसके बाद लब्धि को दूना कर दो। (इस प्रकार से) प्राप्त (द्विगुणित) संख्या को पूर्ववत् एक स्थान (दाहिनी ओर) हटाकर रखो; और इससे (दी हुई संख्या के) शेष को भाग दो। अन्त में द्विगुणित संख्या को आधा कर दो। यही इष्ट मूलगुण होगा।’<sup>8</sup>

उदाहरण - 54756 का वर्गमूल निकालना।

पहले दी हुई संख्या को लिखते हैं और सम तथा विषम स्थानों पर क्रम से क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर रेखाओं द्वारा सूचित करते हैं - यथा

1-1-1

54756

अन्तिम विषम स्थान 5 में, बड़ी से बड़ी संख्या 4 घटायी जा सकती है। अतः 5 में से 4 घटाते हैं, शेष 1 मिलता है। अतः 5 को मिटा कर उसके स्थान पर 1 लिखते हैं। इसके बाद द्विगुणित वर्गमूल ( $2 \times 2 = 4$ ) को एक स्थान दाहिनी ओर संख्या के नीचे रखते हैं -

1-1-1

14756

नीचे वाली संख्या 4 से ऊपर की संख्या 14 को भाग देते हैं; 3 लब्धि मिलती है और 2 शेष बचता है। 3 को 4 के दाहिनी ओर रखते हैं और 14 को मिटाकर उसके स्थान पर 2 रखते हैं, इस प्रकार पाटी पर निम्न संख्याएँ होती हैं -

-1-1

2756

43

3 के वर्ग को ऊपर की संख्या 27 में घटाते हैं, 18 शेष बचता है। अतः 27 को मिटाकर उसके स्थान पर 18 रखते हैं। साथ ही साथ 3 को मिटाकर उसके स्थान में 3 का दूना अर्थात् 6 रखते हैं -

$$-1-1$$

$$1856$$

$$46$$

अब 46 को एक स्थान दाहिनी ओर हटाकर लिखते हैं -

$$-1-1$$

$$1856$$

$$46$$

इसके बाद 185 को 46 से भाग देते हैं, 4 लब्धि मिलती है और 1 शेष बचता है। 4 को 46 के दाहिनी ओर रखते हैं और 185 को मिटाकर उसके स्थान पर 1 रखते हैं।

$$-1$$

$$16$$

$$464$$

अब 4 के वर्ग को 16 में घटाते हैं, शेष 0 बचता है। अतएव 16 को मिटा देते हैं। इसके बाद 4 को दूना करके रखते हैं।

$$468$$

यह द्विगुणित वर्गमूल है। इसको आधा करने पर 234 मिलता है, जो इष्ट वर्गमूल है।  
घन/घनमूल

किसी संख्या का घन ज्ञात करने के बारे में श्रीधर का वर्णन निम्न प्रकार से है -

‘अन्त्य (अर्थात् अन्तिम अंक) का घन लिखो ; एक स्थान आगे, अन्त्य के वर्ग को त्रिगुणित आद्य (अर्थात् उपान्तिम अंक या पूर्व) से गुणा करके जो आये वह लिखो ; (इसके एक स्थान आगे) आद्य के वर्ग को अन्त्य से और तीन से गुणा करके जो आये वह लिखो ; और (इसके एक स्थान आगे) आद्या का घन भी लिखो। इस प्रकार से प्राप्त होने वाली संख्या (अन्त्य और आद्य दो अंकों से बनी हुई संख्या का ) घन है।’<sup>9</sup>

श्रीधर ने घन निकालने का एक अन्य सूत्र भी दिया है -

‘(किसी दी हुई संख्या का) घन उस श्रेढी के योग के तुल्य होता है जिसके पद, 0 आदि और 1 प्रचय वाली श्रेढी में अन्तिम पद को त्रिगुणित उपान्त्य पद से गुणा करके 1 जोड़ देने से, बनते हैं।’<sup>10</sup>

सूत्र - 
$$n^3 = \sum_{r=1}^n [3r(r-1) + 1]$$

श्रीधर के शब्दों में - ‘तीन समान संख्याओं का गुणनफल घन होता है।’

$$a^3 = a \times a \times a$$

घनमूल ज्ञात करने के बारे में श्रीधर द्वारा दिया गया विवरण इस प्रकार है -

‘(इकाई से आरम्भ करके क्रमशः) एक घन स्थान होता है और दो अघन स्थान होते हैं। (दी हुई संख्या के अंकों के ऊपर घन और अघन चिह्नों को अंकित करो।) (अंतिम) घन स्थान में से (सबसे बड़ी) घन संख्या घटाओ। घनमूल को तीसरे पद (अर्थात् द्वितीय अघन स्थान) के नीचे रखकर, (द्वितीय अघन स्थान को) घनमूल के वर्ग के तिगुने से भाग दो। लब्धि को (घनमूल की) पंक्ति में (घनमूल के दाहिनी ओर) रखकर उसके वर्ग को त्रिगुणित अन्त्य (घनमूल) से गुणा करके ऊपर की संख्या को घटाओ।’<sup>11</sup> पुनः (पंक्तिवाली संख्या को घनमूल मानकर) ‘(घनमूल को) तृतीय पद (अर्थात् द्वितीय अघन स्थान) के नीचे रखो’ वाली विधि का प्रयोग करो। यही घनमूल निकालने की विधि है।

इसके बाद अनेक उदाहरण दिये गये हैं।

### भिन्न परिकर्म

भिन्नों के बारे में श्रीधर ने व्यापक रूप से चर्चा की है। उन्होंने भिन्नों को जोड़ने एवं घटाने के लिये निम्न नियम दिया है - ‘भिन्नों को समच्छेद करके उनके अंशों को जोड़ लो। पूर्णांक का हर 01 होता है।’<sup>12</sup> समच्छेदीकरण को महावीर ने कलासवर्णन रूप में लिया है।

आपने भिन्नों के भाग के सन्दर्भ में लिखा है कि - ‘भागहार के अंश और हरों के परस्पर स्थान परिवर्तन करने के बाद पूर्ववत् क्रिया (गुणन) करना चाहिये। अर्थात् एक भिन्न को दूसरी भिन्न से भाग देने के लिये दूसरी भिन्न के अंश और हर परस्पर परिवर्तित करके गुणा कर देना चाहिये।

भिन्नों के वर्ग, वर्गमूल, घन एवं घनमूल के सम्बन्ध में आपने लिखा है कि - ‘अंश के वर्ग को हर के वर्ग तथा अंश के घन को हर के घन से भाग देने पर क्रमशः (भिन्न का) वर्ग तथा घन मिलता है ; और अंश के वर्गमूल को हर के वर्गमूल से तथा अंश के घनमूल को हर के घनमूल से भाग देने पर क्रमशः (भिन्न का) वर्गमूल तथा घनमूल मिलता है।’

आपने भिन्नों को निम्नांकित 6 वर्गों में विभाजित कर उन पर विभिन्न संक्रियाओं की चर्चा की है। चर्चित 6 भिन्न निम्नवत् हैं -

1. भागजाति -  $\left( \frac{अ}{ब} \pm \frac{स}{द} \pm \frac{च}{छ} \pm \dots \right)$  प्रकार

इस प्रकार की भिन्नों को हल करने का नियम निम्न प्रकार का दिया है -

‘नीचे वाले हर से ऊपर वाले अंश को गुणा करो, (फिर) ऊपर वाले हर से नीचे; वाले हर को गुणा करो तथा (फिर) बीच के हर तथा अंश के गुणनफल को ऊपर वाले अंश में जोड़ दो।’

उदाहरण -  $\frac{2}{3} + \frac{4}{5}$  का मान ज्ञात करो।  
हिन्दू रीति के अनुसार लिखने पर

2  
3  
4  
5

(इस विधि में 2 ऊपरी अंश तथा 3 ऊपरी हर है। इसी प्रकार 4 नीचे वाला अंश तथा 5 नीचे वाला हर है।) अब विधि के अनुसार, ऊपर वाले अंश को नीचे वाले हर से गुणा करने पर तथा नीचे वाले हर को ऊपर वाले हर से गुणा करने पर, हमें निम्न संख्याएँ प्राप्त होती हैं -

2 x 5		10
3		3
4	अर्थात्	4
5 x 3		15

बीच की संख्याओं के गुणनफल को ऊपरी अंश से जोड़ने पर -

$$\frac{10 + 12}{15} \text{ अर्थात् } \frac{22}{15} \text{ या } \frac{22}{15}$$

बीच की संख्याओं को मिटा देते हैं जिनकी अब कोई आवश्यकता नहीं है।

2. प्रभाग जाति -  $\left( \frac{अ}{ब} \text{ का } \frac{स}{द} \text{ का } \frac{च}{छ} \text{ का } \text{-----} \text{ प्रकार} \right)$

श्रीधर के अनुसार - 'अंशों को अंशों से तथा हरों को हरों से गुणा करते हैं।'

उदाहरण -

$$\frac{अ}{ब} \text{ का } \frac{स}{द} \text{ का } \frac{च}{छ} \\ = \frac{अ स च}{ब द छ}$$

अन्य ग्रन्थकारों ने प्रभाग जाति के भिन्नों को हल करने का नियम भिन्नों के गुणन के नियम जैसा बताया है।

3. भागानुबन्ध जाति -  $\left( अ + \frac{ब}{स} + \text{-----} \right) \left( \frac{प}{फ} + \frac{प}{फ} \text{ का } \frac{द}{स} \right)$

प्रथम प्रकार की जाति के लिये श्रीधर ने कहा है - 'पूर्णांक को भिन्न के हर से गुणा कर भिन्न के अंश में जोड़ दो।' और दूसरी प्रकार की जाति के लिये उन्होंने कहा - 'ऊपर के छेद को नीचे के छेद से; गुणा करो और ऊपर के अंश को अपने अंश से युत (नीचे के) छेद से गुणा करो।'

4. भागापवाह जाति -

$$\left[ अ - \frac{ब}{स} \right] \text{ या } \left[ \frac{प}{फ} - \left( \frac{प}{फ} \text{ का } \frac{द}{स} \right) - \left( \frac{प}{फ} - \frac{प}{फ} \text{ का } \frac{द}{स} \right) \text{ का } \frac{त}{ध} \right]$$

भागापवाह जाति के भिन्नों को सरल करने का नियम भागानुबन्ध जाति के नियम के



समान ही है, अन्तर केवल इतना है कि इसमें जोड़ने के स्थान पर घटाना पड़ता है।

5. भाग - भाग जाति - अर्थात् निम्न स्वरूप की भिन्न -

$$\left( \text{अ} \div \frac{\text{ब}}{\text{स}} \right) \text{ अथवा } \left( \frac{\text{प}}{\text{फ}} \div \frac{\text{र}}{\text{स}} \right)$$

भाग के परिकर्म को प्रदर्शित करने का कोई चिन्ह न होने के कारण, इन भिन्नों को भी भागानुबन्ध जाति की भिन्नों की भाँति ही लिखते थे -

यथा

अ
ब
स

अथवा

प
फ
र
स

भाग इत्यादि क्रियाओं का ज्ञान प्रश्न से विदित किया जाता था ; उदाहरणतः  $1 \div \frac{1}{6}$  को षड्भागभाग द्वारा सूचित करते थे। जिसका अर्थ है, 'एक भाग का छठवाँ भाग' अर्थात्  $\frac{1}{6}$  द्वारा विभाजित।'

यह जाति सभी गणितज्ञों ने नहीं दी है। आचार्य श्रीधर और आचार्य महावीर तथा कुछ अन्य गणितज्ञों ने यह जाति दी है।

6. भागमातृ जाति - अर्थात् उपर्युक्त स्वरूपों के मिश्रण से उत्पन्न भिन्न -

महावीर ने लिखा है कि ऐसी भिन्न 26 प्रकार की हो सकती हैं। श्रीधर ने इस जाति के अन्तर्गत निम्नलिखित उदाहरण दिया है<sup>13</sup> -

'आधा, चौथाई का चौथाई, त्रिभागभाग, अपने आधे से युक्त आधा और अपने आधे से रहित तृतीयांश को जोड़ने पर क्या धन होगा ?'

$$\frac{1}{2} + \left( \frac{1}{4} \text{ का } \frac{1}{4} \right) + \left( 1 \div \frac{1}{3} \right) + \left( \frac{1}{2} + \frac{1}{2} \text{ का } \frac{1}{2} \right) + \left( \frac{1}{3} + \frac{1}{3} - \text{का } \frac{1}{2} \right)$$

प्राचीन भारतीय पद्धति के अनुसार यह इस प्रकार लिखा जाता था -

1	1	1	1	1	1
2	4	4	1	2	3
			3	1	-1
				2	2

1
1
3

भारतीय संकेत का अवगुण स्पष्ट है ; क्योंकि

1	1
4	4

को  $\frac{1}{4} + \frac{1}{4}$  और

को  $1 \frac{1}{3}$  भी पढ़ सकते हैं। अतएव संकेत का यथार्थ अर्थ प्रश्न के संदर्भ से ही जाना जा सकता है।

## त्रैराशिक आदि

त्रैराशिक का अर्थ है 'तीन राशियाँ' अर्थात् 'तीन राशियों से संबंध रखने वाला नियम'। त्रैराशिक के प्रश्न का स्वरूप निम्न प्रकार का होता है -

“यदि ‘प्र’ में ‘फ’ मिलता है, तो ‘इ’ में क्या मिलेगा? यहाँ पर तीन राशियाँ हैं - ‘प्र’, ‘फ’ तथा ‘इ’। भारतीय गणितज्ञ ‘प्र’ को प्रमाण, ‘फ’ को फल और ‘इ’ को इच्छा कहते हैं। ये नाम भारतीय गणित के सब ग्रन्थों में मिलते हैं। कभी-कभी इन्हें ‘प्रथम’, ‘द्वितीय’ और ‘तृतीय’ (राशि) भी कहा गया है। सभी गणितज्ञों ने लिखा है कि प्रथम और तृतीय राशियाँ सदृश, अर्थात् एक जाति की होती हैं।”

श्रीधर कहते हैं - ‘(त्रैराशिक की) तीन राशियों में से प्रमाण और इच्छा, जो एक जाति की हैं, आदि और अन्त की हैं ; फल राशि, जो अन्य जाति की है, मध्य की है। मध्य और अन्तिम के गुणनफल को आदि से भाग देना चाहिये।’

उदाहरण - यदि एक पल और एक कर्ष चन्दन की लकड़ी 10 पण में प्राप्त होती है तो नौ पल और एक कर्ष (चन्दन की लकड़ी) कितने में प्राप्त होगी ?

हल - यहाँ पर 1 पल और 1 कर्ष ( $= 1\frac{1}{4}$  पल) प्रमाण है,  $10\frac{1}{2}$  पण फल है, और 9 पल और एक कर्ष ( $= 9\frac{1}{4}$  पल) इच्छा है। इन राशियों को निम्न प्रकार से लिखते हैं -

1	10	9
1	1	1
4	2	4

भिन्नो का सवर्णन करने पर, हमें यह मिलता है -

5	21	37
4	2	4

द्वितीय और तृतीय राशियों को गुणा करने पर और प्रथम राशि से भाग देने पर, हमें मिलता है -

21	5
2	4
37	
4	

$$= \frac{\frac{21}{2} \times \frac{37}{4}}{\frac{5}{4}}$$

हरों का कोष्ठ परिवर्तन करने पर हमें यह मिलता है -

$$\begin{array}{|c|c|} \hline 21 & 5 \\ \hline 4 & 2 \\ \hline 37 & 4 \\ \hline \end{array} = \frac{21 \times 4 \times 37}{5 \times 2 \times 4} \text{ पण}$$

= 4 पुराण, 13 पण, 2 काकिणी और 16 वराटक।

### व्यस्त त्रैराशिक

त्रैराशिक का नियम बतलाने के बाद भारतीय गणितज्ञों ने लिखा है कि जब अनुपात व्यस्त हो तब त्रैराशिक की क्रिया व्यस्त रीति से करना चाहिये।

श्रीधर लिखते हैं - 'त्रैराशिक व्यस्त होने पर मध्य-राशि को प्रथम राशि से गुणा करके अन्तिम राशि से भाग देना चाहिये।'

उदाहरण - आठ-आठ मुक्ताओं वाले 20 हारों में से छह-छह मुक्ताओं वाले कितने हार बन सकते हैं ?

न्यास 

8	20	6
---	----	---

 1 फल - हार 

26
2
3

### मिश्रानुपात

मिश्रानुपात को भारतीय गणित में, प्रश्न में प्रयुक्त राशियों की संख्या के अनुसार पंचराशिक, सप्तराशिक, नवराशिक इत्यादि संज्ञाएँ दी गई हैं, जो कि कभी-कभी 'बहुराशिक' संज्ञक सामान्य शीर्षक के अन्तर्गत वर्गीकृत किये गये हैं।

श्रीधर ने लिखा है कि - 'फल को एक पक्ष से दूसरे पक्ष में ले जाओ आर (तब सब भिन्नों के) हरों का पक्ष परिवर्तन करो। इसके बाद दोनों पक्षों की राशियों को (अलग-अलग) गुणा करो और अधिक राशियों वाले पक्ष के गुणनफल को दूसरे पक्ष की राशियों के गुणनफल से भाग दे दो। (प्राप्त लब्धि इष्ट फल है)।

उदाहरण - यदि 100 (निष्क) का 1 महीने का ब्याज 5 (निष्क) हो, तो 16 (निष्क) का 1 वर्ष का ब्याज क्या होगा? ब्याज और मूलधन के ज्ञान से समय, तथा समय और ब्याज के ज्ञान से मूलधन भी ज्ञात करो।"

### ब्याज निकालना -

प्रथम पक्ष है - 100 निष्क, 1 महीना, 5 निष्क (फल)

द्वितीय पक्ष है - 16 निष्क, 12 महीने, 21 निष्क

दोनों पक्ष की राशियों को निम्न प्रकार से ऊर्ध्वाकार कोष्ठों में लिखते हैं -

100	16
1	12
5	0

ऊपर पहले पक्ष में सबसे नीचे की राशि 5, प्रथम पक्ष का फल है, दूसरे पक्ष में कोई फल नहीं है। फलों का पक्ष - परिवर्तन करने पर मिलता है -

100	16
1	12
0	5

दूसरे पक्ष में राशियों की संख्या अधिक है और उसका गुणनफल 960 है। कम राशियों वाले पक्ष की संख्याओं का गुणनफल 100 है। अतएव इष्ट  $\frac{960}{100} = \frac{48}{5}$  अर्थात्  $9\frac{3}{5}$  है। प्राचीन भारतीय इसे इस प्रकार लिखते थे -

फल -

48	अर्थात् निष्क 9, निष्क भाग
5	

3
5

समय निकालना -

इस अवस्था में दो पक्ष निम्नलिखित हैं -

100 निष्क, 1 महीना, 5 निष्क

और 16 निष्क, य महीना,  $\frac{48}{5}$  निष्क

इन्हें पहले की भाँति स्थापित करने पर मिलता है -

100	16
1	0
5	48
	5

फलों का, अर्थात् सबसे नीचे के कोष्ठों की संख्याओं का पक्षान्तर करने पर मिलता है -

100	16
1	0
48	5
5	

हरों का पक्ष - परिवर्तन करने पर मिलता है -

100	16
1	0
48	5
	5

यहाँ पर अधिक संख्याएँ पहले पक्ष में हैं और उनका गुणनफल 4800 है। दूसरे पक्ष की संख्याओं का गुणनफल 400 है। अतः इष्टफल है -

$$\begin{array}{|c|} \hline 4800 \\ \hline 400 \\ \hline \end{array} = \frac{4800}{400} = 12 \text{ महीने}$$

**मूलधन निकालना -**

प्रथम पक्ष है - 100 निष्क, 1 महीना, 5 निष्क

द्वितीय पक्ष है - य निष्क, 12 महीने,  $\frac{48}{5}$  निष्क  
इन्हें पूर्ववत् इस प्रकार लिखते हैं -

100	0
1	12
5	48
	5

फलों (अर्थात् सबसे नीचे वाले कोष्ठों की राशियों) का पक्ष-परिवर्तन करने पर मिलता है -

100	0
1	12
48	5
5	

हरों का पक्ष - परिवर्तन करने पर मिलता है -

100	0
1	12
48	5
	5

अधिक संख्याओं वाले पक्ष की संख्याओं के गुणनफल को कम संख्याओं वाले पक्ष की संख्याओं के गुणनफल से भाग देने पर मिलता है -

$$\begin{array}{|c|} \hline 4800 \\ \hline 300 \\ \hline \end{array} = 16 \text{ निष्क}$$

**सरल समीकरण**

श्रीधर ने भिन्नों की विभिन्न जातियों के सरलीकरण की प्रक्रिया एवं व्यवहार वर्ग

में जीव विक्रय, भाण्ड-प्रतिभाण्ड, आदि अनेक प्रकरणों में सरल समीकरण, सरल युगपत समीकरण, अनिर्धार्य रेखीय समीकरण को हल करने में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

### वर्ग समीकरण

श्रीधर ने सरल समीकरण के अलावा वर्ग समीकरणों का भी विवेचन किया है। श्रीधर के बीजगणित विषयक पांडित्य का भास्कर ने भी लोहा माना है। वे लिखते हैं -

**ब्रह्माह्वयश्रीधरपद्मनाभबीजानि यस्मादतिविस्तृतानि।  
आदाय तत्सारमकारि नूनं सद्युक्तियुक्तं लघुशिष्यतुष्टये॥**<sup>14</sup>

अर्थात् ब्रह्मगुप्त, श्रीधर एवं पद्मनाभ के बीजगणित विषयक कार्य अत्यंत विस्तृत हैं, मैंने उनसे केवल उनका सार ही ग्रहण किया है। यह कथन श्रीधर की बीजगणित विषयक कृति की उपस्थिति एवं महत्त्व को दर्शाता है। पाटीगणित विषयक अपनी कृतियों में उन्होंने अपने एतद्विषयक ज्ञान का एक अंश ही प्रस्तुत किया है। यहाँ हम उनके वर्ग समीकरण विषयक लाघव को प्रस्तुत कर रहे हैं।

भास्कर (1150 ई.) ने अपने बीजगणित में श्रीधर का निम्न नियम उद्धृत किया है -

**चतुराहतवर्ग समै रूपैः पक्षद्वयं गुणयेत्।  
अव्यक्त वर्ग रूपैर्युक्तौ पक्षो ततो मूलम्॥**<sup>15</sup>

वर्ग समीकरण  $[ax^2 + bx = c]$  के पक्षों को अज्ञात राशि के वर्ग के गुणक (a) के चार गुने (4a) से गुणा करो। दोनों पक्षों में अज्ञात राशि के गुणक (b) के वर्ग  $(b^2)$  को जोड़ो। तदुपरान्त वर्गमूल ज्ञात करो। अर्थात्  $ax^2 + bx = c$  का हल निम्नवत् होगा -

$$4a[ax^2 + bx] + b^2 = 4a.c + b^2$$

$$4a^2 + 4abx + b^2 = 4ac + b^2$$

$$(2ax + b)^2 = b^2 + 4ac$$

$$2ax + b = \sqrt{b^2 + 4ac}$$

$$2ax = -b + \sqrt{b^2 + 4ac}$$

$$x = \frac{-b + \sqrt{b^2 + 4ac}}{2a}$$

2a

यह रीति वर्ग समीकरण को हल करने की वर्तमान में प्रचलित रीति है। जिसे त्रुटिपूर्ण ढंग से उमरखय्याम की विधि कहते हैं।

श्रीधर के पाटीगणित<sup>16</sup> में एक ऐसा नियम पाया जाता है जो अनिर्धार्य वर्ग समीकरण से सम्बद्ध है एवं किसी अन्य भारतीय गणितज्ञ की कृतियों में नहीं मिलता है।



गुणके वर्गयोर्मध्ये तत्पदाधो भुजश्रुती।  
 केचित्प्राक्कथिते तत्र वज्र केणाहती तयोः॥  
 अन्तरस्य कृतिः क्षेपस्तकोटिः प्रथमं पदम्।  
 ऋजुहृत्यन्तरं ज्येष्ठं रूपक्षेपेऽन्तरोद्धृते॥

यह  $Nx^2 + 1 = y^2$  का सापेक्ष हल प्रदान करता है -

$$x = \frac{K}{Bh - Ab}, \quad y = \frac{Ah - Bb}{Bh - Ab}$$

यहाँ b, k, h किसी समकोण त्रिभुज के आधार, कर्ण एवं लम्ब हैं तथा A एवं B दो संख्याएँ हैं जहाँ  $A^2 - B^2 = N$

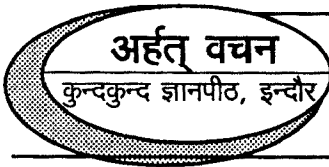
श्रीधर द्वारा श्रेणी व्यवहार, क्षेत्र गणित एवं ठोस ज्यामिति पर भी महत्वपूर्ण कार्य किया गया है किन्तु श्रीधर ने महावीर के समान क्षेत्रगणित पर कोई स्वतंत्र कृति नहीं लिखी। इनका विवेचन भाग - 3 में किया जायेगा।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पाटीगणित के विविध विषयों पर श्रीधर ने अत्यन्त मौलिक एवं प्रतिभापूर्ण कार्य किया है। इनकी मौलिकता, विशिष्टता एवं पूर्ववर्ती तथा परिवर्ती गणितज्ञों से तुलनात्मक अध्ययन हेतु भाग - 3 (लेख का) देखें।

**सन्दर्भ -**

1. कपाट का अर्थ है 'दरवाजे का पल्ला' और सन्धि का अर्थ है 'जोड़'। अतः कपाट-सन्धि का अर्थ है 'दरवाजे के पल्लों का जोड़'।
2. कृपाशंकर शुक्ला, हिन्दू गणित शास्त्र का इतिहास, भाग - 1 (प्रो. बी.बी. दत्त की मूल अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद), उ.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, पृ. 129 एवं त्रिशतिका (द्विवेदी संस्करण), पृ. 3 आदि।
3. यही कारण है कि गुणन के अर्थ में हनन और इसी प्रकार के अन्य पर्यायवाचक शब्दों का प्रयोग किया जाता था।
4. इसीलिये गुणनफल को प्रत्युत्पन्न कहते थे।
5. हिन्दू गणित शास्त्र का इतिहास, पृ. 138, त्रिशतिका, पृ. 3.
6. वही, पृ. 143 ; त्रिशतिका, पृ. 4.
7. वही, पृ. 47 ; त्रिशतिका, पृ. 5.
8. वही, पृ. 163 ; त्रिशतिका, पृ. 5.
9. वही, पृ. 155 ; त्रिशतिका, पृ. 6.
10. वही, पृ. 159.
11. यहाँ घनमूल को 'अन्त्य' और लब्धि को 'आदि' कहा गया है।
12. हिन्दू गणित शास्त्र का इतिहास, पृ. 188 ; त्रिशतिका, पृ. 8.
13. त्रिशतिका, पृ. 12.
14. पाटीगणित की प्रस्तावना, पृ. XIV.
15. वही, पृ. XIII.
16. वही, पृ. 159, पंक्ति 9 - 12.

**प्राप्त : संशोधनोपरांत प्राप्त - जनवरी 2001**



## गणनकृति : स्वरूप एवं विवेचन

■ प्रो. उदयचन्द्र जैन \*

‘क्रियते इति कृति’ - जो किया जाता है वह कृति है। ‘क्रियते अनया इति व्युत्पत्तेः’ - जिससे किया जाता है वह कृति है। ‘कदी कज्जं’ - कृति कार्य है। किसी भी विषय की रचना, विवेचन, प्ररूपणा, निरूपण, व्याख्यान, आख्यान, प्रवचन, कथन, विशेष प्रतिपादन आदि कृति हैं। ‘जहा उद्देशो तहा णिद्देशो त्ति कद्दु कदि - अणिओगद्दार - परुवण्डमुत्तर सुत्तं भणदि’ (ष. 4/9/236) जैसा उद्देश्य होता है, वैसा ही निर्देश होता है, ऐसा समझकर कृति की जाती है। उसी कृति के अनुयोग (अर्थ के साथ सूत्र की जो अनुकूल योजना की जाती है) द्वार (पृथक - पृथक पदों के अभिप्राय) की प्ररूपणा की जाती है।

‘जत्तिएहि पदेहि जोद्दसमणणाणं पडिबद्धेहि जो अत्थो जाणिज्जदि तेसिं पदाणं तत्थुप्पण्ण - णाणस्य य अणियोगो त्ति सण्णां’ (4/9/24) अर्थात् जितने पदों से चोदहमार्गणाओं का जो अर्थ माना जाता है उन पदों का उनसे उत्पन्न ज्ञान की अनुयोग संज्ञा होती है। मार्गणा का अर्थ अन्वेषण, गवेषण भी है। जहाँ, सत्, संख्या आदि विशिष्ट चौदह जीव समासों का अन्वेषण किया जाता है। गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, संज्ञा और आहार का जहाँ अन्वेषण होता है वहाँ अनुयोगद्वार है। चौबीस अनुयोगद्वारों में कृति का प्रथम स्थान है, जिसमें विविध प्रकार के औदारिक आदि शरीर का संघातन, परिशीलन का वर्णन किया जाता है तथा सबके प्रथम, अप्रथम, चरम और अचरम समय में स्थित जीवों की कृति, नोकृति और अव्यक्तव्य रूप संख्याओं की प्ररूपणा की जाती है।

कृति के नाम, स्थापना, द्रव्यकृति, गणनकृति, ग्रन्थकृति करणकृति और भावकृति ये सात अधिकार हैं। इन सब कृतियों को ‘णङ्गम - ववहार - संगहा सव्वाओ’ (ष. 4/9/240) नैगम, व्यवहार और संग्रह नय में स्वीकार किया गया है।

गणनकृति स्वरूप - गणनकृति में गणना विशेष को महत्व दिया जाता है। ‘एक्कमादिं कादूण जाव उक्कस्साणंतेत्ति ताव गणणा त्ति दुच्चदे’ (ष. 4/9/276) एक को आदि से लेकर उत्कृष्ट अनन्त तक की जो राशि कही जाती है वह ‘गणना’ है।

गणना - ‘एक्कादि - एयादिया’ - एक से प्रारंभ करना।

संख्या/संख्यात - ‘दो आदीय वि जाण संखे त्ति’ - दो आदि से उत्कृष्ट अनन्त तक की गणना ‘संख्यात’ कहलाती है।

कृति - गणनाकृति - ‘तीयादीणं णियमा कदि त्ति सण्णा दु बोद्धव्वा’ - तीन से लेकर उत्कृष्ट अनन्त तक की गणना की जाती है। वह कृति गणनाकृति संज्ञा को प्राप्त करती है। ‘गणनकदीएपयदं’ (4/9/452) गणना के बिना अनुयोगद्वार नहीं बन सकता।

जह धिय मोराण सिहा णायानं लंछणं च सत्थाणं।

मुमवारुढं गणियं तत्थम्भासं तदो कुज्जा॥ (ष. 4/9/452)

जैसे मयूरों की शिखा मुख्यता रुद्ध लक्षण है, वैसे ही न्यायशास्त्र का लक्षण गणक/गणित है।

गणनकृति के भेद -

णोकदी (नो कृति - एक गणना प्रकार - एओ णोकदी - एक संख्या नोकृति है, क्योंकि

\* शीडर - मोहनलाल सुखाड़िया वि.वि., उदयपुर। निवास - पिऊ कुंज, अरविन्दनगर, उदयपुर (राज.)

जो राशि वर्गित होकर वृद्धि को प्राप्त होती है और अपने वर्ग में से अपने वर्ग के मूल को कम कर वर्ग करने पर जो वृद्धि को प्राप्त होती है, उसे कृति कहते हैं। एक संख्या का वर्ग करने पर वृद्धि नहीं होती तथा उसमें से वर्गमूल कम कर देने पर वह निर्मूल नष्ट हो जाती है। इस कारण एक संख्या नोकृति है।

**विदियगणनजादी** - 'दुवे अवत्तव्या कदि त्ति' दो संख्या अवत्तव्य कृति है।

**तदियगणवाकदिविहाण** - तिप्पहुडि जा संखा वग्गिदे वड्ढदि तत्थं मूलमवणिय वग्गिदे वि वड्ढिमल्लियइ। तीन से लेकर जो संख्या वर्गित करने पर चूंकि बढ़ती है और उसमें से मूल को कम करके पुनः वर्ग करने पर भी वृद्धि को प्राप्त होती है, ऐसी कृति गणनकृति कहलाती है।

तीन से अतिरिक्त गणनकृति नहीं पाई जाती है। एक एक ऐसी गणना करने पर नोकृतिगणना तथा तीन, चार व पाँच इत्यादि क्रम से गणना करने पर कृतिगणना कहलाती है। कृतिगत संख्यात, असंख्यात व अनन्त भेदों से गणनाकृति अनेक प्रकार की है।

**नोकृति संकलना** - 'एगादि एणुत्तरकमेण वड्ढिरासी णोकदिसंकलणा' - एक को आदि लेकर एक अधिक क्रम से वृद्धि प्राप्त राशि नोकृति संकलना है। जैसे - 1,2,3,4,5,6,7 आदि।

**अवत्तव्य संकलना** - 'दो आदि दो उत्तरकमेण वड्ढिगदावत्तव्यसंकलणा' दो को आदि लेकर दो से अधिक क्रम से वृद्धि को प्राप्त राशि अवत्तव्य संकलना है। जैसे - 2,4,6,8,10,12,14 आदि।

**कृति संकलना** - 'तिण्णि चत्तारि आदीसु अण्णदरमादिं कादूण तेसु चेव वण्णदरुत्तरकमेण गदवड्ढी कदि संकलणां' तीन व चार आदि में अन्यतर को आदि लेकर उसमें से ही अन्यतर के अधिक क्रम से वृद्धिगत राशि कृति संकलन है। जैसे - 4,8,12,16 आदि।

जैसे - 3,6,9,12 आदि।

जैसे - 5,10,15,20 आदि।

**संयोगी भंग** - नोकृति, अव्यक्तव्य और कृति संकलना के छह द्विसंयोगी भंग हैं - नोकृति - अव्यक्तव्य, नोकृति - कृति, अव्यक्तव्य कृति, अव्यक्तव्य नोकृति, कृति - नोकृति और कृति अव्यक्तव्य।

**गणन के अन्य प्रकार** - 'धण - रिण - धणरिणगणिदं सव्वं वत्तव्वं।

'धनगणित - संकलणा - वग्ग - वग्गावग्ग - घण - घणाघण - रासि - उप्पत्ति - णिमित्तगुणयारो कलासवण्णा जाव ताव भेय - पड्णयजाई ओ तेरासिय - पंचरासियादि सव्वं धणगणिदं' (ष. 4/9/276) जिसमें संकलना, वर्ग, वर्गवर्ग, धन, धनाधन राशियों की उत्पत्ति में निमित्तभूत गुणकार और कलासवर्ण तक भेद प्रकीर्णक जातियाँ त्रैराशिक या पंचराशिक आदि सब धनगणित हैं।

**ऋणगणित** - व्युत्कलना, भागहार और क्षय रूप कलासवर्ण आदि सूत्रप्रतिबद्ध संख्याएँ ऋणगणित हैं।

**धनऋणगणित** - गतिनिवृत्तिगणित और कुट्टिकार आदि गणित धनऋणगणित है।

**अनुगम की दृष्टि से गणित/गणनकृति** - 'अनुगम्यंते परिच्छिन्त इति अनुगमा; षड्द्रव्यत्वं' इसके चार भेद हैं -

1. ओघानुगम - मूलौघानुगम और आदेशौघानुगम।

2. प्रथमानुगम - मार्गणों के प्रथम समय में यह अनुगम किया जाता है।

3. चरमानुगम - नारकी जीव चरम समय में कथंचित हैं, क्योंकि तीन को आदि लेकर

संख्यात व असंख्यात नारकी अंतिम समय में कदाचित् पाए जाते हैं। भव्यसिद्धिक और अचक्षुदर्शनी चरम समय में कथंचित् कृति, कथंचित् नोकृति और कथंचित् अव्यक्तव्य हैं, क्योंकि इनके समय के सान्तरता पायी जाती है। अचरम समय में नियम से कृति है।

**4. संचयानुगम** - इसमें सतप्ररूपणा, द्रव्यप्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम, इन आठ अनुगमों/मिलान/मेल या ज्ञान पर विचार किया जाता है। प्रत्येक जीव की कृति, नोकृति और अव्यक्तव्य का संचय होता है। उनके विषय को जानना यही अनुगम है। त्रस और स्थावर दोनों ही प्रकार के जीवों की गणन संख्यात, असंख्यात, अनन्त के साथ-साथ उनकी जघन्य कृति और उत्कर्ष कृति पर भी विचार किया जाता है। या जिसके द्वारा जीवादि पदार्थ जाने जाते हैं, ऐसी पद मीमांसा भी गणन है।

गणन कृति एक ऐसी कृति है, जिससे समस्त राशियों का प्रमाण भी निकल आता है, उसका सांगोपांग विवेचन इस बात को भी प्रमाणित करता है कि कौन से जीव कितने हैं, उनका कितना समय है, वे किस की अपेक्षा अधिक हैं और किसी की अपेक्षा कम हैं, इत्यादि गणनकृति की पद्धति है। समस्त वस्तु स्थिति के लेखे-जोखे के लिये ये ही कृति प्रामाणिक भी है।

गणनकृति में उन ग्रंथों को महत्व दिया जाता है जो गणित से संबंधित होती हैं, जिनमें तीनों लोकों के विषय का समावेश होता है। षट्खंडागम, कषायपाहुड एवं इनकी टीकायें जीव द्वारा कृत कर्मों का वास्तविक मूल्यांकन करती हैं। प्रत्येक जीव का प्रमाण इनकी विशेषता है, इनमें जहाँ सत् की अपेक्षा एक है, वहीं विधि-निषेध आदि से दो, द्रव्य, गुण एवं पंर्याय से तीन, बंध, मुक्त, बन्धकारण और मोक्षकारण की अपेक्षा चार, शरीर की औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और परिणामिक दृष्टि पाँच संख्या को निर्धारित करती है। जीव, पुद्गलादि छह द्रव्य, मुक्त, संसारी, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल आदि से सात तत्व, भव्य, अभव्य, मुक्त, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल की अपेक्षा आठ, नौ पदार्थ से नौ इत्यादि वस्तु की अवस्थाएँ ही नहीं, अपितु प्रत्येक की जघन्य, उत्कृष्ट आदि स्थिति भी गणनकृति का विषय है।

तिलोयपण्णत्ति, तिलोयसार आदि ग्रंथ तीन लोक की सम्पूर्ण स्थिति गणित पक्ष के आधार पर करते हैं। चन्द्र की परिधि चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्य के गुणों का गणन सूर्यप्रज्ञप्ति आदि में है। अष्टांग आयुर्विज्ञान/शरीर विज्ञान का संपूर्ण पक्ष प्राणावाय में है। इस तरह प्रथमानुयोग में वर्णित त्रिषष्टि शलाका पुरुषों के स्थिति, काल, चर्या-विहार, मोक्ष आदि की गणन पद्धति गणनकृति है। छह काल, कुलकर, कल्पयुग चौबीस तीर्थकर, बारह चक्रवर्ती, नारायण-प्रतिनारायण आदि की निश्चित संख्या भी गणनकृति का रहस्य है।

इस तरह चौसठ अक्षर, अक्षर संयोग, जो समस्त अंग ग्रन्थों का प्रमाण बतलाता है। एक लाख चौरासी हजार सौ सड़सठ कोड़ाकोड़ी चवालीस लाख तिहत्तर सौ सत्तर करोड़, पंचानवें लाख इक्यावन हजार छह सौ पन्द्रह अक्षर संयोग की दृष्टि से अंग आगमों का प्रमाण गणनकृति है। इनके पद एक सौ बारह करोड़ तेरासी लाख अट्ठावन हजार पाँच पद मात्र हैं। मध्यम पद - 16348307888 के संयोगाक्षरों से है। अर्थपद एवं प्रमाणपद का जितना भी गणन है, वह भी गणनकृति है। इत्यादि समस्त संघात, प्रतिवृत्ति, अनुयोगद्वार आदि अंगश्रुत की संख्या गणनकृति है।

**प्राप्त ; 22.09.2002**

## अर्हत् वचन पुरस्कार वर्ष 13 (2001) की घोषणा

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा मौलिक एवं शोधपूर्ण आलेखों के सृजन को प्रोत्साहन देने एवं शोधार्थियों के श्रम को सम्मानित करने के उद्देश्य से वर्ष 1990 में अर्हत् वचन पुरस्कारों की स्थापना की गई थी। इसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष अर्हत् वचन में एक वर्ष में प्रकाशित 3 श्रेष्ठ आलेखों को पुरस्कृत किया जाता है।

वर्ष 2001 के चार अंकों में प्रकाशित आलेखों के मूल्यांकन के लिये एक त्रिसदस्यीय निर्णायक मण्डल का निम्नवत् गठन किया गया था -

1. **प्रो. ए. ए. अब्बासी**  
पूर्व कुलपति - देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर  
बी - 417, सुदामा नगर, इन्दौर
2. **प्रो. गणेश कावडिया**  
प्राध्यापक - अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र अध्ययनशाला, दे.अ.वि.वि,  
ए - 3, विश्वविद्यालय आवासीय परिसर,  
खण्डवा रोड़, इन्दौर
3. **श्री सूरजमल बोबरा**  
सदस्य - संपादक मंडल, अर्हत् वचन,  
9/2, स्नेहलतागंज (श्रम शिविर के पीछे), इन्दौर

निर्णायकों द्वारा प्रदत्त प्राप्तांकों के आधार पर निम्नांकित आलेखों को क्रमशः प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार हेतु चुना गया है। ज्ञातव्य है कि पूज्य मुनिराजों, आर्यिका माताओं, अर्हत् वचन सम्पादक मंडल के सदस्यों एवं विगत पाँच वर्षों में इस पुरस्कार से सम्मानित लेखकों द्वारा लिखित लेख प्रतियोगिता में सम्मिलित नहीं किये जाते हैं। पुरस्कृत लेख के लेखकों को क्रमशः रुपये 5000/-, 3000/- एवं 2000/- की नगद राशि, प्रशस्ति पत्र एवं स्मृति चिन्ह से सम्मानित किया जायेगा।

प्रथम पुरस्कार : Solar System in Jainism and Modern Astronomy, 13(1), January 2001.

**Dr. Rajmal Jain,**

45, Adarsh Colony Pulla, P.B. 24, Udaipur (Raj.)

द्वितीय पुरस्कार : Jainism Abroad, 13(1), January 2001.

**Sri Satish Kumar Jain, Secretary General - Ahimsa International, C - III/3129, Vasant Kunj, New Delhi.**

तृतीय पुरस्कार : जैन धर्म में आस्रव तत्त्व का स्वरूप, 13 (3 - 4), जुलाई - दिसम्बर 2001.

**डॉ. मुकुलराज मेहता, रिसर्च साइंटिस्ट, 'सी' दर्शन एवं धर्म विभाग, काशी हिन्दू वि.वि., वाराणसी (उ.प्र.)**

पुरस्कार समर्पण कार्यक्रम संभवतः दिसम्बर 2002 में आयोजित किया जायेगा।

**देवकुमारसिंह कासलीवाल**  
अध्यक्ष

**कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर**

**डॉ. अनुपम जैन**  
मानद सचिव



## जैन दर्शन मान्य काल - द्रव्य

□ समणी मंगलप्रज्ञा \*

पांच अस्तिकाय के साथ जब 'काल-द्रव्य' को योजित कर दिया जाता है तब उन्हें ही षड्द्रव्य कहा जाता है।<sup>1</sup> विश्व - व्यवस्था में कालद्रव्य का महत्वपूर्ण स्थान है।

जैन परम्परा में काल के संदर्भ में दो अवधारणाएं प्राप्त हैं -

(1) प्रथम अवधारणा के अनुसार काल स्वतंत्र द्रव्य नहीं है, वह जीव और अजीव की पर्यायमात्र है।<sup>2</sup> इस मान्यता के अनुसार जीव एवं अजीव द्रव्य के परिणमन को ही उपचार से काल माना जाता है। वस्तुतः जीव और अजीव ही काल द्रव्य है। काल की स्वतंत्र सत्ता नहीं है। पातंजलयोगसूत्र में भी काल की वास्तविक सत्ता नहीं मानी गयी है। काल वस्तुगत सत्य नहीं है। बुद्धिनिर्मित तथा शब्दज्ञानानुपाती है। व्युत्थितदृष्टि वाले व्यक्तियों को वस्तु स्वरूप की तरह अवभासित होता है।<sup>3</sup> इसका यही भावार्थ है कि काल का व्यावहारिक अस्तित्व है, तात्त्विक अस्तित्व नहीं है।

(2) दूसरी अवधारणा के अनुसार काल स्वतंत्र द्रव्य है। अद्वासमय के रूप में उसका पृथक् उल्लेख है।<sup>4</sup> यद्यपि काल को स्वतंत्र द्रव्य मानने वालों ने भी उसको अस्तिकाय नहीं माना है। सर्वत्र धर्म - अधर्म आदि पांच अस्तिकायों का ही उल्लेख प्राप्त होता है।<sup>5</sup>

श्वेताम्बर परम्परा में काल की दोनों प्रकार की अवधारणाओं का उल्लेख है किन्तु दिगम्बर परम्परा में काल को स्वतंत्र द्रव्य मानने वाली अवधारणा का ही उल्लेख है।

यद्यपि श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों परम्पराओं में काल को स्वतंत्र द्रव्य माना गया है किन्तु काल के स्वरूप के सम्बन्ध में उनमें परस्पर भिन्नता है। श्वेताम्बर परम्परा काल के अणु नहीं मानती तथा व्यावहारिक काल को समयक्षेत्रवर्ती तथा नैश्चयिक काल को लोक - अलोक प्रमाण मानती है।<sup>6</sup> दिगम्बर परम्परा के अनुसार 'काल' लोकव्यापी और अणु रूप है। कालाणु असंख्य है, लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर एक - एक कालाणु स्थित है।<sup>7</sup>

पं. दलसुख मालवणिया ने काल को स्वतंत्र द्रव्य न मानने वाली अवधारणा को प्राचीन माना है। उनका कहना है कि "काल को पृथक् नहीं मानने का पक्ष प्राचीन मालूम होता है, क्योंकि लोक क्या है? इस प्रश्न का उत्तर श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों के मत में एक ही है कि लोक पंचास्तिकायमय है। कहीं यह उत्तर नहीं देखा गया कि लोक षड्द्रव्यात्मक है। अतएव मानना पड़ता है कि जैनदर्शन में काल को पृथक् मानने की परम्परा उतनी प्राचीन नहीं। यही कारण है कि श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों में काल के स्वरूप के विषय में मतभेद भी देखा जाता है।"<sup>8</sup>

आचार्य महाप्रज्ञ इन दोनों अवधारणाओं की संगति अनेकान्त के आधार पर करते हैं। उनका मानना है कि "काल छह द्रव्यों में एक द्रव्य भी है और जीव-अजीव की पर्याय भी है। ये दोनों कथन सापेक्ष हैं, विरोधी नहीं। निश्चयदृष्टि में काल जीव-अजीव की पर्याय है और व्यवहार दृष्टि में वह द्रव्य है। उसे द्रव्य मानने का कारण उसकी उपयोगिता है। वह परिणमन का हेतु है, यही उसका उपकार है। इसी कारण वह द्रव्य माना जाता है।"<sup>10</sup>

\* लेखिका तेरापंथ श्वेताम्बर जैन धर्मसंघ के आचार्य श्री महाप्रज्ञजी की आज्ञानुवर्तनी है। निदेशक - महादेवलाल सरावगी अनेकान्त शोधपीठ, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राजस्थान)

## काल - परमाणु

भगवती सूत्र में चार प्रकार के परमाणुओं का उल्लेख हुआ है।<sup>11</sup> यद्यपि यह उल्लेख द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव के संदर्भ में हुआ है। जैसे कि आगम साहित्य की शैली है वह वस्तु की व्याख्या द्रव्य, क्षेत्र आदि के माध्यम से करता है, उदाहरण स्वरूप हम पंचास्तिकाय का संदर्भ ले सकते हैं।<sup>12</sup> किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में परमाणु के प्रकार पुद्गल से जुड़े हुए नहीं है अर्थात् पौद्गलिक परमाणु की द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव के आधार पर व्याख्या नहीं की जा रही है अपितु द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव के परमाणु बताए जा रहे हैं। द्रव्यरूप परमाणु को द्रव्य परमाणु, आकाशप्रदेश को क्षेत्र परमाणु समय को कालपरमाणु एवं भावपरमाणु को पुद्गल का परमाणु माना गया है।<sup>13</sup> प्रस्तुत प्रसंग में विशेष मननीय काल-परमाणु है। भगवती टीका में समय को काल परमाणु कहा है, जैसा कि हमने ऊपर उल्लेख किया है। जैन दर्शन के अनुसार काल के अंतिम अविभाज्य भाग को समय कहा जाता है।<sup>14</sup> जिसे जैनतर दर्शनों में क्षण कहा गया है।<sup>15</sup> क्षण और समय ये दोनों शब्द एक ही भाव को प्रकट कर रहे हैं उनको परस्पर पर्यायवाची माना जा सकता है। श्वेताम्बर परम्परा में काल को पर्याय तथा स्वतंत्र द्रव्य रूप में मानने की अवधारणा है। भगवती टीका में समय को काल-परमाणु कहा है।<sup>16</sup> जबकि दिगम्बर परम्परा में समय को कालाणु की पर्याय कहा गया है।<sup>17</sup> द्रव्यानुयोगतर्कणा में समय के आधार को कालाणु कहा गया है।<sup>18</sup>

## काल का ऊर्ध्वप्रचय

श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों परम्पराओं में काल के अस्तित्व को तो स्वीकार किया गया है किन्तु उसे अस्तिकाय नहीं माना है। अस्तिकाय वही हो सकता है जिसका स्कन्ध बन सके। काल के अतीत समय नष्ट हो जाते हैं। अनागत समय अनुत्पन्न होते हैं, इसलिए उसका स्कन्ध नहीं बनता। वर्तमान समय एक होता है, इसलिए उसका तिर्यक्-प्रचय (तिरछा फैलाव) नहीं होता। काल का स्कन्ध या तिर्यक् प्रचय नहीं होता, इसलिए वह अस्तिकाय नहीं है।<sup>19</sup> काल की पूर्व एवं अपर पर्याय में ऊर्ध्वताप्रचय होता है। काल के प्रदेश नहीं होते इसलिए उसके तिर्यक्-प्रचय नहीं होता।<sup>20</sup>

“दिगम्बर परम्परा के अनुसार कालाणुओं की संख्या लोकाकाश के तुल्य है। आकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु अवस्थित है। कालशक्ति और व्यक्ति की अपेक्षा एक प्रदेशवाला है। इसलिए इसके तिर्यक्-प्रचय नहीं होता। धर्म आदि पांच द्रव्य के तिर्यक्-प्रचय क्षेत्र की अपेक्षा से होता है और ऊर्ध्व-प्रचय काल की अपेक्षा से होता है। उनके प्रदेश-समूह होता है, इसलिए वे फैलते हैं और काल के निमित्त से उनमें पौर्वापर्य या क्रमानुगत प्रसार होता है। समयों का प्रचय जो है वही काल द्रव्य का ऊर्ध्व प्रचय है।”<sup>21</sup>

आगम साहित्य में काल को अस्तिकाय नहीं माना गया है। क्यों नहीं माना गया है इसका उल्लेख नहीं है। यह आगम की शैलीगत विशेषता है कि वह तत्त्व के निरूपण में तर्क का सहारा नहीं लेता। उत्तरकालीन जैन साहित्य को क्यों का भी उत्तर देना था अतः उन्हें अनिवार्यता से हेतु का अवलम्बन लेना पड़ा।

## काल के विभाग

काल के समय, आवलिका, मुहूर्त, दिवस आदि से लेकर पुद्गलपरिवर्त तक अनेक विभाग किये गये हैं।<sup>22</sup> इन विभागों के अतिरिक्त भी काल के अन्य प्रकार भी उपलब्ध हैं। स्थानांग एवं भगवती में काल को चार प्रकार का माना गया है - प्रमाणकाल, यथायुनिर्वृत्तिकाल,

मरणकाल और अद्धाकाल।<sup>23</sup>

जिसके द्वारा वर्ष आदि का ज्ञान होता है उसे प्रमाणकाल कहा जाता है, यह अद्धाकाल का ही दिवस आदिलक्षण वाला भेद है।<sup>24</sup>

जिस प्रकार से आयुष्य का बंधन हुआ है उस रूप में अवस्थिति को यथायुनिर्वृत्तिकाल कहा जाता है। यह नारक आदि आयुष्य लक्षण वाला है। आयुष्यकर्म के अनुभव से विशिष्ट यह अद्धाकाल ही है। यह सारे संसारी जीवों के होता है।<sup>25</sup>

मृत्यु भी काल की पर्याय है उसे मरणकाल कहा गया है।<sup>26</sup>

सूर्य, चन्द्र आदि की गति से सम्बन्ध रखने वाला अद्धाकाल कहलाता है।<sup>27</sup> काल का प्रधान रूप अद्धा-काल ही है। शेष तीनों इसी के विशिष्ट रूप हैं। अद्धाकाल व्यावहारिक है। वह मनुष्यलोक में ही होता है। इसलिए मनुष्य लोक को समय क्षेत्र कहा जाता है। अर्द्ध द्वीप में ही मनुष्य निवास करते हैं। उसको ही समयक्षेत्र कहा गया है।<sup>28</sup> निश्चय-काल जीव-अजीव का पर्याय है, वह लोक-अलोक व्यापी है। उसके विभाग नहीं होते। काल का अंतिम भेद समय है। परमाणु मंदगति से एक आकाश प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाता है उतने काल को समय (क्षण) कहा जाता है।<sup>29</sup> समय अत्यन्त सूक्ष्म है। आगमों में कमलपत्रभेदन, जुलाहे द्वारा जीर्ण वस्त्र का फाड़ना आदि उदाहरणों से उसे समझाया गया है।<sup>30</sup>

### निश्चय एवं व्यवहार काल

निश्चय और व्यवहार के भेद से काल दो प्रकार का परिगणित है। निश्चय काल का लक्षण वर्तना है। उत्तराध्ययन में काल का यही लक्षण निर्दिष्ट है।<sup>31</sup> आचार्य अकलंक ने स्वसत्तानुभूति को वर्तना कहा है।<sup>32</sup> वर्तना सभी पदार्थों में सर्वत्र होती है अतः निश्चय काल सबमें एवं सर्वत्र विद्यमान है। तत्त्वार्थसूत्र में काल के पांच लक्षण बतलाए गए हैं - वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व।<sup>33</sup> इनमें वर्तना और परिणाम का सम्बन्ध नैश्चयिक काल से तथा क्रिया, परत्व और अपरत्व का सम्बन्ध व्यावहारिक काल से है।

अकलंक के अनुसार मनुष्य क्षेत्रवर्ती समय, आवलिका आदि व्यावहारिक काल के द्वारा ही सभी जीवों की कर्मस्थिति, भव-स्थिति और काय-स्थिति का परिच्छेद होता है। संख्येय, असंख्येय और अनन्त इस काल गणना का आधार भी व्यावहारिक काल है।<sup>34</sup>

आधुनिक विज्ञान भी काल को स्वतंत्र द्रव्य नहीं मान रहा है। उसके अनुसार काल Subjective है। Stephen Hawking के शब्दों में आधुनिक विज्ञान सम्मत काल की अवधारणा को हम समझ सकते हैं Our views of nature of time have changed over the years. Up to the beginning of this century people believed in 'an absolute time. That is, each event could be labeled by a number called 'time' in a unique way, and all good clocks would agree on the time interval between two events. However, the discovery that the speed of light appeared the same to every observer, no matter how he was moving, led to the theory of relativity - and in that one had to abandon the idea that there was a unique absolute time. Instead, each observer would have his own measure of time as recorded by a clock that he carried : clocks carried by different observers would not necessarily agree. Thus time became a more personal concept, relative concept, relative to the observer who measured it.<sup>35</sup>

काल के स्वरूप के सम्बन्ध में विभिन्न मतभेद हो सकते हैं किन्तु व्यावहारिक



जगत् में उसकी उपयोगिता निर्विवाद है। इसी उपयोगिता के कारण काल को द्रव्य की कोटि में परिगणित किया गया है। 'उपकारकं द्रव्यम्' जो उपकार करता है वह द्रव्य है। काल का उपकार भी प्रत्यक्ष सिद्ध है अतः काल की स्वीकृति आवश्यक है। कालवादी दार्शनिक तो मात्र काल को ही विश्व का नियामक तत्त्व स्वीकार करते हैं।<sup>36</sup> इतना भी न माने तो भी विश्व - व्यवस्था का एक अनिवार्य घटक तत्त्व तो काल को मानना ही होगा।

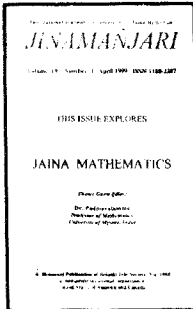
संदर्भ -

1. पञ्चास्तिकाय, गाथा 7 - गच्छन्ति ददियभावं ते धेव अत्थिकाया तेकालियभावपरिणदां णिच्छा। परियट्ठणलिंगसंजुत्ता॥
2. ठाणं, 2 / 387, समयाति वा, आवलियाति वा, जीवाति वा अजीवाति वा।
3. पातंजलयोगदर्शनम्, (संपा. स्वामी हरिहरानन्द, दिल्ली, 1991) 3 / 52, स खल्वयं कालो वस्तुशून्यो बुद्धिनिर्माणः शब्दज्ञानानुपाती लौकिकानां व्युत्थितदर्शनानां वस्तुस्वरूप इवावभासते।
4. अंगसुत्ताणि 2 (भगवई) 13 / 61 - 71
5. वही, 2 / 124
6. वही 5 / 248
7. द्रव्यसंग्रह, (ले, नेमिचन्द्र, मथुरा, वी. नि. सं., 2475), गाथा 22 - लोगागासपदेसे, एकेका जे ठिटा हु एकेका। रयणाणं रासी इव, ते कालाणू असंखदव्याणि॥
8. संघवी सुखलाल, दर्शन और चिंतन, (अहमदाबाद, 1957) खण्ड 1 - 2 पृ. 333
9. मालवगिया दलसुख, आगम युग का जैन दर्शन, पृ. 214
10. उत्तरज्झयणाणि, 28 / 10 का टिप्पण, पृ. 148
11. अंगसुत्ताणि 2 (भगवई) 20 / 40, चउत्थिहे परमाणु पण्णत्ते, तं जहा - दव्यपरमाणू खेतपरमाणू, कालपरमाणू, भावपरमाणू॥
12. वही, 2 / 125 - 129
13. भगवतीकृति पत्र 788, तत्र द्रव्यरूपः परमाणुर्द्रव्यपरमाणुः - एकोऽप्यूर्णादिभावानामविवक्षणात् द्रव्यत्वस्यैव विवक्षणादिति, एवं क्षेत्र परमाणु - आकाश प्रदेशः कालपरमाणु, समयः भावपरमाणुः परमाणुरेव वर्णादिभावानां प्राधान्यविवक्षणात्।
14. Mookerjee, Satakari, Illuminator of Jaina Tenets P. 14 (footnote) samaya, being the smallest indivisible quantum of time, can perhaps be appropriately called called time - point.
15. पातंजलयोगदर्शनम् 3 / 52, यथापकर्षपर्यन्तं द्रव्यं परमाणुरेवं परमापकर्षपर्यन्तः कालः क्षणः।
16. भगवतीकृति पत्र 788
17. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, (संपा. जिनेन्द्रवर्णी, दिल्ली, 1986) भाग 2 पृ. 84, समयस्तावत्सूक्ष्मकालरूपः प्रसिद्धः स एव पर्यायः न द्रव्यम्....तच्च कालपर्याय - स्योपादानकारणभूतं कालाणुरूपं कालद्रव्यमेव न च पुद्गलादि।
18. द्रव्यानुयोगतर्कणा, 10 / 143, मन्दगत्याप्यणुर्यावत्प्रदेशे न सभः स्थितौ।  
याति तत्समयस्यैव स्थानं कालाणुरुच्यते॥
19. द्रव्यानुयोगतर्कणा, 10 / 16 वृ. (पृ. 179)  
परन्तु स्कन्धस्य प्रदेशसमुदायः कालस्य नास्ति तस्माद्वर्मास्तिकायादीनामिव तिर्यक्प्रचयता न संभवति, एतावता तिर्यक्प्रचयत्वं नास्ति। तेनैव कालद्रव्यमस्तिकाय इति नोच्यते।
20. वही, 10 / 16, प्रचयोर्ध्वत्वमेतस्य द्वयोः पर्यायोर्भवेत्।  
तिर्यक्प्रचयता नास्य प्रदेशत्वं विना क्वचित्॥
21. महाप्रज्ञ, आचार्य, जैन दर्शन मनन और मीमांसा, पृ. 195

22. अणुओगद्दाराई, सूत्र 415 / 1, समयवलय - मुहुत्ता, दिवसमहोस्त - पक्खमासा य।  
संवच्छर - जुग - पलिया, सागर - ओसप्पि - परियट्टा ॥
23. (क) ठाणं , 4 / 134 (ख) अंगसुत्ताणि 2, 11 / 119
24. भगवतीवृत्ति पत्र 533, प्रमीयते - परिच्छिद्यते येन वर्षशतादि तत् प्रमाणं स चासौ  
कालश्चेतिप्रमाणकाल...अद्वाकालस्य विशेषो दिवसादिलक्षणः।
25. भगवतीवृत्ति पत्र 533
26. वही, वृत्ति पत्र 533
27. वही, वृत्ति पत्र 533
28. अंगसुत्ताणि 2, (भगवई) 2 / 122
29. द्रव्यानुयोगतर्कणा, 10 / 14, तुलनीय पातंजलयोगदर्शनम्, 3 / 52, यावता वा समयेन चलितः परमाणुः पूर्वदेशं  
जह्यादुत्तरप्रदेशमुपसम्पद्येत स कालः क्षणः।
30. अणुओगद्दाराई, सूत्र 417
31. उत्तरज्झयणाणि, 28 / 10, वत्तणां लक्खणो कालो।
32. तत्त्वार्थवार्ति, 5 / 22 / 4, प्रतिद्रव्यपर्यायमन्तर्नीतिकसमया स्वसत्तानुभूतिवर्तना।
33. तत्त्वार्थसूत्र, 5 / 22 वर्त्तना परिणामः क्रिया परत्यापरत्ये च कालस्य।
34. तत्त्वार्थवार्तिक, 5 / 22 / 25,  
मनुष्यक्षेत्रसमुत्थने ज्योतिर्गतिसमयावलिकादिना परिच्छिन्नेन क्रियाकलापेन कालवर्तनया कालाख्येन ऊर्ध्वमधस्तिर्यक  
च प्राणिनां संख्येयाऽसंख्येयाऽनन्तानन्तकालगणनाप्रभेदेन कर्मभवाकायस्थितिपरिच्छेदः सर्वत्र  
जघन्य - मध्यमोत्कृष्टावस्थाः क्रियते।
35. Hawking, Stephen, Brief History of Time, New York, 1990, P. 143
36. षड्दर्शनसमुच्चय (डॉ. महेन्द्रकुमार जैन, दिल्ली, 1997) वृ.पृ. 16,  
कालःपचति भूतानि कालः संहरति प्रजाः। कालः सुषेष् जागर्ति, कालो हि दुरतिक्रमः ॥

प्राप्त : 06.05.2002

## जैन विद्या का पठनीय षट्मासिक JINAMANJARI



Editor : S.A. Bhuvanendra Kumar  
Periodicity : Bi-annual (April & October)  
Publisher : **Brahmi Society, Canada - U.S.A.**  
Contact : Dr. S.A. Bhuvanendra Kumar  
4665, Moccasin Trail,  
MISSISSAUGA, ONTARIO,  
Canada L4Z2W5

## ज्ञानोदय इतिहास पुरस्कार

श्रीमती शांतिदेवी रतनलालजी बोबरा की स्मृति में श्री सूरजमलजी बोबरा, इन्दौर द्वारा स्थापित ज्ञानोदय फाउण्डेशन के सौजन्य से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के माध्यम से ज्ञानोदय पुरस्कार की स्थापना 1998 में की गई है। यह सर्वविदित तथ्य है कि दर्शन एवं साहित्य की अपेक्षा इतिहास एवं पुरातत्त्व के क्षेत्र में मौलिक शोध की मात्रा अल्प रहती है। फलतः यह पुरस्कार जैन इतिहास के क्षेत्र में मौलिक शोध को समर्पित किया गया है। इसके अन्तर्गत पुरस्कार राशि में वृद्धि करते हुए वर्ष 2000 से प्रतिवर्ष जैन इतिहास के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ शोध पत्र/पुस्तक प्रस्तुत करने वाले विद्वान् को रुपये 11000/- की नगद राशि, शाल एवं श्रीफल से सम्मानित किया जायेगा।

वर्ष 1998 का पुरस्कार रामकथा संग्रहालय, फैजाबाद के पूर्व निदेशक डॉ. शैलेन्द्र रस्तोगी को उनकी कृति 'जैन धर्म कला प्राण ऋषभदेव और उनके अभिलेखीय साक्ष्य' पर 29.3.2000 को समर्पित किया गया। इस कृति का ज्ञानोदय फाउण्डेशन के आर्थिक सहयोग से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा प्रकाशन किया जा रहा है।

वर्ष 1999 का पुरस्कार प्रो. हम्पा नागराजैय्या (Prof. Hampa Nagarajaiyah) को उनकी कृति 'A History of the Rastrakutas of Malkhed and Jainism' पर प्रदान किया गया।

वर्ष 2000 का पुरस्कार डॉ. अभयप्रकाश जैन (ग्वालियर) को उनकी कृति 'जैन स्तूप परम्परा' पर घोषित किया गया है। यह शीघ्र ही समर्पित किया जायेगा।

वर्ष 2001 के पुरस्कार के चयन हेतु प्रक्रिया गतिमान है, इसकी घोषणा अगले अंक में किया जाना संभावित है।

वर्ष 2002 से चयन की प्रक्रिया में परिवर्तन किया जा रहा है। अब कोई भी व्यक्ति पुरस्कार हेतु किसी लेख या पुस्तक के लेखक के नाम का प्रस्ताव सामग्री सहित प्रेषित कर सकता है। चयनित कृति के लेखक को अब रु. 11000/- की राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति प्रदान की जायेगी।

साथ ही चयनित कृति के प्रस्तावक को भी रु. 1000/- की राशि से सम्मानित किया जायेगा। वर्ष 2002 के पुरस्कार हेतु प्रस्ताव सादे कागज पर एवं सम्बद्ध कृति/आलेख के लेखक तथा प्रस्तावक के सम्पर्क के पते, फोन नं. सहित 31 दिसम्बर 2002 तक मानद सचिव, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर - 452 001 के पते पर प्राप्त हो जाना चाहिये।

जैन विद्याओं के अध्ययन/अनुसंधान में रुचि रखने वाले सभी विद्वानों/समाजसेवियों से आग्रह है कि वे विगत 5 वर्षों में प्रकाश में आये जैन इतिहास/पुरातत्त्व विषयक मौलिक शोध कार्यों के संकलन, मूल्यांकन एवं सम्मानित करने में हमें अपना सहयोग प्रदान करें।

देवकुमारसिंह कासलीवाल  
अध्यक्ष

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

डॉ. अनुपम जैन  
मानद सचिव



## काल विषयक दृष्टिकोण

■ ब्र. (डॉ.) स्नेहरानी जैन \*

काल सभी भारतीय धर्मों में अपना विशेष स्थान रखता है। किसी ने इसे समय कहा है, किसी ने चक्र। किसी ने मृत्यु, किसी ने यम। जैनधर्म में इसे विश्व के मूल छह द्रव्यों में से एक माना है जो स्वयं तो वर्तना करता ही है, जिस भी द्रव्य के सम्पर्क में आता है उसमें भी वर्तना लाता है। इस हेतु यह बहुप्रदेशी कहा गया है और समूचा एक द्रव्य भी। पूरा ब्रह्माण्ड इसके प्रदेशों, कालाणुओं से ठसाठस भरा है, जो परमाणु में परिवर्तन लाते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द ने समयसार में कहा है -

**परमाणु प्रचलनायतः समयः<sup>1</sup>**

इसकी कुछ विशेषतायें हैं। द्रव्य होने से यह अविनाशी है। इसका न कोई आदि है न अंत। यह निरन्तर परिवर्तनशील है। यही इसकी निरन्तरता है किन्तु यह वर्तना की सर्पिणी रेखा मानी गई है जो आगे बढ़ती है। ना थमती है, ना पलट सकती है, ना ही उछल सकती है। यह दो प्रकार का अस्तित्व रखती है। व्यवहार में वर्तना दिखलाते इसे परिवर्तन के कारण खंडों में नापा जा सकता है तथा उसका अस्तित्व इकाई स्वरूप 'समय' है जो अति सूक्ष्म 'वर्तमान' है। इस वर्तमान से पूर्व 'अनादि भूत' और आगामी 'अनंत भविष्य' है, द्रव्य रूप यह 'कालाणु' है जो प्रति समय परिवर्तनशील है। यह कालाणु स्वतंत्र है फिर भी प्रभावी है। न जुड़ता है और न स्थान छोड़ता है। न बाधा करता है, न प्राण हरता है। अदृश्य होने के कारण यह बहुत भ्रांतियों से देखा जाता है। इन भ्रांतियों की तुलना में इसके स्वरूप को जैनधर्म किस प्रकार प्रस्तुत करता है, यह हमें देखना है।

लगभग 11 वर्ष पूर्व मेक्सम्यूलर भवन, मुम्बई के तत्वावधान में टाटा इन्स्टीट्यूट, टाईटन घड़ी, USIS फ्रांस, जापान और स्विटजरलैण्ड कन्सुलेटों के सहयोग से काल (Time = समय) के ऊपर एक कांफ्रेंस आयोजित की गई थी जिसमें विश्व के 30 विद्वानों, वैज्ञानिकों तथा दर्शनशास्त्रियों ने भाग लिया और अपने-अपने दृष्टिकोण दिये। भारतीय दृष्टिकोण भी लाये गये जो प्रभावी रहे। हमारे पाठकों के अवलोकनार्थ प्रस्तुत दृष्टिकोणों को यहाँ अति सारांश में प्रस्तुत करने का हमारा उद्देश्य है। छह दिन चलने वाली उस कांफ्रेंस में 25 पत्र प्रस्तुतियाँ रहीं जो सारांश में इस प्रकार हैं —

**सर्वप्रथम श्री जे. जे. भाभा** ने उद्घाटन भाषण में समय की मानसिक अनुभूति पर विचार प्रस्तुत करते हुए बताया कि समय न तो कोई 'अस्ति' है ना ही 'अनुभव'। अनुभव के लिये काल आवश्यक है (कदाचित वे वर्तना को लक्ष्य कर रहे थे)। उनकी दृष्टि में आकाश और काल परस्पर पर्यायवाची शब्द लगे। जैन मान्यतानुसार ये दोनों ही दो अलग-अलग स्वतंत्र द्रव्य हैं, अविनाशी हैं। एक रोचक बात उन्होंने कही - 'काल के साथ जीवन की इच्छा ही अमरता है। बच्चे अपने आप नहीं आ जाते। आप उन्हें शरीर दे सकते हैं, किन्तु विचार नहीं। जीवन स्वयं को कभी नहीं दोहराता, ना ही बीते क्षणों से बात की जा सकती है। किसी भी वस्तु का काल के बिना अस्तित्व संभव नहीं है।

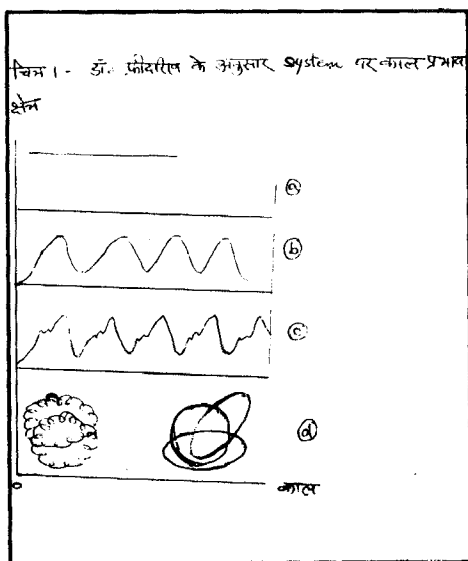
विषय प्रस्तुत करते हुए डॉ. वीगेन्ड कन्जाकी ने दो ज्वलंत प्रश्न उठाये - 'समय को कैसे नियंत्रित कर सकते हैं?', उसकी मात्रा/पैमाना कैसे निर्धारित हो।' हमें भलीभाँति

समझ में आता है कि समय हमारे नियंत्रण से परे बीत रहा है। वह स्वनियंत्रित है। उसे हम चाहकर भी तेज अथवा धीमे बीतने को बाध्य नहीं कर सकते हैं। वर्तना से ही उसकी मात्रा निर्धारित होती है। वह चाहे पैमाना सूर्य आधारित हो, चाहे चन्द्र आधारित (दैनिक, पाक्षिक), चाहे मौसम आधारित हो चाहे अयन आधारित (वर्ष), चाहे तारे, नक्षत्रों पर आधारित हो चाहे पशु-पक्षियों, वृक्षों की प्रतिक्रियाओं से। चाहे शिशु के गर्भ स्थिति के काल से हो अथवा महिलाओं के शारीरिक बदलाव से (मासिक)। चाहे निद्रा के काल से अथवा समुद्र के ज्वार - भाटे से।

ऐसी ही अन्य नैसर्गिक जीव घड़ी (Biological Clock) के माध्यम की विशेषताएँ डॉ. चन्द्रशेखरन ने बतलाई।

मेक्सप्लांक से डॉर्टपुट, जर्मनी के डॉ. स्टीफेन म्यूलर ने समय की वर्तना को भौतिकी संदर्भों से लेते हुए जैविकी संदर्भों से जोड़ दिया। उन्होंने डॉ. रुडोल्फ फ्रीडरिख द्वारा भौतिकी में 'क्षेत्रीय' तथा 'काल दौरान' व्यवस्थाओं से जानने का जो सिद्धान्त बतलाया है, वह पूरा गणितीय है। इस सन्दर्भ में इन्होंने न्यूटन का सिद्धान्त, क्वान्टम मेकेनिज्म, आइंस्टीन का सूत्र, द्रवों के बहाव का नियम, काइनेटिक सूत्र सभी को जीवन से जोड़ते हुए समय की नैमित्तिकी बतलाई। अलग-अलग वस्तुओं के अलग-अलग Decay Time और Shelf life होते हैं। अर्थात् समय का सब पर समान प्रभाव नहीं है, शरीर से तत्वों के (विकारों के) निष्कासन का अलग-अलग समय है।

खे बनाने के लिये भी अलग-अलग समय उपयोग होता है। अर्थात् समय प्रत्येक घटना के लिये स्वयं को अपने आप स्वतंत्र रखकर संयोजित करता है। परन्तु समय का घटनाओं से हर प्रक्रिया में एक अनुपातिक संबंध है जिसे ग्राफ पेपर पर खींचकर तीनों दिशाओं में अनुमान लगाया जा सकता है। काल के अलग-अलग पैमाने भी इस्तेमाल कर सकते हैं। जीवों पर प्रयोग करते समय हमें भिन्न-भिन्न कई प्रभाव भिन्न-भिन्न गति से दिखते स्पष्ट होते हैं और दिमाग के EEG सिग्नल्स और हृदय तथा मसल्स के अलग-अलग गति संकेत मिलते हैं।



डार्टपुट, जर्मन विद्वान डॉ. फ्रीडरिख ने घटनाओं के समकालीन प्रभावी कारणों पर ध्यान दिलाते हुए किसी भी System के (x, y, z, space) variables बतलाये हैं। काल एक अलग Variable है। जब मात्र (x, y, z) Variable हों तब वे ठहरा हुआ Space विषय बनाते हैं। जब (x, y, z) (t) तो वे एक नित्य बदलता हुआ Dynamic System विषय बनाते हैं। नित्य बदलता हुआ System निम्न चार प्रकार का संभव है (देखें चित्र)

रासायनिक प्रभावों में काल का प्रभाव इस प्रकार बदलता हुआ नहीं, भिन्न होता है। उदाहरणार्थ ग्लायमोलिसिस में (मसल्स से शर्करा बनाते समय) वह तीन प्रकार का दिखता है। एन्जाइम की उपस्थिति में यह (1) उत्तेजनशील (Excitable), (2) उत्तेजित (Excited) तथा (3) सुप्त समय खींचता (Refractory)।

टाटा इन्स्टीट्यूट, मुम्बई के डॉ. पद्मनाभन ने समय को Mach (माक) सिद्धान्तानुसार सेवक की भांति कैद हुआ दर्शाया। चूंकि  $\text{Time} \times \text{Space} \equiv \text{Time} \times \text{Place}$  और स्थान बदला गया, Space में उसका अनुमान नहीं है अतः t बदला कहलायेगा। ग्रीक में इसे (वर्तमान को) हैरास कहा है जो घटनायें घटाता है और इसी आधार पर Newtonian View Point को gravity के साथ जाना गया (कदाचित यह धर्म, अधर्म द्रव्य के जैसा ही संकेत है)।

बर्लिन के जर्मन विद्वान् डॉ. क्लाउज मॉरिस ने समय को शक्ति का संकेत बतलाया। उनके अनुसार ये शक्ति बदली जा सकती है और प्रभावी काल भी बढ़ाया/घटाया जा सकता है। जहाँ तक भौतिकी और रसायन का प्रभाव है यह सहज संभव है। प्राकृतिक घट रही घटनाओं में इस काल को बांधना संभव नहीं है। यथा गर्भ स्थित भ्रूण 280 दिन का गर्भकाल लेगा, इसे बढ़ाना/घटाना संभव नहीं है। क्या समय को कम कराके हम संस्कृति को बदल सकते हैं?

स्थान की भिन्नता से हमें समय 'बदलते प्रभाव' से जोड़ता है। किन्तु इस समय को तो हमने सुविधानुसार घंटों, मिनटों, सेकंडों में तोड़ा है। वो जो घड़ी है जिसके कांटों की स्थिति स्थान बदलकर हमें संकेत देती है कि कितना समय बीत गया। उसी मशीन घड़ी की जगह हम सूर्य घड़ी ले लें तो दिन, मौसम, अयन और वर्ष जाने जा सकते हैं। जल घड़ी लेने से हम जल के भराव और रिसाव से सेकंड, मिनट और घंटे जान सकते हैं। ऐसी ही एक घड़ी जर्मनी में अभी विद्यमान है (बर्लिन में)। इसकी जगह रसोईघर की रेत घड़ी भी हो सकती है जो पहले घर-घर पाश्चात्य जगत में उपयोग की जाती रही। जो भी संकेत हों वे सब एक शक्ति का प्रतीक हैं अतः समय को शक्ति के रूप में जाना जा सकता है।

मदुरई के प्रो. एम. के. चन्द्रशेखरन ने पशुओं द्वारा ज्ञात काल गणना, उनकी नैसर्गिक प्रवृत्तियों पर आधारित दर्शायी। चूहों, कुत्ते के नवजात पिल्लों, गिलहरियों, चमगीदड़ों आदि की नैसर्गिक घड़ी अलग-अलग पूर्व निश्चित है। यह प्रत्येक पशु-पक्षी के उसी पूर्व निश्चित समय पर उठने, जागने, पुकारने, भूख लगने और हलचल के संकेत देती है। इसके अवलोकनार्थ प्रयोगशालाओं में उन्हें भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में रखकर (40 मीटर नीचे जमीन के अन्दर तलघर में जहाँ सूर्य की रोशनी और बाहरी जगत का कोलाहल नहीं, सन्नाटा है, 27° से. तापमान और 95% आर्द्रता में) देखने पर उनकी नैसर्गिक घड़ी (Chronologic Clock) में कोई अन्तर नहीं था। मात्र चूहों में वह 23 घंटे 54 मिनट की रही।

रासायनिक क्रियाओं की घटनाओं में धातुओं, लवणों और स्टार्च + आयोडाइड क्रियात्मकता से रासायनिक घड़ी भी उसी प्रकार संचालित दिखी।

पौधों की श्वास प्रक्रिया में धरती के उतने भीतर भी सूर्य का प्रभाव बाहरी समय से मेल नहीं खाता।

हेरीसन ओएन ने ब्रेड के बासीपन से उठती फफूंद, गंदे पानी में पनपते जीवाणुओं के Behavioral Expression को भी जैविक घड़ी (Biological Clock) माना। व्यवहार रूप प्रत्येक जीव का समय के साथ अपना-अपना निजी संबंध और प्रतिक्रियाएँ हैं। (ठीक इस प्रकार जैसे मानव की गर्भ अवस्थिति 9 मास, गाय की 9 मास, भैंस की 12 मास, कुत्ते की 3 मास)

डॉ. फ्रांसिस मेनेजेस ने दर्शाया कि घटनाओं को घटित कराने में सहयोगी इस

समय का रूप सपनों में बहुत भिन्न है। थोड़े से समय में घंटे, दिन और वर्ष बीत सकते हैं। बहुत लम्बा समझे जाना वाला सपना जो स्मृति में आता है वह अनेक घटनाओं वाला अनुभूत काल वास्तव में कुछ सेकंडों का ही होता है। प्रश्न उठता है कि नींद में इस काल के बीतने की गति क्या रहती है? अनुभूति के बावजूद यह अन्तर क्यों? एरिस्टॉटल, जोसेफ, प्लेटो, फ्रायड, आधुनिक विज्ञान और ह्यूम के अनुसार दिन के अनुभवों और अतृप्त कामनाओं के कारण सपने आते हैं। ये ना तो सत्य होते हैं ना ही सत्य काल की अनुभूति देते हैं। कई बार अपने सांकेतिक संप्रेषण प्रभाव दर्शाते हैं किन्तु उनका स्वप्नकालीन समय से संबंध न होकर सत्य समय से ही संबंध रहता है।

बर्लिन के प्रो. डीटल केम्पर ने समय की पुनरावृत्ति सूर्य पर आधारित दैनिक क्रिया दर्शाते हुए समय के मशीनी पैमानों के बाबत बतलाया।

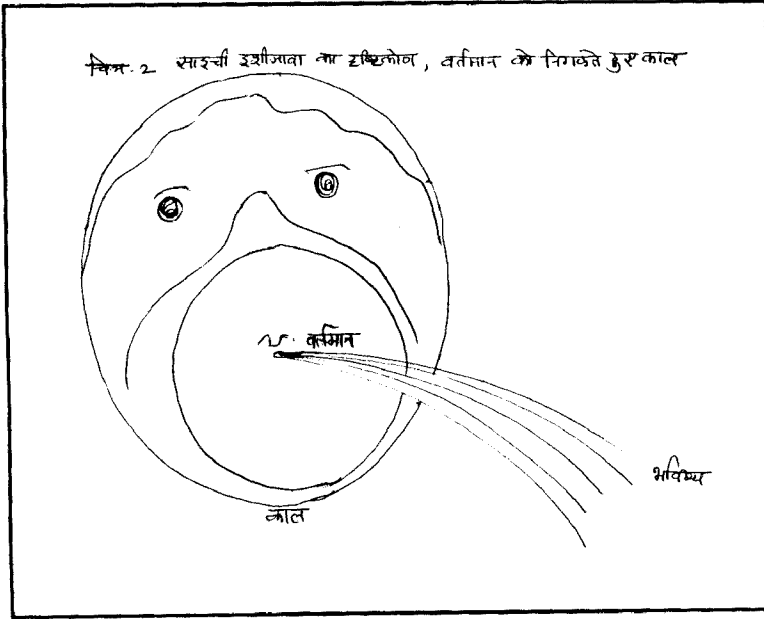
दिल्ली के प्रो. जे. पी. एस. ओबेराय ने समय को 'काल' ध्वंसक के रूप में दर्शाया जो सब कुछ निगलता, पचाता रहा है। इंडस्ट्री की दृष्टि में इसका वर्णन उन्होंने समय का किस-किस दिशा में उपयोग संभव है और उत्पादन पर प्रभाव, इसे ही चर्चा का विषय रखा।

जर्मनी के रूडोल्फ वेन्डार्फ ने समय के इतिहास पक्ष को प्रस्तुत किया कि कब कैसे-कैसे समय रहे? उन्होंने समय को रेखा रूप बताते हुए 'ट्रेडिशनल समय' को बताया कि परम्पराओं का भाव कैसा होता है। कभी वह समय का खंड छोटा लगता है और कभी लम्बा। गावों का समय लम्बा और शहरों का समय भागदौड़ की व्यस्तताओं में छोटा। कार्य उत्पादन पर भी समय का प्रभाव पड़ता है। गरीबों का वही काल खंड दुःख में लम्बा और अमीरों का सुख में छोटा लगता है। ये आज ही नहीं, संस्कृतियों और सभ्यताओं में स्पष्ट दिखता है। जेना ने इस रहस्य को समझते हुए समय को भिन्न-भिन्न अर्थ दिये। गोइथे ने इसीलिये घड़ी के बनाये जाने को सराहा।

मुम्बई के अशोक रानाडे ने समय की संगीत के स्वरों से तुलना की। समय सात स्वरों सा स्वयं को बदलता रहता है और स्वर से ही ताल और लय बदलते हुए भी समय के प्रभाव में ही रहे हैं। प्रातः में गाई जाने वाली रागों और सायं में गाई जाने वाली रागों में समय भिन्न होकर भी प्रभाव दर्शाता है। राग समय से बदलकर उसकी पहचान बना बैठा है।

पूना से जयंत नालीकर ने समय को इलेक्ट्रो डायनामिक्स और कार्मोर्लोजी से जोड़कर बतलाया कि ये पूरा ब्रह्माण्ड इलेक्ट्रॉन्स से भरा पड़ा है। ये अचानक सारे बदलाव इसी कारण से होते हैं। ठहराव और गति, दोनों का रहस्य बतलाते हुए उन्होंने ब्रह्माण्ड के फैलाव का रहस्य बतलाया। उसमें समय का क्या महत्व है? यदि ब्रह्माण्ड फैलने की जगह सिकुड़ने लगे तब क्या समय की दिशा लौटाई जा सकती है? (\*रिवर्स गीयर में) समय तो निरन्तर आगे बढ़ने की घटना लगता है। जिस प्रकार जीवाणुओं में वृद्ध कोशिका बंटकर बेबी बन जाती है और समय उनमें लौट आता है पर क्या वास्तव में समय लौट है? नहीं। क्योंकि हर बात अलग है, भले अनुभव पुनः वापस लौटे।

फ्रांस एम्बेसी के श्री गिल्बर्ट डलगेलियन ने बतलाया कि समय की अभिव्यक्ति कार्य के निष्पादन से जानी जाती है। कुछ को हम कहते हैं 'हो गया', कुछ 'होगा' और कुछ 'है'। यह सब तुलनात्मक होकर भी मात्र वर्तमान की अनुभूति में ही है अन्यथा नहीं। समय होरोल्ड वाइनरिख की भाषा में भ्रम जाल सा रह गया है।



क्योटो (जापान) से साइची इशीजावा ने बौद्ध सिद्धान्तों के अन्तर्गत समय अथवा काल को ऐसा मनुष्य दर्शाया है जो सब निगलता जाता है। जिसे वह निगल चुका वह भूत है। सदैव ही वर्तमान में वह निगल रहा है। जो नहीं निगला गया है वह भविष्य है, जो धीरे-धीरे वर्तमान बन रहा है। यह अनादि और अनंत है। (देखें चित्र)

बर्लिन से हेल्मा सेन्डर्स ब्राम्स ने बतलाया कि सिनेमा ने समय को फोटोग्राफी द्वारा न केवल बांधकर गिरफ्त में लिया है बल्कि गति दर्शायी है। पहले तो ठहरे हुए स्केच आये जिनसे केन्वस पर क्षण ठहरे से लगे। बाद में चलचित्र ने गति दर्शायी। फोटोग्राफी ने यह सब सहज संभव कर दिया। ट्रिप फोटोग्राफी ने ठहरे क्षणों के घटित बिम्बों को क्रम में पिरोकर इसे बनाया। इस प्रकार सिनेमा ने समय के क्षणों को न सिर्फ दिखलाया बल्कि दृष्टि में दोहराने हेतु भी बांधा।

जीया हुआ समय तो स्वयं मनुष्य की निजी कृति है। जागना इसकी अनुभूति दिलाता है। वही सच्चा जीया हुआ समय है। स्वयं का अस्तित्व तीन काल खंडों में बंट गया है। लंबे उपयोग में ही इसे भूत, वर्तमान और भविष्य में बांटना संभव है। अतः समय निरन्तर चलने वाला लंबा योग है, कपड़े के थान की तरह, जिसमें से हम जीवन की ड्रेस के लिये जितना आवश्यक हो उतना कपड़ा काट लेते हैं। लंबी फिल्म में से हम लम्हे भी काट कर पा सकते हैं और एक छोटी सी घटना भी लंबी फिल्म में उतार सकते हैं। यह भी एक कला है। कदाचित फिल्म को लौटाये तो पिछले समय में भी लौट सकते हैं।

जापान से आये एक वक्ता ने होनी और घटना में अन्तर बतलाया। 'होनी' अभी भविष्य में होना है जबकि 'घटना' घट चुकी है। शब्दों से समय की दोहरी अभिव्यक्ति दर्शायी जिसमें वर्तमान इतना सूक्ष्म है कि कब वह भूत बनकर फिसल गया समझ नहीं आता। फिर भी अनुभूतियाँ प्रतिपल वर्तमान की रहती हैं। यही समय की जटिलता है।

दिल्ली के प्रो. वीनादास ने 'स्मृति ही समय के अस्तित्व को दर्शाती है' यह बतलाया। वह भारतीय मिथ में बहुत दूर तक पहुँच सकती है। कभी-कभी तो पिछले जन्मों तक, जिस प्रकार अचानक विश्वास न आने से मिथ कहलता है। इन्हीं स्मृतियों में कभी पुरुष प्रधानता झलकती है, कभी नारी की प्रधानता। और फिर समूचा भूतकाल उसी परम्परा के प्रभाव में आंक लिया जाता है। भरत ने जब राम और दशरथ के प्रति



भक्ति दर्शायी और कैकेयी को धिक्कारा तो पुरुष प्रधान समाज सामने आया। एक पुरुष द्वारा दूसरे पुरुष को कन्यादान भी यही दर्शाता है (पिता द्वारा दामाद को) जबकि कथाओं में सतियों की चर्चा करके उनकी प्रधानता दर्शायी गई है। यह वह 'शक्तिकाल' था जब नारी शक्ति की प्रधानता थी। तब 64 जोगनियों और काली शिव शक्ति के रूप में सामने आई।

'मोक्ष का अर्थ है शाश्वत अस्तित्व', किन्तु नारद तो तीनों कालों में झलकता है। भूतकाल में, वर्तमान में और भविष्य में भी। यह 'समय' को स्मृतियों के घेरों में बांधने से ही संभव हुआ है। इसीलिये मीमांसकों ने काल को 'प्रश्न' में रखा है।

दिल्ली की गीता थडानी ने बतलाया कि काली का अस्तित्व भी नारी की स्मृति का ही एक पक्ष है। जिस प्रकार ऋग्वेद का 'इन्द्र' और 'बैल' समय के संधिकाल में खो गये हैं, मात्र स्मृति में उन्हें पढ़कर दोहराया जाता है। रेणुका नामक झील शिव की स्मृति में ही मानी गई है। समय को इस प्रकार स्मृति से बांधा जा सकता है।

पांडिचेरी के डॉ. वी. सी. थामस ने बतलाया कि जीया हुआ समय (बीता काल) मनुष्य की कृति है, इसे ध्यान से अनुभव किया जा सकता है। 'होना' ही काल में दर्शाता है। वही स्वयं की अनुभूति कराता है। यह 'होना' भी 'मात्र काल सीमित' है। मनुष्य का जीवन सीमित है। यदि मृत्यु न होती तो जीने की समस्या बन जाती। यह 'होना' भी काल सीमित है। तब काल को हम आयु भी कह सकते हैं। ये आयु पूरा जीवन है। समय सीमित बंधन है जिस पर मनुष्य का कोई प्रभाव नहीं है। मनुष्य के जीवन के भूत, वर्तमान और भविष्य कालांश हैं, मोक्ष से मनुष्य को शाश्वत जीवन का ही बोध होता है।

शांति निवेदन की शैता गुप्ता ने बौद्धों की दृष्टि में 'समय' और 'काल' के क्षणवाद का सिद्धान्त दर्शाया। वह यह कि समय एक छोटा (सूक्ष्म) सा क्षण मात्र है जिसे वर्तमान कहते हैं, जिसमें हमारा 'होना' है। प्रति पल वह 'होता' (पर्याय) बदल दी जाती है। इस ब्रह्माण्ड में कुछ भी अमर नहीं है। एक बीज लें तो प्रथम क्षण से वह बीज दूसरे क्षण में कुछ बदला सा लगा। ठीक उसी प्रकार - जिस प्रकार एक मरी हुई चिड़िया को दूसरे क्षण में पुनः नहीं मारा जा सकता है। समय एक क्षण है, जो अभी-अभी सुख की अनुभूति दे रहा था, वही दूसरे क्षण दुःख दे सकता है। विज्ञान के आधारभूत भौतिकी, जैविकी, रासायनिक, फिलॉसॉफिकल, सिनेमा, टेक्निकल, साइकोलॉजिकल, इन्डस्ट्रियल सभी का विषय यही है। क्षण के बिना कुछ भी नहीं और क्षण के बाद भी कुछ भी नहीं। मैं वर्तमान में हूँ, पर मैं जो पिछले क्षण था सो अब नहीं हूँ। आत्मा है, किन्तु अब वह प्रतिपल बदल रही है। कर्म भी है, कर्मफल भी है। पुनर्जन्म भी है, किन्तु यहाँ क्षण बीतते ही सब शून्य हो जाता है। वही शून्य सिद्ध है, मुक्ति है। दुरा मोठ समय के प्रभाव से भी नहीं उगती। वहाँ क्षण शून्य है।

दिल्ली से नवज्योतिसिंह ने समय के अध्यात्म और तर्क दोनों ही पक्षों पर प्रकाश डाला, जिसमें अव्यक्त और व्यक्त कहकर समय को हम जान सकते हैं। 770 B.C.-500 B.C. के सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया, वे थे तर्क और अध्यात्म। तर्क के सिद्धान्त से समय को समझा जा सकता है। अध्यात्म से समय शब्द है, पुरानापन (परिवर्तन) तर्क है तथा 'होना' अध्यात्म। दोनों ही समय दर्शाते हैं, यह संधि स्तर जैसा है। भाषा अथवा स्वर जैसा क्रमबद्ध जाता है, समय भी वैसा ही क्रमबद्ध जाता है - एक दिशा में। परिवर्तन भी क्रमबद्ध ही है जिससे 'समय' जाना जाता है।

नागपुर के डॉ. एन. आर. वरदपांडे ने समय को क्षेत्र और गति से सम्बन्धित बतलाया कि समय अनादि अनंत है। इसे बिना भूत और भविष्य के समझा नहीं जा सकता। घटनाओं को देखकर कभी-कभी लगता है कि जो कुछ घटा है वही पुनः लौटकर आया हो, यथा सूर्योदय, चन्द्रकलायें। किन्तु यदि घटनायें न हों तो समय नहीं घटा मानना होगा। वास्तव में ये घटनायें नहीं हैं जो बीत चुकी हैं बल्कि लगभग वैसी ही पुनः घटी हैं। एक घड़ी के कांटों की तरह जो एक ही दिशा में लगातार चक्कर लगाते हैं अथवा जैविक घड़ियों की तरह नित्य सुबह मुर्गे बांग या चिड़ियों की चहक। इसे दृष्टिगत रखते हुए समय की शुरुआत को पकड़ा नहीं जा सकता। उस 'समय' को कपड़े के थान जैसा बतलाते हुए किसी एक बिन्दु से बदलाव देखते हुए समय जाना जा सकता है। क्षण और काल अलग हैं क्योंकि क्षण काल का वह अंश है जिसे घटना से जाना जा सकता है। काल को समझा नहीं जा सकता।

दार्शनिक कांट ने इसे किसी x घटना बिन्दु से आगे और पीछे (पूर्व) जानने का तरीका बतलाते हुए इस समय को सिद्ध किया है। कभी ऐसी ही घटनायें घटती हैं जिनमें समय के बीतने का पता ही नहीं चलता किन्तु समय तो चलता ही है। दार्शनिक जीनों के अनुसार काल के खंड भी संभव हैं। एक छोड़ा हुआ तीर लक्ष्य पर पहुँचने से पहले चौथाई, आधी, तीन-चौथाई दूरियाँ अलग-अलग काल खंड में पार करके समय को अंशों में तय करता हुआ जाता है। अर्थात् जिस प्रकार हम प्रदेश को दूरी के आधार पर नाप सकते हैं उसी प्रकार कालखंड से दूरी को भी जान सकते हैं। कछुए और खरगोश की दौड़ का उदाहरण देते हुए उसने समझाया है कि क्षेत्र की तरह काल भी विभाजीय है। दूरियों का काल नापा जा सकता है किन्तु यदि दूरियाँ परस्पर विरोधी दिशा में तय की जायें तो अनजान व्यक्ति को 'समय गणना' हेतु भ्रम हो सकता है, भले काल भिन्नता रखता हो। अर्थात् कालगणना के लिये दूरी ही आधार नहीं है। जीनो के संशय के अनुसार ऐसी स्थिति में तीर कभी लक्ष्य पर नहीं पहुँचेगा और समय नकारा जायेगा।

पांडे के अनुसार दो विरोधी बातें श्रोताओं के सामने आई हैं - (1) कि संसार कभी न कभी अवश्य किसी काल में प्रारम्भ हुआ है तथा (2) संसार की कोई शुरुआत नहीं है काल में क्योंकि शून्य में कोई भूत नहीं है।

कांट भी मानते थे कि क्षण का कोई अस्तित्व नहीं है फिर भी काल तो रहा है। जीनो की भी पहली यही थी कि धरती और संसार बनने से पूर्व ईश्वर था, तभी तो उसने विश्व बनाया।

कर्नाटक के डॉ. लक्ष्मी थाथाचार के अनुसार वैदिक मान्यता में काल ही सबको पकाता है। विशिष्ट अद्वैत वेदांत में काल और प्रकृति का जन्म कैसे? रजो तमो सत्व के असंतुलन से प्रकृति बनी। जब कोई भी एक बढ़ा तभी प्रकृति महान हुई और अहंकार बढ़ा। वह 3 प्रकार का रहा - वैकारिक, राजस और भूतादि अहंकार मय।

इस प्रकार मैत्री उपनिषद् में इस धरती और मनुष्य के निर्माण का सिलसिला रजो, तमो, सत्व गुण से हुआ। गुणों का असंतुलन जब सुस्ती को बढ़ा गया तो प्रकृति बनी, महान होकर अहंकार बढ़ा और वैकारिक, राजस तथा भूतादि तामस प्रकार का सामने आया। प्रथम दो ने मिलकर यह तन बनाया और बाद दो ने मिलकर शब्द, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तथा साथ-साथ उनकी रस अवस्थिति बनाई।

प्रकृति से ही काल रहा। प्रकृति से उपरोक्त तीन निकाल दें तो मात्र काल रहेगा। यह सामान्य काल है अन्यथा दूसरा ब्रह्माकाल होता।

ब्रह्माकाल ईश्वर का एक खेल माना गया है। प्रकृति में प्रत्येक वस्तु का 'चक्र' है। ब्रह्मा ने इसे खंड तथा अखंड दोनों बनाया है। खंड में काल को दर्शाया जा सकता है, अखंड काल सदैव चल रहा है। काल की सबसे छोटी प्रस्तुति (Unit) निमेश है और बड़ी प्रस्तुति ब्रह्मा का वर्ष।

15 निमेष	=	1 काष्ठा	2000 देव वर्ष	=	1 द्वापर युग
30 काष्ठा	=	1 काल	1000 देव वर्ष	=	1 कलि युग
30 निमेष	=	1 मुहूर्त	शेष 2000 देव वर्ष	=	संधि
15 मुहूर्त	=	1 अहोरात्रि			(400, 400, 300, 300,
15 अहोरात्रि	=	1 पक्ष			200, 200, 100, 100)
2 पक्ष	=	1 मास	14 चतुर्युग	=	1 मन्वन्तर
2 मास	=	1 ऋतु	14 मन्वन्तर	=	1000 चतुर्युग
3 ऋतु	=	1 अयन			= 1 दिन ब्रह्मा का
6 ऋतु	=	2 अयन = 1 वर्ष			= 1 रात्रि ब्रह्मा की
360 वर्ष	=	1 देव वर्ष	365 दिन + 365 रात्रि	=	1 वर्ष ब्रह्मा का
12000 देव वर्ष	=	1 चतुर्युग	100 वर्ष ब्रह्मा के	=	ब्रह्मा की आयु
4000 देव वर्ष	=	1 कृत युग			= $10^{17}$ वर्ष
3000 देव वर्ष	=	1 त्रेता युग			1000000000000000000 ब्रह्मा वर्ष

और चूंकि काल का ना कोई अंत है ना प्रारम्भ। इसीलिये काल शाश्वत माना गया है।

ब्रह्मा कभी अपनी लीला विभूति रखता है कभी नित्य विभूति। काल रहता है किन्तु शाश्वत जगत में उसकी शक्ति शेष हो जाती है। शाश्वत जगत में सिद्ध रहते हैं शुद्धात्म रूप में। इसीलिये काल का ब्रह्मा के शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उनका शरीर परब्रह्म कहलाता है अतः काल का शासन उन पर नहीं चलता।

काल की सदैव अनुभूति मिलती है और काल सत्यता है। इसे महाकाल भी कहते हैं, भक्षको अथवा मृत्यु रूप तांत्रिक और योगा दोनों में ब्रह्मा की कल्पना पिंडस्वरूप की जाती है। अतः जो कुछ भी ब्रह्माण्ड में घटता है वह ब्रह्मा के पिंड में भी घटता है। इस जगत के चार भाग बतलाये गये हैं —

1/4 भाग हमारी दुनिया, ये WORLD है।

1/4 भाग ब्रह्मा महान

1/4 भाग मुक्तात्मा जो कभी वापिस नहीं लौटती और

1/4 भाग नित्यात्मा जो बार - बार वापिस लौटती हैं यथा नारद।

आत्मा इसमें अनादि अनंत है। वही ब्रह्मा है, वही शाश्वत है। समस्त मुक्तात्मार्थें उसी अनंत अखंड में समाहित हो जाती हैं। मेरी समझ में इतना ही आया कि यह काल और आत्मा का प्रस्तुतिकरण भी एक जैनेतर विशेषता है। शेष वक्ताओं से हटकर वास्तव में काल के बारे में यह प्रस्तुति थी अन्यथा तो शेष सभी वक्ता व्यवहार काल के भिन्न - भिन्न पक्षों को दोहरा रहे थे।

जैनधर्म में काल का स्वरूप संसार के छह द्रव्यों में से एक है। जिसका सूक्ष्मतम अविभाज्य प्रदेश कालाणु है और दो प्रदेशों के बीच की दूरी तय करने का समय 'समय' है।

व्यवहार काल के प्रमाण जैनाचार्यों द्वारा (जिनेन्द्र सिद्धान्त कोष, भाग - 2, पृ. 216 - 217) दिये गये हैं। तिलोपपण्णत्ति, अनुयोगद्वार सूत्र, जम्बुद्वीपपण्णत्ति भी दृष्टव्य हैं।

प्रथम प्रकार का काल प्रमाण निर्देश

असंख्यात समय : 1 आवली

3 - 4 संख्यात आवली = 1 उच्छवास =  $\frac{2880}{3773}$  सेकंड

7 उच्छवास = 1 स्तोक =  $5 \frac{185}{539}$  सेकंड

7 स्तोक = 1 लव =  $37 \frac{31}{777}$  सेकंड

$38 \frac{1}{2}$  लव = 1 नाली (घड़ी) = 24 मिनट

2 नाली (घड़ी) = 48 मिनट = 1 मुहूर्त

30 मुहूर्त = 24 घंटे = 1 अहो रात्रि + 1 अहो दिवस)

15 अहोरात्रि + 15 अहोदिवस = 1 पक्ष

2 पक्ष = 1 मास

2 मास = 1 ऋतु

3 ऋतु = 1 अयन

2 अयन = 1 संवत्सर = 1 वर्ष

5 वर्ष = 1 युग

10 वर्ष = 1 वर्ष दशक

100 वर्ष = 10 वर्ष दशक = 1 वर्ष शतक

1000 वर्ष = 1 वर्ष सहस्र

10000 वर्ष = 1 वर्ष दश सहस्र

100000 वर्ष = 1 वर्ष लक्ष

84 लाख वर्ष = 1 पूर्वांग

84 लाख पूर्वांग = 1 पूर्व

84 पूर्व = 1 पर्व

84 पर्व = 1 नियुतांग

84 लाख नियुतांग = 1 नियुत

दूसरे प्रकार का काल प्रमाण निर्देश

असंख्यात समय = 1 निमेष

15 निमेष = 1 काष्ठा = 2 सेकंड

30 काष्ठा = 1 कला

2- कला = 24 मिनट

15 कला (महाभारत) = 1 झटिका = 1 घड़ी

2 घड़ी = 1 मुहूर्त

मुहूर्त के आगे के प्रमाण पूर्ववत् हैं।

यह आगे बढ़ाते हुए व्यवहार पल्य से असर्पिणी काल तक पहुँचते हैं। इस प्रकार जैनाचार्यों ने अनादि अनंत काल की रेखा पर काल खंडों को प्रमाणित करके संख्यात और असंख्यात कालगणना में पहुँचते हैं। यह उनकी मात्र कल्पना नहीं है। विज्ञान Transverse

84 नियुत = 1 कुमुदांग

84 लाख कुमुदांग = 1 कुमुद

84 कुमुद = 1 पद्मांग

84 पद्मांग = 1 नलिनांग

84 लाख नलिनांग = 1 नलिन

84 नलिन = 1 कमलांग

84 लाख कमलांग = 1 कमल

84 कमल = 1 त्रुटितांग

84 लाख त्रुटितांग = 1 त्रुटित

84 लाख त्रुटित = 1 अट्टांग

84 लाख अट्टांग = 1 अट्ट

84 अट्ट = 1 अममांग

84 लाख अममांग = 1 अमम

84 अमम = 1 हाहांग

84 लाख हाहांग = 1 हाहा

84 हाहा = 1 हू हू अंग

84 हू हू अंग = 1 हू हू

84 हू हू = 1 लतांग

84 लाख लतांग = 1 लता

84 लता = 1 महालतांग

84 लाख महालतांग = 1 महालता

84 महालता = 1 श्रीकल्प

84 लाख श्रीकल्प = 1 हस्त प्रहेलित

84 लाख हस्त प्रहेलित = 1 अचलात्म

और Longitudinal Time Study करता है। किन्तु Longitudinal अध्ययन अपने जीवन की क्षणभंगुरता देखते हुए या तो परम्परा से गुरु से शिष्य के अवलोकन में आती जाती है, जैसा कि भारत में हुआ है अथवा केवली भगवान के केवलज्ञान में त्रिकाल, त्रिलोक झलकता है। उस पर जैनाचार्य और श्रावक आस्था रखकर ही जीवन यापन करते हैं।

इस प्रमाण गणना में ना तो काल 'यम' है, ना मृत्यु, ना देव है ना शक्ति। यह मात्र इस संसार के छह अविनाशी शाश्वत द्रव्यों में से वर्तनशील एक स्वतंत्र द्रव्य है। जो है यह परिवर्तन से सिद्ध होता है।

### सन्दर्भ

1. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष, भाग - 2, जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, 1995, पृ. 216 - 217.

### List of Speakers & Their Papers -

1. J.J. Bhabha, *Time in the Mind*.
2. A.W. Kanzaki, *Introduction*.
3. M.K. Chandrashekhara, *Biological Chronometry*.
4. S. Miller, *Rhythmic and Chaotic Time, Patterns from Physics to Biology*.
5. Rudolf Fridrich, *Synegetics and the Problem of Time*.
6. T. Padmanabhan, *Time & Mach's Principle*.
7. Klaus Maurice, *Time Indications - Attribute of Power*.
8. Hamson Owen, *Creating Time*.
9. Francis Menezes, *Time in Dreams*.
10. Dilimar Kamper, *Paradoxical Repetition - Time & Technology*.
11. J.P.S. Oberoi, *Time, the Destroyer. The Problem of Tech. Obsolescences*.
12. Rudolf Wendorff, *Conflict and Co-existence of different types of Time*.
13. Ashok Ranade, *Time and Tala, Musicology and Aesthetics*.
14. JayantNarlikar, *Time Assymetry in Electrodynamics and Cosmology*.
15. Gilbert Dalgalian, *Time Parameters and Harod Weinridis Text Linguistics*.
16. Seichi Ishizawa, *Men and Translation Text*.
17. Helma Sandess Bralms, *Time and Cinema*.
18. Neena Das, *Memory and Embodiment, Representations of the Past in Indian Myth*.
19. Gest Thadani, *Kali from Oblivion to Excavated Memory*.
20. V.C. Thomas, *Lived Time, An Existentialist Exploration*.
21. Rita Gupta, *The Buddhist Doctrine of Momentariness*.
22. Nayjyotisingh, *Temporarily and Logical Structure in Indian Therotical Heritage*.
23. N.R. Varadpande, *Time and the Concept of Infinity*.
24. M.S. Laksmithachar, *Time from the point of view of Visistadvaita*.
25. S.R. Jain, *Time in Jainism*.

प्राप्त : 21.07.2000



## बीसवीं शताब्दी में जैन गणित के अध्ययन की प्रगति

■ डॉ. अनुपम जैन \*

बीसवीं शताब्दी सूचना एवं संचार क्रांति की सदी रही। कम्प्यूटर के आविष्कार ने सूचनाओं के संकलन, संग्रहण एवं प्रस्तुति को सरल, सहज एवं सुविधापूर्ण बना दिया। इंटरनेट के माध्यम से सूचनाओं के सम्प्रेषण की विधा को नया आयाम मिला है। ज्ञान का अथाह भंडार आज इंटरनेट पर उपलब्ध है। इस श्रृंखला में विभिन्न धर्मावलम्बियों द्वारा अपनी परम्परा के साहित्य के अनेक दृष्टियों से मूल्यांकन के प्रयास किये गये हैं।

जैन साहित्य भी बहुआयामी है। विषयानुसार विभाजन के क्रम में सम्पूर्ण जैन साहित्य को 4 वर्गों में पारम्परिक रीति से विभाजित किया जाता है।<sup>1</sup>

1. **प्रथमानुयोग :** तीर्थंकरों एवं अन्य महापुरुषों के जीवनवृत्त, पूर्व भव एवं अन्य कथा साहित्य
2. **करणानुयोग :** लोक के स्वरूप, भूगोल, खगोल, गणित एवं कर्म सिद्धान्त विषयक साहित्य
3. **चरणानुयोग :** श्रावकों एवं मुनियों के आचरण विषयक साहित्य
4. **द्रव्यानुयोग :** आत्मा, परमात्मा एवं अन्य आध्यात्मिक साहित्य

उक्त विभाजन के अन्तर्गत करणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग के ग्रन्थों में गणितज्ञों की रुचि की यथेष्ट सामग्री उपलब्ध है। जैनाचार्यों ने जनकल्याण की भावना से अनुप्राणित होकर गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, व्याकरण आदि लोकरुचि के विषयों पर स्वतंत्र ग्रन्थों का भी सृजन किया है।

1908 में David Eugen Smith द्वारा 4th International Conference of Mathematicians, Rome (6 - 11 अप्रैल 1908) में The Ganita Sāra Samgraha of Mahāvīrācārya<sup>2</sup> शीर्षक शोधालेख प्रस्तुत किये जाने एवं बाद में प्रो. एम. रंगाचार्य द्वारा 1912 में गणित सार संग्रह को अंग्रेजी अनुवाद एवं टिप्पणियों सहित प्रकाशित किये जाने से विश्व समुदाय का ध्यान भारतीय गणित की इस शाखा की ओर आकृष्ट हुआ। यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि 1899 में महान जैनाचार्य श्रीधर (799 ई.) कृत पाटीगणितसार (त्रिशतिका) के मूल पाठ का सुधाकर द्विवेदी द्वारा प्रकाशन किया गया था<sup>3</sup> किन्तु उसका मंगलाचरण परिवर्तित कर दिये जाने के कारण यह कृति जैन कृति के रूप में अपनी पहचान नहीं बना पाई थी। 1910 में द्विवेदी द्वारा प्रकाशित गणित का इतिहास<sup>4</sup> में भी जैन गणित के साथ न्याय नहीं हो सका।

भारतीय गणित के समर्पित अध्येता प्रो. विभूतिभूषण दत्त, जिन्होंने जीवन के उत्तरार्द्ध में स्वामी विद्यारण्य के रूप में पुष्कर में संन्यस्त जीवन व्यतीत किया, ने हिन्दू गणित के रूप में जैन गणित का व्यवस्थित अध्ययन किया। आपने हिन्दू शब्द को अत्यन्त व्यापक अर्थ में लेते हुए इसमें जैन, बौद्ध एवं वैदिक तीनों परम्पराओं के ग्रन्थों का अध्ययन किया है। दत्त द्वारा 1928, 1929, 1930, 1935, 1936 में लिखित लेख पठनीय हैं। प्रो. अवधेशनारायण सिंह के साथ मिलकर लिखी गई 2 खण्डों में प्रकाशित<sup>5</sup> आपकी कृति History of Hindu Mathematics में उस समय तक प्रकाश में आ चुकी जैन गणित विषयक महत्वपूर्ण सामग्री समाहित है।

\* गणित विभाग, होल्कर स्वशास्त्री विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर-452017। निवास : ज्ञानछाया, डी-14,

श्रीपति (1039 ई.) कृत गणित तिलक को जैनाचार्य सिंहतिलक सूरि (13 वीं श.ई.) कृत टीका सहित सम्पादित कर हीरालाल रसिकलाल कापड़िया ने 1937 में गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज, बड़ौदा से प्रकाशित कराया था।<sup>6</sup> अंकगणित को समर्पित यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

पं. बलदेव मिश्र ने 1946 एवं 1951 में 2 महत्वपूर्ण आलेख क्रमशः श्रीधराचार्य एवं जैन ज्यामिति पर लिखे। डॉ. राजेश्वरी दत्त मिश्र के 1949, 1951 एवं 1953 के लेख पठनीय हैं। डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ने भी 1945, 1948, 1955, 1967, 1968 में महत्वपूर्ण लेख लिखे। 1974 में प्रकाशित 'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा (4 भाग)' जैनाचार्यों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को जानने का वर्तमान में उपलब्ध श्रेष्ठ ग्रन्थ है।

1942 एवं 1949 में प्रो. अवधेशनारायण सिंह ने प्रसिद्ध दिगम्बर जैन टीका 'धवला' के गणित पर अत्यन्त महत्वपूर्ण आलेख लिखे। 1948 में प्रो. सबलसिंह ने आगरा वि.वि. में आचार्य श्रीधर एवं उनके कृतित्व पर महत्वपूर्ण शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया। 1950 में प्रकाशित उनका आलेख भी पठनीय है। 1958 में प्रो. लक्ष्मीचन्द्र जैन ने आचार्य यतिवृषभ प्रणीत करणानुयोग के महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'तिलोपपण्णत्ति' के गणित पर 108 पृष्ठीय 'अत्यन्त सारगर्भित आलेख प्रस्तुत किया।

1960 में डॉ. उषा अस्थाना द्वारा लखनऊ वि.वि. में Ācārya Śrīdhara and His Trisatikā शीर्षक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया। 1963 में महावीराचार्य कृत गणित सार संग्रह का हिन्दी अनुवाद प्रो. लक्ष्मीचन्द्र जैन ने तैयार कर सोलापुर से प्रकाशित कराया।<sup>7</sup>

इन प्रारम्भिक प्रयासों से विश्व गणित इतिहास में जैन गणित अधिकृत रूप से प्रतिष्ठापित हुआ। इसके बाद प्रो. कृपाशंकर शुक्ल, प्रो. लक्ष्मीचन्द्र जैन, प्रो. आर. सी. गुप्त, डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री (आरा), डॉ. मुकुट बिहारी लाल अग्रवाल (आगरा), प्रो. टी. ए. सरस्वती, प्रो. बी. एस. जैन (दिल्ली), प्रो. एम. आर. गेलरा (जयपुर), प्रो. एस. सी. अग्रवाल (मेरठ), डॉ. एन. के. चौधरी (नागपुर), डॉ. एस. आर. शर्मा (अलीगढ़), डॉ. परमेश्वर झा (सुपौल), डॉ. अनुपम जैन, श्री दिपक जाधव (बड़वानी) आदि विद्वानों ने जैन गणित के क्षेत्र में मौलिक अनुसंधान कार्यों को गति देते हुए शोधपूर्ण आलेखों की लम्बी शृंखला प्रस्तुत की जिनका विस्तृत सर्वेक्षण आगामी पृष्ठों पर निहित है। इन आलेखों में जैन गणित विषयक यथेष्ट सामग्री उपलब्ध है।

जैन गणित के क्षेत्र में एक उल्लेखनीय उपलब्धि प्रो. पद्मावथम्मा द्वारा सन् 2000 में प्रस्तुत किया गया महावीराचार्य कृत गणित सार संग्रह का कन्नड़ अनुवाद है।<sup>8</sup> वर्तमान में निम्नांकित केन्द्रों पर जैन गणित के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य हो रहा है।

- |  |  |
|--|--|
| 1. ब्राह्मी सुन्दरी प्रस्थाश्रम<br>(प्रो. एल. सी. जैन)<br>कंचन विहार,<br>जबलपुर (म.प्र.)     | 2. गणित भारती एकेडमी<br>(प्रो. आर. सी. गुप्त)<br>आर - 20, रसबहार कालोनी,<br>झाँसी (उ.प्र.) |
| 3. उच्च शिक्षा संस्थान<br>(प्रो. एस. सी. अग्रवाल)<br>चौधरी चरणसिंह वि.वि.,<br>मेरठ - 250 004 | 4. गणित विभाग<br>(प्रो. पद्मावथम्मा)<br>मैसूर वि.वि.,<br>मैसूर (कर्नाटक)                   |

5. गणित विभाग  
होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय  
ए. बी. रोड,  
इन्दौर - 452 017
6. कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ  
(डॉ. अनुपम जैन)  
देवी अहिल्या वि.वि. द्वारा भारतीय गणित एवं  
गणित इतिहास के क्षेत्र में मान्य शोध केन्द्र,  
584, महात्मा गांधी मार्ग,  
इन्दौर - 452 001

आगामी पंक्तियों में हम 20वीं शताब्दी में किये गये जैन गणित विषयक प्रमुख शोधालेखों को सूचीबद्ध कर रहे हैं।

## हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाएँ

### 1. अग्रवाल, मुकुट बिहारीलाल

- 1964 'महावीराचार्य की जैन गणित को देन', जैन सिद्धान्त भास्कर (आरा), 24(1), पृ. 42 - 47
- 1972 'गणित एवं ज्योतिष के विकास में जैनाचार्यों का योगदान', आगरा विश्वविद्यालय, आगरा में प्रस्तुत Ph.D. शोध प्रबन्ध, पृ. 377.
- 1979 'जैन साहित्य में गणितीय संकेतन', श्री जैन दिवाकर स्मृति ग्रन्थ, बीकानेर.
- 1980 'जैन साहित्य में संख्या संकलनादि सूचक संकेत', सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ, रीवा, पृ. 402 - 410
- 1982 'जैन गणित में श्रेणी व्यवहार', आचार्य धर्मसागर अभिवन्दन ग्रन्थ, कलकत्ता, पृ. 646 - 662.
- 1987 'प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में बीजगणित', आचार्य देशभूषण अभिवन्दन ग्रन्थ, आस्था एवं चिन्तन खण्ड - जैन प्राच्य विद्यायें, पृ. 19 - 32.

### 2. अग्रवाल, सुरेशचन्द्र

- 1992 'जैन गणित के क्षेत्र में शोध के नये क्षितिज', अर्हत् वचन, इन्दौर, 4(2-3), पृ. 29 - 36

### 3. अग्रवाल, पारसमल

- 1988 'जैन द्रव्यानुयोग का गणित, आधुनिक विज्ञान एवं आध्यात्मिक प्रगति', अर्हत् वचन (इन्दौर), 1(1), पृ. 1 - 7.

### 4. बालचन्द्रराव, एस.

- 1981 'जैन गणितज्ञ - महावीराचार्य' (कन्नड़) आई.बी.एच. प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 43.

### 5. दीक्षित, शंकर बालकृष्ण

- 1958 'भारतीय ज्योतिष', (मूल मराठी कृति का हिन्दी अनुवाद), उत्तरप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ.

### 6. दुबे, महेश

- 1991 'कवि एवं गणितज्ञ - महावीराचार्य', अर्हत् वचन (इन्दौर), 3 (1), पृ. 1 - 26



## 7. गुप्ता, राधाचरण

- 1987 'जिनमद्गणि के एक गणितीय सूत्र का रहस्य', आस्था एवं चिंतन, दिल्ली, खण्ड जैन प्राच्य विद्यायें, पृ. 60-62
- 1988 'π का जैन मान एवं विदेशों में उसका प्रचार', अर्हत् वचन (इन्दौर), 1(1), पृ. 15-18.
- 1988 'जम्बूद्वीप के क्षेत्रों एवं पर्वतों के क्षेत्रफल की गणना', तिलोपपण्णत्ती, भाग-3, कोटा, पृ. 46-49.
- 1992 'चीन एवं जापान में π के जैन मान  $\sqrt{10}$  की लोकप्रियता', अर्हत् वचन (इन्दौर), 4(1), पृ. 1-5.
- 1994 'मयूर कितने थे?', अर्हत् वचन (इन्दौर), 6(1), जनवरी, पृ. 31-40.
- 2002 'जैन गणित पर आधारित नारायण पंडित के कुछ सूत्र', अर्हत् वचन (इन्दौर), 14(1), पृ. 61-70.
- 2002 'जैन गणित के प्रथम विदेशी प्रचारक - डेविड यूजीन स्मिथ', अर्हत् वचन (इन्दौर), 14(2-3), पृ. 99-100.

## 8. जाधव, दिपक

- 1996 'गोमटसार (जीवकांड) में संचय का विकास एवं विस्तार', अर्हत् वचन (इन्दौर), 8(4), पृ. 45-52
- 1997 'नेमिचन्द्राचार्य कृत संचय के विकास का व्युत्क्रियुक्तकरण' अर्हत् वचन (इन्दौर), 9(3), पृ. 19-34
- 1998 'नेमिचन्द्राचार्य कृत ग्रन्थों में अक्षर संख्याओं के अनुप्रयोग' अर्हत् वचन (इन्दौर), 10(2), पृ. 47-59
- 1999 'आचार्य नेमिचन्द्र और उनकी टीकायें', तुलसीप्रज्ञा (लाडनूँ), 108, पृ. 42-50
- 1999 'गोमटसार का नामकरण', अर्हत् वचन (इन्दौर), 11(4), पृ. 19-24

## 9. जाधव, दिपक एवं जैन, अनुपम

- 1998 'गोमटसार जीवकांड में काल एवं उसका मापन, अर्हत् वचन (इन्दौर), 10(3), पृ. 47-54

## 10. जैन, अनुपम

- 1980 'गणित के विकास में जैनाचार्यों का योगदान', एम.फिल. प्रोजेक्ट रिपोर्ट, मेरठ वि.वि., मेरठ, पृ. 256.
- 1981 'महावीराचार्य व्यक्तित्व एवं कृतित्व', जैन संदेश-शोधांक (मथुरा), 47, पृ. 258-260
- 1981 'षट्त्रिंशिका या षट्त्रिंशतिका', जैन सिद्धान्त भास्कर (आरा), 34(2), पृ. 31-40
- 1982 'कतिपय अज्ञात जैन गणित ग्रंथ', गणित भारती (दिल्ली), 4(1-2), पृ. 61-71
- 1982 'जैन गणित के अध्ययन की आवश्यकता एवं उपयोजिता', सेठ सुनहरीलाल जैन अभिनन्दन ग्रंथ (आगरा), पृ. 356-361
- 1986 'कन्नड़ जैन साहित्य एवं गणित (संशोधित)', डा. लालबहादुर अभिनन्दन ग्रंथ (टीकमगढ़), पृ. 453-457

- 1988 'आचार्य कुन्दकुन्द के साहित्य में विद्यमान गणितीय तत्त्व', अर्हत् वचन (इन्दौर), 1(1), पृ. 47-52
- 1988 'माधवचन्द्र एवं उनकी षट्त्रिंशिका', अर्हत् वचन (इन्दौर), 1(1), पृ. 65-74
- 1988 'जैन गणित की मौलिकतायें एवं भावी शोध दिशाएं', (विशेष सम्पादकीय), अर्हत् वचन (इन्दौर), 1(1), पृ. 113-121
- 1988 'दार्शनिक गणितज्ञ - आचार्य यतिवृषभ', अर्हत् वचन (इन्दौर), 1(2), पृ. 17-24
- 1988 'दार्शनिक गणितज्ञ - आचार्य वीरसेन', अर्हत् वचन (इन्दौर), 1(2), पृ. 25-37
- 1988 'तेजसिंह एवं इष्टांक पंचविंशतिका', अर्हत् वचन (इन्दौर), 1(2), पृ. 68
- 1989 'दार्शनिक गणितज्ञ आचार्य यतिवृषभ की कुछ गणितीय निरूपणायें', पंडित जगमोहन लाल शास्त्री साधुवाद ग्रन्थ, रीवा, पृ. 310-313
- 1990 'वचन कोश के गणितीय अंश', अर्हत् वचन (इन्दौर), 2(2), पृ. 71-74.
- 1990 'गणित के विकास में जैनाचार्यों का योगदान', Ph.D. शोध प्रबन्ध मेरठ वि.वि., मेरठ, पृ. 450
- 1994 'भगवान् ऋषभदेव की परम्परा में विकसित गणित', अर्हत् वचन (इन्दौर), 6(2), पृ. 125-130
- 1994 'जैन गणित - एक पूर्वक्षेप', जैन विज्ञान विचार संगोष्ठी, आख्या, गुना, पृ. 43-44
- 1995 'जैन साहित्य एवं गणित' ज्योतिर्मय, जैन अनुशीलन परिषद, जयपुर की स्मारिका, पृ. 40-42
- 1995 'कन्नड़ भाषी प्रमुख जैन गणितज्ञ' Sixth World Jain Conference, New Delhi, 24-26, Dec. Souvenir (Aspects of Jaina Philosophy and Culture).
- 1999 'प्राकृत भाषा में निबद्ध गणितीय ग्रन्थ', तुलसी प्रज्ञा (जैन विश्व भारती संस्थान, लाङ्गू का मुख पत्र), 26(106), पृ. 35-43
- 2000 डॉ. हीरालाल जैन की श्रुत सेवा (जैन गणित के विशेष सन्दर्भ में)', अनेकान्त दर्पण (बीना), 2(2000), पृ. 25-28
- 2000 'जैन आगमों में गणित', जैन भारती (गंगाशहर), 48(9), पृ. 14-21
- 2001 'विश्व क्षितिज पर जैन गणित', हरश्चन्द्र नाहटा स्मृति ग्रन्थ (दिस्त्री), पृ. 558-564
- 2001 'जैन गणित' नमोस्तु - आचार्य सुमतिसागर स्मृति ग्रन्थ, इन्दौर, पृ. 197-203
- 2001 'भगवान् ऋषभदेव की परम्परा में गणित', ऋषभ देशना (ऋषभदेव जैन शोधपीठ - डॉ. राममनोहर लोहिया अवध वि.वि., फैजाबाद की शोध पत्रिका), 1(1), पृ. 74-85

#### 11. जैन, अनुपम एवं अग्रवाल, सुरेशचन्द्र

- 1985 'महावीरचार्य - एक समीक्षात्मक अध्ययन', दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर - मेरठ, पृ. 84 + 12.
- 1985, 86 'जैन गणितीय साहित्य', तुलसी प्रज्ञा (लाङ्गू), 11(3), 3-16, 12(2), पृ. 36-46, पुनर्मुद्रित (1988), अर्हत् वचन, 1(1), पृ. 19-40.
- 1986, 87 जैन आगमों में निहित गणितीय अध्ययन के विषय, तुलसी प्रज्ञा (लाङ्गू), 12(4), पृ. 57-65, 13(1), 37-43, पुनर्मुद्रित (1988), लाला हरजसराय अभिनन्दन

- ग्रन्थ (वाराणसी), भाग - 1, पृ. 75 - 88.
- 1988 'हेमराज एवं उनका जगितसार', शोधदर्श (लखनऊ), 6, पृ. 17 - 18.
- 1988 'जैन जगितज्ञ - महावीरचार्य', अर्हत् वचन (इन्दौर), 1(1), पृ. 41 - 46.
- 1995 'नौवीं शताब्दी के महान जगितज्ञ - महावीरचार्य', विश्व विवेक (अमेरिका), 4(1), पृ. 13 - 14
12. जैन, अनुपम और जैन, जयचन्द्र
- 1988 'क्या श्रीधर जैन थे?' अर्हत् वचन (इन्दौर), 1(2) दिसम्बर, पृ. 49 - 54
13. जैन, अनुपम और जैन, श्वेता
- 1998 'शौरसेनी प्राकृत ग्रंथों में निहित जगितीय साग्रणी', अर्हत् वचन (इन्दौर), 10 (4), पृ. 63 - 68
14. जैन, अनुपम और सिंघल, ममता (अग्रवाल)
- 1996 'अचार्य श्रीधर - एवं उनका जगितीय अवदान', भाग - 1, अर्हत् वचन (इन्दौर), 8(1), पृ. 17 - 24
- 1996 'अचार्य श्रीधर - एवं उनका जगितीय अवदान', भाग - 2, अर्हत् वचन (इन्दौर), 14(2-3), पृ. 15 - 30
15. जैन, भागचन्द्र 'भागेन्दु'
- 1961 'जगित', अन्तर्गत भारतीय संस्कृति के विकास में जैन तीर्थों का योगदान, अलीगंज (एटा).
16. जैन, हीरालाल
- 1941 'आठवीं शताब्दी से पूर्ववर्ती जगित शास्त्र संबंधी संस्कृत एवं प्राकृत ग्रन्थों की स्त्रोत', जैन सिद्धान्त भास्कर (आरा), 8(2), पृ. 105 - 111.
17. जैन, लक्ष्मीचन्द्र
- 1958 'तिलोयपण्णत्ती का जगित', अन्तर्गत जम्बूद्वीपपण्णत्ती संग्रह, सोलापुर, पृ. 109
- 1961 'लोकोत्तर जगित विज्ञान के शोध पथ', भिक्षु स्मृति ग्रन्थ, कलकत्ता, पृ. 222 - 231
- 1963 'जगित सार संग्रह', मूल लेखक - महावीरचार्य, हिन्दी अनुवाद एवं टिप्पण सहित सम्पादित, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर
- 1973 'भारतीय जगित शास्त्र एवं जैन लोकोत्तर जगित', अनुसंधान पत्रिका - जैन विश्व भारती, (लाङ्गून), अप्रैल-जून, पृ. 33 - 41
- 1977 'जैन जगित विज्ञान की शोध दिशाएँ', महावीर जयंती स्मारिका, ग्वालियर, पृ. 281 - 290
- 1978 'पंडित परम्परा और जैन जगित विज्ञान', तीर्थकर (इन्दौर), 6(3), पृ. 73 - 78
- 1978 'समयसार सप्तदशांगी टीका में जगितीय न्याय एवं दर्शन', श्रमण (वाराणसी), 29(9), पृ. 6 - 11
- 1980 'आजमें जगितीय सामग्री तथा उसका मूल्यांकन', तुलसी प्रज्ञा, (लांडन), 6(9), पृ. 35 - 69
- 1981 'गोम्मतसार ग्रंथ की जगितात्मक प्रणाली', अन्तर्गत गोम्मतसार कर्मकांड भाग - 2,

- भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ. 1397 - 1436
- 1981 'विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में जैन सिद्धान्त', पं. बाबूलाल जैन जमादार अभिनन्दन ग्रन्थ, हस्तिनापुर, पृ. 165 - 169
- 1982 'सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य का गणितीय उपक्रम', भगवान बाहुबली प्रतिष्ठापना सहस्राब्दि महोत्सव महाभिषेक स्मारिका, नई दिल्ली, पृ. 209 - 212.
- 1984 'तिस्रोपण्णत्ती एवं उसका गणित', अन्तर्गत तिलोपण्णत्ती, अनुवादक - आर्थिका विशुद्धमति, भाग - 1, पृ. 49 - 68, भाग - 2, पृ. 26 - 35, कोटा.
- 1985 'आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती की स्वर्गोत्स विद्या एवं गणित सम्बन्धी मान्यताएँ', Proceedings of International Seminar on Jaina Mathematics and Cosmology, P. 101 - 116.
- 1986 'गणितानुसंग प्रस्तावना', अन्तर्गत गणितानुसंग, सं. मुनि कन्हैयालाल 'कमल' एवं दलसुख मालवणिया, अहमदाबाद, पृ. 9 - 76.
- 1988 'कुन्दकुन्दाचार्य का समय निर्धारण गणितीय परम्परा के आधार पर', महावीर जयन्ती स्मारिका, जयपुर, पृ. 33 - 40.
- 1988 'आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती की स्वर्गोत्सविद्या एवं जैन गणित सम्बन्धी मान्यताएँ - आधुनिक सन्दर्भ में', अर्हत् वचन (इन्दौर), 1(1), पृ. 75 - 90.
- 1988 'गिरिनगर की चन्द्रगुफा में हीनाक्षरी एवं धनाक्षरी का रहस्य', अर्हत् वचन (इन्दौर), 1(2), पृ. 11 - 16.
- 1988 'दशमलव प्रणाली एवं आचार्य कुन्दकुन्द', महावीर जयन्ती स्मारिका, जयपुर, अंक 12(2), पृ. 87 - 92.
- 1990 'ब्राह्मी लिपि का आविष्कार एवं आचार्य भद्रबाहु मुनि संघ, अर्हत् वचन (इन्दौर), 2(2), पृ. 17 - 26.
- 1991 'मूल नृदिसंघ आचार्य श्री कुन्दकुन्द का समय निर्धारण (गणित परम्परा से)', अर्हत् वचन (इन्दौर), 3(3), पृ. 33 - 41.
- 1992 'आचार्य श्री कुन्दकुन्द कालीन दक्षिण भारतीय दिग्गज जैन गणित एवं ज्योतिष', I.J.H.S. (नई दिल्ली), 11(4), पृ. 173 - 180.
- 1994 'श्री वीरसेनाचार्य आधुनिक (गणितीय) न्याय के सन्दर्भ में', जैन विद्या (जयपुर), 14 - 15, पृ. 33 - 42.
- 1997 'तिस्रोपण्णत्ती के चतुर्थाधिकार का गणित', भाग - 2, Introductory, पृ. 26 - 35.
- 1997 'तिस्रोपण्णत्ती के पाँचवें और सातवें महाधिकार का गणित', भाग - 3, Introductory, पृ. 34 - 45.
18. जैन, लक्ष्मीचन्द्र और जैन, अनुपम
- 1989 'क्या आचार्य कुन्दकुन्द दसार्हा पद्धति के आविष्कारक थे?', अर्हत् वचन (इन्दौर), 1(3), मार्च, पृ. 7 - 15.
19. जैन, लक्ष्मीचन्द्र और जैन, चक्रेशकुमार
- 1982 'जैनाचार्यों द्वारा कर्म-सिद्धान्त के गणित का विकास', सहलेखक - चक्रेशकुमार जैन, आचार्य धर्मसागर अभिवन्दन ग्रन्थ, कलकत्ता, पृ. 663 - 672.
- 1990 'जम्बूद्वीप परिप्रेक्ष्य', अर्हत् वचन (इन्दौर), 2(2), पृ. 55 - 62

20. जैन, एल.सी. और जैन, एस.  
1995 'भगवान ऋषभदेव एवं श्रमण परम्परा के महत्वपूर्ण गणितीय एवं ऐतिहासिक पक्ष', महावीर जयंती स्मारिका, जयपुर, 3, पृ. 4-8
21. जैन लक्ष्मीचन्द्र एवं वेदप्रकाश  
1976 'आधुनिक गणितीय शोध के सन्दर्भ में जैन गणित का पूर्वक्षण', तुलसी प्रज्ञा, (लाडनू), 1(6), पृ. 67-68
22. जैन, रमेशचन्द्र  
1986 'षट्स्वण्डागम में संख्या सिद्धान्त एवं अनन्त', महावीर जयन्ती स्मारिका, जयपुर पृ. 36-39  
1988 'स्याद्राद के सप्तभंज एवं आधुनिक गणित विज्ञान', अर्हत् वचन इन्दौर, 1(1), पृ. 9-14
23. झा, परमेश्वर  
1986 'जैनाचार्यों के गणितीय एवं ज्योतिर्ज्ञान विषयक ग्रन्थों का सर्वेक्षण', तुलसी प्रज्ञा (लाडनू), 12(3), पृ. 30-46.  
1992 'जैन ज्योतिष गणित - आर्यभट्ट प्रथम', अर्हत् वचन (इन्दौर), 4(2-3), पृ. 45-50.
24. कमल, कन्हैयालाल (मुनि)  
1970 'गणितानुयोज' (अंग-उपांगों से संकलित भूगोल, खगोल, गणित विषयक सामग्री), आगम अनुयोग प्रकाशन समिति, सांडेराव (राज.)
25. मिश्र, राजेश्वरीदत्त  
1949 'वृत्त का गणित', जैन सिद्धान्त भास्कर (आरा), 15(2), पृ. 105-111.  
1951 'जैन ग्रन्थों में क्षेत्रमिति', जैन सिद्धान्त भास्कर (आरा), 17(1), पृ. 17-23.  
1953 'जैन गणित की कतिपय मौलिक उद्भावनाएँ', जैन सिद्धान्त भास्कर (आरा), 19(1)
26. मिश्र, बलदेव  
1951 'जैन ग्रन्थों में क्षेत्रमिति', जैन सिद्धान्त भास्कर (आरा), 17(1), पृ. 19-23.
27. मिश्रा, पी.एन.  
1995 'जैन साहित्य में लोकानुयोग साहित्य', शोधादर्श, 27, पृ. 240-243.
28. मोहन, ब्रज  
1965 'गणित का इतिहास', उ.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ.
29. सरस्वती सत्यप्रकाश स्वामी  
1980 'आचार्य महावीर की रेषा गणितीय उपलब्धियाँ', सिद्धा. पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ, रीवा, पृ. 417-425.
30. साराभाई, एस.सी.  
1986 'महावीराचार्य की घनमूल ज्ञात करने की विधियाँ', जर्नल ऑफ इन्स्टीट्यूट ऑफ

इंजीनियर्स (भारत), 67 (अगस्त), हिन्दी खण्ड, पृ. 14 - 18.

31. शर्मा, योगेन्द्र

1996 'श्रीधराचार्य', एम.फिल. योजना विवरण, चौधरी चरणसिंह वि.वि., मेरठ, पृ. 160 - 170.

32. शास्त्री, नेमिचन्द्र (जैन)

1945 'जैन गणित की महत्ता', नाथूराम प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ, इन्दौर, पृ. 713 - 723.

1948 'श्रीधराचार्य', जैन सिद्धान्त भास्कर (आरा), 14(1), पृ. 31 - 42.

1955 'तिलोयपण्णत्ती में श्रेणी व्यवहार गणित सम्बन्धी दस सूत्रों की उत्पत्ति', जैन सिद्धान्त भास्कर (आरा), 22(2), पृ. 42 - 50.

1968 'जैनाचार्यों द्वारा प्रस्तुत गणित की मौलिक उद्भावनाएँ', महावीर जयन्ती स्मारिका, जयपुर, पृ. 197 - 216.

1967 'आचार्यकल्प टोडरमल की गणितीय उपलब्धि', वीरवाणी-टोडरमल विशेषांक, जयपुर, मार्च, पृ. 40 - 53.

1968 'जैनाचार्यों द्वारा प्रस्तुत गणित की मौलिक उद्भावनाएँ', महावीर जयन्ती स्मारिका, जयपुर, पृ. 197 - 216.

1974 'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा', भाग 1-4, अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद, सागर (प्रथम संस्करण)

1983 'महान् ज्योतिर्विद् श्रीधराचार्य', भारतीय संस्कृति के विकास में जैन वांगमय का अवदान, अ. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद, सागर, पृ. 345 - 354.

33. शाह, अम्बालाल

1969 'गणित', अन्तर्गत जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग-5, पा. वि. शोध संस्थान, वाराणसी, पृ. 160 - 166.

34. मुनि, श्रीचन्द्र (मुनि)

1996 'मानव और देवताओं का कालमान : एक अंकगणितीय अध्ययन', तुलसी प्रज्ञा (लाडनूँ), 22(4), पूर्णांक 97, पृ. 15 - 20.

35. शुक्ल, चन्द्रशेखर प्रसाद

2001 'श्री धराचार्य कृत पाटीगणित का विवेचनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन', रानी दुर्गावती वि.वि., जबलपुर में प्रस्तुत Ph.D. शोध प्रबन्ध

36. उपाध्याय, बी.एल.

1971 'प्राचीन भारतीय गणित', विज्ञान भारती, दिल्ली

37. वोलोदारस्की, अलेक्जेन्डर

1987 'महावीराचार्य कृत गणितसार संग्रह - आस्था एवं चिंतन', आचार्य देशभूषण अभिनन्दन ग्रन्थ, दिल्ली, जैन प्राच्य विद्यायें, पृ. 77 - 98.

38. वर्णी, जिनेन्द्र

1974 'गणित', अन्तर्गत जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग-2, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ. 213 - 233.

## English & Other Foreign Languages

### 1. Agnihotri, Swati

2001 '*Nemicandra and His Mathematical Contributions*', M.Sc. Project Report, Holkar Science College, Indore.

### 2. Asthana, Usha

1960 '*Ācārya Śīdhara and His Trīsatikā*', Doctoral Thesis, Lucknow University, Lucknow.

### 3. Bag, A.K.

1979 '*Mathematics in Ancient and Medieval India*', Chaukhamba Orientalia, Varanasi.

### 4. Bell, E.T.

1936 '*Mahāvīra's Diophantine System*', Bulletin of the Calcutta Mathematical Society (B.C.M.S.), (Calcutta), 28, P. 121-122.

### 5. Chakravarti, G.G.

1932 '*Growth and Development of Combination & Permutation in India*', B.C.M.S., (Calcutta), 24, P. 79-88.

### 6. Dutta, B.B.

1928 '*On Mahāvīra's Solution of Rational Triangles and Quadrilaterals*', B.C.M.S. (Calcutta), 20, P. 267-294.

1929 '*The Jaina School of Mathematics*', B.C.M.S. (Calcutta), 21, P. 115-143.

1930 '*Geometry in Jaina Cosmography*', Quellen und Studien Zur Geschichte der Mathematik - Abteilung, B.Ed.I, P. 245-354.

1935 '*Mathematics of Nemicandra*', The Jaina Antiquary (Arrah), 1-II, P. 25-44.

1936 '*A lost Jaina Treatise on Arithmetics*', The Jaina Antiquary (Arrah), 2-II, P. 38-41.

1980 '*Hindu Geometry*' (Revised by K.S. Shukla, I.J.H.S. (Calcutta), 15(2), P. 121-188.

### 7. Dutta, B.B. & Singh, A.N.

1935-38 '*History of Hindu Mathematics*' 2 vols., Reprinted Combined Edition, Asia Publishing House, Bombay, 1962, Reprinted Mittal Publication, Delhi, 2001.

**8. Gode, P.K.**

- 1993 'Reference to a Lost Work on *Pāṭiganita* of ŚrīdharaĀcārya', by Makhibhatta (1377 A.D.) and Raghavabhatta, *Journal of Indian History* (1493 A.D.), 16, P. 259-262.

**9. Gupta, R.C.**

- 1974 'Mahāvīracārya on the Perimeter and Area of an Ellipse', *Mathematics Education (M.E.)*, Shiwan, 8(1), P. 17-19.
- 1975 'Circumference of Jambūdvīpa in Jaina Cosmography', *I.J.H.S. (Calcutta)*, 10(1), P. 38-44.
- 1975 'Mahāvīracārya Rule for the Surface Area of a Spherical Segment - A new Interpretation', *Tulsi Prajñā (Ladnun)*, 1(2), P. 63-66.
- 1975 'Some Ancient Values of  $\pi$  and their Use in India', *M.E. (Shiwan)*, 2(1), P. 1-5.
- 1979 'Jaina Formula for the Area of Circular Segment', *Jaina Journal (Calcutta)*, 13(3), P. 89-94.
- 1981 'Process of Averaging in Ancient and Medieval Mathematics', *Gaṇita Bhārati (Delhi)*, 3(1,2), P. 32-42.
- 1983 'Decimal Denominational Terms in Ancient and Medieval India', *Gaṇita Bhārati (Delhi)*, 5(1-4) P. 8-15.
- 1986 'Jinabhadra gaṇi and Segment of a Circle Between Two parallel Chords', *Gaṇita Bhārati (Delhi)*, 7(1-4), P. 25-26.
- 1986 'Mahāvīracārya's Rule for the Volume of Frustum like Solids', *Aligarh Journal of Oriental Studies (Aligarh)*, 3(1), P. 31-38.
- 1986 'Mādhavacandra's and other Octagonal Derivative of the Jaina value  $\pi = \sqrt{10}$ ', *I.J.H.S. (Calcutta)*, 21(2), P. 131-139.
- 1986 'When There was no Unity in the Number Land', *Gaṇita Bhārati (Delhi)*, 8(1,4), P. 44-45. (Pen name - Gaṇitānanda)
- 1987 'Chords and Areas of Jambūdvīpa Regions in Jaina Cosmography', *Gaṇita Bhārati (Delhi)*, 9(1,4), P. 51-53.
- 1987 'On the Date of Śrīdhara', *Gaṇita Bhārati (Delhi)*, 9(1,4), P. 54-56.
- 1988 'Volume of a Sphere in Ancient Indian Mathematics', *Journal of The Asiatic Society*, 30.
- 1989 'On Some Rules from Jaina Mathematics', *Gaṇita Bhārati (Delhi)*, 11 (-4), P. 11.



- 1990 'A Few Remarks Concerning Certain Values of  $\pi$  in Ancient India', *Gaṇita Bhārati* (Delhi), P. 32-38.
- 1991 'On the Volume of a Sphere in Ancient India', *Historia Scientiarum* (Japan), 42, P. 33-44.
- 1991 'Jaina Cosmography and Perfect Numbers', *Arhat Vacana* (Indore), 4(2-3), P. 89-94.
- 1992 'Mahāvīracārya's Rule for the Area of a Plane Polygon', *Arhat Vacana* (Indore), 4(1), P. 45-54.
- 1992 'Introduction on Jaina Mathematics to Prof. L.C. Jain's Book - The Tao of Jaina Sciences', *Arihant International*, Delhi, P. VII-XVI.
- 1992 'The First Unenumerable Number in Jaina Mathematics', *Gaṇita Bhārati* (Delhi), 14(1-4), P. 11-24.
- 1993 'Rectification of Ellipse from Mahāvīra to Ramanujam', *I.G.H.P.M., Newsletter* (USA), No. 29, P. 10-12.
- 1999 'Introduction to Jaina Mathematics', *Jinamanjari* (Canada), 19(1), April-99, 2-7.
- 2002 'Area of Bow-figure in Jaina Mathematics', *Arhat Vacana* (Indore), 14(1), P. 9-16.
- 2002 'A Little known 19th Century Study of Gaṇita-Sāra-Saṅgrah', *Arhat Vacana* (Indore), 14(2-3), 101-102.

#### 10. Hayashi, Takao

- 1992 'Mahāvīra's Formula for a Conch like plane figure', *Gaṇita Bhārati* (Delhi), 14(1), P. 1-10.
- 1995 'Śrīdhara's Authorship of Mathematical Treatise - Gaṇitapancaviṃśi', *Historia Scientiarum*, 4(3), P. 223-250.
- 1996 'Geometric Formulas in the Dhavalā of Vīrasena', *Jinamanjari* (Canada), P. 76-79.

#### 11. Jadhav, Dipak

- 1999 'Exploration of Representation of Numbers in Nemicaṇḍracāryas Works', *Arhat Vacana* (Indore), 11(3), P. 53-63.
- 2000 'On the quadrature of a Circular Annulus', *Arhat Vacana* (Indore), 12(4), P. 61-66
- 2001 'On the Value of  $\pi$  used in the Trilokasāra', *Gaṇita Bhārati* (Delhi), 23(1-4), P. 91-100

- 2001 'Nemicandra's Rule for Finding the Volume of a Right Circular Cylinder', Jain Journal (Calcutta), **36**(3), P. 74 - 78.
- 2002 'Nemicandra's Rule for Volume of a Sphere', I.J.H.S (Calcutta), **37**(3), P. 237 - 254.
- 2002 'The Laws of Logarithms in India', Historia Scientiarum (Japan), **11**(3), P. 261 - 267.
- 12. Jadhav, Dipak & Jain, Anupam**
- 1997 'On Prastāra and Number of Srutajñākṣara of Nemicandra', Tulsi Prajñā (Ladnun), **23**(3), P. 103 - 109.
- 13. Jadhav, Dipak & Padmavathamma**
- 2002 'The Mensuration of a Conch in Ancient India', Arhat Vacana (Indore), **14**(1), P. 31 - 54
- 14. Jain, Anupam**
- 1984 'Mahāvīracārya, The Man & Mathematician', Acta Ciencia Indica, Meerut, **10**(4), P. 225 - 260.
- 1987 'Survey of the Work Done on Jaina Mathematics', Tulsi Prajñā (Ladnun), **11**(1-3), 1983, 15-27, Ācārya Desabhushana Felicitation Volume, Astha aur Chgintan, 1987, P. 105 - 112.
- 1988 'A new Book of Al-Birānī', Arhat Vacana (Indore), **1**(2), P. 69 - 70. Jaina Antiquary (Arrah), **41**(2), P. 23 - 25.
- 2000 'Indian Contribution to Mathematics with Special Reference to Misplaced Credits of Jainācāryas', Arhat Vacana (Indore), **12**(1), P. 67 - 74.
- 2002 'Mathematics in Mahāvīra's Tradition', Arhat Vacana (Indore), **14**(1), P. 17 - 29.
- 15. Jain, B.S.**
- 1977 'On the Gaṇita-Sāra-Saṁgraha of Mahāvīra', I.J.H.S. (Calcutta), **12**(1), P. 17 - 32.
- 1987 'Contributions of Ancient Jaina Mathematicians', Astha evam Cintana, Delhi, P. 33 - 48.
- 16. Jain, L.C.**
- 1967 'On the Jaina School of Mathematics', Chhotelal Smriti Grantha, Calcutta, English Section, P. 266 - 292.
- 1973 'Researches on Jaina Mathematics', Jñānāpīṭha Patrika - Shodha Visheshanka, New Delhi, P. 33 - 41.
- 1973 'Mathematical Foundation of Karma Quantum System Theory-I', Anusandhan Patrika, J.V.B., Ladnun, P. 1 - 12.

- 1973 'Set Theory in Jaina School of Mathematics', I.J.H.S. (Calcutta), 8(1), P. 1-27.
- 1975 'Role of Mathematics in Jainology', Journal of Birla Institute of Arts and Music, Prācyā Pratibhā, Bhopal, 2(1), P. 50-52.
- 1975 'Jaina School of Mathematics (A study in Chienese Influence & Transmission)', Published in Contribution of Jainism to Indian Culture, Varanasi, P. 206-220.
- 1975 'Zeros and Infinities of Ancient India', Tirthankara, Indore, Eng. Section I (7-12), P. 93-97.
- 1976 'On Analytical Treatment of Transfinite Numbers in Dhavaḷā', Chainsukha Dasa Nyaytirth Smriti Granth, Jaipur, PP. 173-188
- 1976 'On Certain Mathematical Topics of Dhavaḷā Texts', I.J.H.S., (Calcutta), 1(2), PP. 85-111
- 1976 'Principle of Relativity in Jaina School of Mathematics', Tulsi Prajñā (Landun), 5, PP. 20-28
- 1976 'The Jaina Theory of Ultimate Particles', Published in Jaina Philosophy & Culture in Light of Modern Context, Indore, PP. 43-55.
- 1976 'Mathematical Foundation of Karma System Theory', Published in Bhagwan Mahāvira and His Relevance in modern times, Bikaner, PP. 132-150
- 1977 'Divergent Sequences Locating Transfinite sets in Trilokasāra', I.J.H.S., (Calcutta), 12(1), PP. 59-75.
- 1977 'On the Contributions, Transmissions and Influence of the Jaina School of Mathematical Science', Tulsi Prajñā, Ladnun, 3(4), P. 121-134.
- 1977 'Mathematical Contributions of Todarmal of Jaipur', Jaina Antiquary, Arrah, 30(1), P. 10-23.
- 1978 'Crisis in Mathematics', Tirthankara, (Indore), Eng. Sec. 3(1), PP. 16-18
- 1978 'Perspective of System Theoretic Technique in Jaina School of Mathematics between 1400-1800 A.D.', Jaina Journal, (Calcutta), 13(2), PP. 49-66.
- 1979 'System Theory in Jaina School of Mathematics', I.J.H.S., (Calcutta), 14(1), PP. 29-63
- 1983 'Exact Sciences from Jaina Sources-Vol-I & II basic Mathematics & Astronomy & Cosmology', Jaipur (Rajasthan Prakrat Bharti).
- 1987 'Todramala of Jaipur', (A Jaina Philosopher Mathematician), I.J.H.S. (Calcutta), 22(4), PP. 359-371.

- 1990 'Point Circle, Line and Triangle in Digambara Jaina Works', (In Hindi) Arhat Vachan, 11(4) PP. 9-12
- 1992 'The Tao of Jaina Science', Arihant International Delhi.
- 2000 'The Jaina School of Mathematical Philosophy', Tulsī Prajñā (Ladnun), 109, P. 104-117.
- 17. Jain L.C. & Jain Anupam**
- 1985 'Philosopher Mathematicians (Yativṛaṣabha, Virasena and Nemica-ndra)', D.J.I.C.R., hastinapur (Meerut).
- 18. Jain L.C. & Jain C.K.**
- 1981 'On Contribution of Jainology to Indian Karma Structure Theory', Tulsī Prajñā, (Ladnun), 1(5,6), PP. 1-10.
- 19. Jain L.C. & Jain Meena**
- 1979 'System Theory in Jaina School of Mathematics', I.J.H.S. (Calcutta), 14, PP. 31-65.
- 1983 'Elements of Operational Details in Labdhisāra (Sketched by Todarmal)', The Jaina Antiquary (Arrah), 36(I), PP. 21-32.
- 20. Jain, Mahendra**
- 1999 'Asti and Syād in Jaina Thought', Jinamanjari (Canada), 19(1), April-99, 13-18.
- 21. Jain, N.L.**
- 1985 'Time Units in Jainology - A Survey', Tulsī Prajñā (Ladnun), 10(4), P. 22-30.
- 1995 'Branches and Subjects of Learning in Jaina Canon', Arhat Vacana (Indore), 7(1), P. 75-84.
- 1996 'Jaina Relativism (Anekantavāda) and Theory of Relativity', Arhat Vacana (Indore), 8(4), P. 53-66.
- 22. Jain, Rashmi**
- 2000 'Mahāvīracārya & His Mathematical Works', M.Sc. Project Report, Holkar Science college, Indore PP. 115-120.
- 23. Jha, Parmeshwar**
- 1978 'A Critical Study on Brahmagupta and Mahāvīra and Their Contributions in the Field of Mathematics', ME 12, Sec. B, 66-69.
- 1984 'Contribution of Jains to Astronomy and Mathematics', ME. Vol. XVIII, No. 3.
- 1988 'Contribution of Jainācāryas to Mathematics and Astronomy', Arhat Vacana (Indore), 1(1), PP. 163-172

**24. Jha, S.K. and Jha, Mritunjaya**

1990 'A study of the Value of  $\pi$  Known to Ancient Hindu and Jaina Mathematicians', Journal of the Bihar Mathematics Soc. 13 PP. 38-44

**25. Kapadia, H.R.**

1936 'Jaina Hymans & Magic Square', I.H.Q. (Poona), 10, PP. 148-154.  
'Ganita Tilak with Commentary of Simha Tilak Suri', Edited & translated with detailed Introduction

**26. Lal, R.S.**

1981 'Contribution of Mahāvīracārya in the Development of Theory of Series, M.E. (Shiwan), 99 (B). 1981.  
1983 'Development of Theory of the Series in Jaina Mathematics', XVII (3), Sep. 1983, The Mathematics Education PP. 100-110.

**27. Mishra, R.D.**

1949 'Positive Integral Kinds of Numbers According to Jaina Concept', The Jaina Antiquary, (Arrah), 15-1, PP. 32-40.

**28. Mishra, V. & Singh S. L.**

1999 'Glimpse of Geometry of Certain Figures, Jinamanjari (Canada), 19(1), 27-38.

**29. Ramanujacārya, N. & Kaye, G.R.**

1913 'The Trisatikā of Śrīdharaacārya', B.M. (Leipzig), 13, PP. 203-217.

**30. Roy. D.M.**

1927 'The Culture of Mathematics among the Jainas of Southern India in the 9th Century', A.B.O.R.I. (Poona), 8, PP 143-147.

**31. Saraswati, T.A.**

1961 'The Mathematics in First Four Mahadhikars of Triloka Prajñāpti', Journal of Ganganatha Research Institute (Ranchi), 8, PP. 27-51.  
1961 'Sredikshetras or Digramatical Representation of Mathematical Series', J.O.R.I., (Madras), 28(1), 4 PP. 74-85.  
1967 'Mahāvīra's Treatment of Series', Journal of Ranchi University, (Ranchi), PP. 39-50.  
1979 'Geometry in Ancient and Medieval India', Motilal Banarasidas (Delhi).

**32. Sharma, S.R.**

1999 'The Gaṇitasāra of Thakkarpheru', Jinamanjari (Canada), 19(1), P. 24-26.

33. Shastri, S. Śrīkant  
1947 'Date of Śrīdharācārya', The Jaina Antiquary, (Arrah), 12(2), PP. 12-17.
34. Shukla, K.S.  
1950 'On Śrīdhara's Rational Solution of  $Nx^2 + I = Y^2$ , Gaṇita (Allahabad), I-II, PP. 1-12  
1959 'Introduction of Pāṭiganīta', Published in Pāṭiganīta of Śrīdhara, Lucknow University, Lucknow.
35. Singh, A.N.  
1942 'Mathematics of Dhavalā', Published with Ṣaṭakhandāgama, Book-IV, Amraoti, P. 1-XXIV.  
1949 'History of Mathematics in India from Jaina Sources', The Jaina Antiquary, (Arrah), 15(II), PP. 46-53, 16-II, PP. 55-69.
36. Singh, H.P.  
1987 'A Critical Study of Mathematical Contribution of Mahāvīracārya', Ph.D. Thesis, L.N. Mithila University, Darbhanga.
37. Singh, N.K.  
1997 'Mahāvīra The Great Mathematician', Tulsī Prajñā (Ladnun), 23(1), 38-40.
38. Singh, Nav Jyoti  
1985 'Jaina Theory of Measurement and Theory of Transfinite Number', International Seminar on Jaina Mathematics and Cosmology PP. 209-238.
39. Singh, Parmananda.  
1988 'Ācārya Jayadeva's Treatment of Permutation & Combination', Arhat Vacana (Indore), 1(2), PP. 43-48.
40. Singh, Sabal.  
1948 Hindu Mathematics - Śrīdharācārya and His Works', Doctoral Thesis, Agra University.  
1950 'Time of Śrīdharācārya', ABORI (Poona), 31.
41. Sinha, S.R.  
1981 'Contribution of Mahāvīracārya in the Development of the Theory of Series', M.E. 15, Sec. B. PP. 31-44
42. Smith, D.E.  
1908 'Ganita-Sāra-Saṃgraha of Mahāvīracārya', B.M., (Leipzig), 3rd Series, PP. 106-110.

- 1912 'Introduction of G.S.S.', Published with English & Hindi editions of Ganita - Sāra - Samgraha, Madras 1912, Sholapur 1963, Hombuj 2000.
- 1925 'History of Mathematics', 2 vols., Dower Publication, New York.
44. Tilwankar, Prashant  
2000 'Śrīdharācārya - the Man & the Mathematician', M.Sc. Project Report, Holkar Science College (Indore).
45. Vijairaghavana, T.  
1941 'Jaina Magic Square', Mathematics Student, 2, PP. 97 - 102.
46. Volodarsky, A.I. et.al.  
1966. 'Russian Translation of Śrīdhara's Pāṭiganita'.

#### सन्दर्भ स्थल

1. रत्नकरंज श्रावकाचार, आचार्य समन्तभद्र, 2/43 - 2/46.  
श्वेताम्बर परम्परा में निम्नवत् विभाजन मिलता है - धर्मकथानुयोग, गणितानुयोग, चरण - करणानुयोग, द्रव्यानुयोग।
2. The Ganita Sāra Samgraha of Mahāvīrācārya, Bibliotheca Mathematica, 3rd Series, Vol.9 (Dec. 1908), PP. 106 - 110.
3. त्रिशतिका, मूल लेखक : श्रीधराचार्य, संपादन - सुधाकर द्विवेदी, वाराणसी, 1899.
4. गणित का इतिहास, सुधाकर द्विवेदी, वाराणसी, 1910.
5. History of Hindu Mathematics, 2 Vols, Motilal Benarsidas, Lahore, 1935-1938, Combined Ed. - Asia Publishing House, Bombay - 1962, Reprinted by Mittal Publication, Delhi, 2001.
6. गणित तिलक, मूल लेखक : श्रीपति, टीकाकार - सिंहतिलक सूरि, संपादक - हीरालाल रसिकलाल कापड़िया, गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज, बड़ौदा, 1937.
7. गणित सार संग्रह, महावीराचार्य कृत मूल संस्कृत पाठ, प्रो. लक्ष्मीचन्द्र जैन कृत हिन्दी अनुवाद एवं टिप्पण सहित, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर, 1963.
8. गणित सार संग्रह, महावीराचार्य कृत मूल संस्कृत पाठ, एम. रंगाचार्य कृत अंग्रेजी अनुवाद, प्रो. पद्मावथम्मा कृत कन्नड़ अनुवाद एवं टिप्पण सहित, होम्बुज जैन मठ, होम्बुज, 2000.

प्राप्त : जुलाई 2002



## A BRIEF REVIEW OF THE LITERATURE OF JAIN KARMIC THEORY<sup>\*</sup>

■ Ujwala N. Dongaonkar<sup>\*\*</sup>, T.M. Karade<sup>\*\*\*</sup> & L.C. Jain<sup>\*\*\*\*</sup>

### Abstract

*In this paper Karma Theory of Jain School has been exhibited. The theory has fluent at its basis which is further classified into six parts such as bios, matter, space, time, dharma and adharma. There exists an interaction between bios and matter which bounds the bios and in this process the matter involved is called karmic matter and the paramāṇu is designated as karma paramāṇu.*

*The details of participation of karma paramāṇu regarding its contribution and behaviour (subsidence, decay and annihilation) can be highlighted through matrix computation. The mathematical structure so involved of the instant effective bonds and variforms constitute a karmic space of karmas. The matrix so designed can be drawn where the arrangement of karma paramāṇus as IEB and decay of karma paramāṇus as niṣekas can be shown.*

### Introduction

According to Descartes (1556-1650), all sciences which have their investigations concern in order and measure are related to mathematics, it being of small importance whether this measure be sought in numbers, forms, stars, sounds or any other object.

Ancient India has contributed a lot to the development of mathematics and the part played by Jain Scholars in this field is significant. The set-theoretic approach to expose Karma theory is available in several Prākṛta texts. But for a mathematical and symbolic treatment of karma representation and operations, the detailed commentaries of *Gommaṭasāra*, *Labdhisāra* and *Kṣapaṇasāra* from the only available exhaustive material. However, as far as we know, no substantial research on mathematical foundation of Karma theory has been done so far, although the work of Dutt (1992), Singh (1976), Sikdar (1990) and Jain (1995) had been just on the lines of the theory. This article presents the extract of the contribution of Jain school as regards to the mathematical theory of *Karma Paramāṇu*. Our attempt is preliminary towards the formulation

\* Paper presented in First International Conference of New Millenium on History of Mathematics, New Delhi, 20-23 Dec. 2001.

\*\* Garudkhamb Road, Itwari, Nagpur - 2

\*\*\* Einstein Foundation International, Nagpur University, Nagpur.

\*\*\*\* Upstair-Doksha Jewellers, 564, Sarafa, Jabalpur.



of an unified mathematical model to explain biophysical phenomena.

### Survey of Jain Mathematical Karmic Theory

All knowledge can be divided into two main streams : the science of letters (*Akṣaravidyā*) and the science of numbers (*Anikavidyā*). Previous one includes subjects like grammer, literature, logic etc. while the later one includes mathematics, astronomy, science, economics, commerce etc. But as we know and also has been confirmed by the great Jain Mathematics scholar Mahāvīracārya (850 A.D.) that mathematics in general is employed as a tool in all disciplines of knowledge for deriving the coclusion and making it more workable in a precise manner. Looking to the importance of mathematics, Jain literature was divided into four main classes -

1. *Prathamānuyoga* (includes stories, descriptive books, biographies etc.).
2. *Karṇānuyoga* (includes literature on astronomy, mathematics - the science of measurement and calculation etc.).
3. *Carṇānuyoga* (includes the rules followed by saints, sages and 'śravakas etc.).
4. *Dravyānuyoga* (includes the description of fluents like bios, matter etc.).

The development is indicated in the following periods of predominance in the Jain school -

- (a) The period of canonical principle from about 600 B.C. - the period of Vardhamāna Mahāvīra to the 5th century A.D.
- (b) The period of establishment of polyendism (*Anekāntavāda*) and relativism (*Syādvāda*) from the 3rd century A.D. to 8th century A.D.
- (c) The period of establishment of systematic measures (*Pramāṇa*) from the 8th century A.D. to the 17th century A.D.
- (d) The new *Nyāya* period from the 18th century to up-to-date.

The table on next page gives the concept of *Karma* theory in Jain school depicted in more than five lacs of verses.

### Demonstration of Karma Paramāṇu

According to Jain school reality is that which is capable of eternal existence through succession of creation and cessation. Fluent is the ultimate reality and possesses properties (*guṇa*) and mutation (*pariyāya*). The fluent can be classified into six parts such as bios, matter, time, *dharma*, *adharma* and space. The ultimate building block of matter is called *paramāṇu*.

A living organism is based on bios and matter. The interacton between bios and matter is called bond. The bounded matter is called karmic matter and the *paramāṇu* is called *karma paramāṇu*. The bonds between bios and matter are of four types.

## CONCEPT OF KARMA THEORY IN JAINA SCHOOL

Period	Contributor	Work
<b>First Period</b>		
1 <sup>st</sup> century A.D.	<i>Guṇadharācārya</i>	<i>Kaśāyapāhudaṃ</i> .
2 <sup>nd</sup> century A.D.	<i>Puṣpadanātācārya</i> <i>Bhūtabalīcārya</i>	<i>Ṣaṭakhaṇḍāgama</i> including <i>Mahābandha</i>
2 <sup>nd</sup> century A.D.	<i>Kundakundācārya</i>	(a) <i>Parikarma</i> commentary on first three parts of <i>Ṣaṭakhaṇḍāgama</i> in 12000 verses (b) <i>Pancāstikāya</i> in 173 verses.
	<i>Umāswamī</i> <i>Gr̥dhapicchācārya</i>	<i>Tattvārthasūtra</i> in Saṃskṛta.
<b>Second Period</b>		
473 A.D.	<i>Yatīśrabhācārya</i>	(a) <i>Curnisūtra</i> on <i>Kaśāyapāhudaṃ</i> in 7009 verses in Prākṛta. (b) <i>Tīloyapannatti</i> in 5677 Prākṛta verses.
6 <sup>th</sup> century A.D.	<i>Uccaranācārya</i>	<i>Vṛtti</i> on <i>Kaśāyapāhudaṃ</i> in 12000 verses.
	<i>Bappaguru Devācārya</i>	(a) Commentary of <i>Kaśāyapāhudaṃ</i> in Prākṛta (30000 verses). (b) Commentary of <i>Ṣaṭkhaṇḍāgama</i> in Prākṛta (38000 verses).
<b>Third Period</b>		
11 <sup>th</sup> century A.D.	<i>Nemicandrācārya</i> <i>Siddhāntacakravartī</i>	(a) <i>Gommaṭasāra Jivakāṇḍa</i> in Prākṛta (734 verses). (b) <i>Gommaṭasāra Karmakāṇḍa</i> in Prākṛta (972 verses). (c) <i>Labdhisāra</i> with <i>Kṣapaṇasāra</i> in Prākṛta (469 verses). (d) <i>Trilokasāra</i> in Prākṛta (1018 verses).
	<i>Cāmundārāi</i>	The Kannada <i>vṛtti</i> on <i>Gommaṭasāra</i> .
12 <sup>th</sup> century A.D.	<i>Anantavīrya</i>	The <i>Prameyaratnamālā</i> .
	<i>Mādhavācandra Trivaidya</i>	(a) Commentary on <i>Trilokasāra</i> . (b) <i>Prameyaratnasāra</i> .
13 <sup>th</sup> century A.D.	<i>Abhayacandrācārya</i> <i>Siddhāntī</i>	The <i>Mahābodha Prabodhini</i> commentary of <i>Gommaṭasāra</i> .
	<i>Laghu Samantabhadra</i>	The Kannada <i>vṛtti</i> of <i>Gommaṭasāra</i> .
<b>Fourth Period</b>		
1761 A.D.	<i>Toḍarmal Pandita</i>	<i>Gommaṭasāra Jivakāṇḍa - Karmakāṇḍa Bhāṣā Tīkā</i> .
18 <sup>th</sup> century A.D.	<i>Kesava Varṇī</i>	(a) The Kannada <i>vṛtti</i> of <i>Samyajñāna Candrikā</i> . (b) <i>Labdhisāra Bhāṣā Tīkā</i> .

## 1. Configuration Bond (Prakṛti Bandha)

The inherent nature of any fluent is called configuration. For example - the very nature of poisonous serpent is to produce poison in its fangs. The transformation of matter into a bounded matter in the form of functional variforms (kārmic vargaṇā) is called configuration bond. The configurations are of eight types which are further subdivided into 148 types.

### The Eight Configuration of Karma

	Configuration	Function	Example
1	Knowledge screening (Jñānāvarṇīya)	Obstructs the knowledge of bios	The lantern whose glass is blackened does not permit light to pass through it.
2	Perception screening (Darsanāvarṇīya)	Interferes the perception bios	Gate men obstructs to meet the officer.
3	Patheogenation (Vedanīya)	Determines the experience of pleasure and pain	Honey is sweet but it is coated on knife then one cannot enjoy it due to fear of cut of tongue.
4	Captivation (Mohanīya)	Produces delusion i.e. due to action of this karma, bios forgets itself who it is and what are its properties	The man heavily drunk forgets his status.
5	Age (Āyu)	Determines the duration of association of bios with gross body matter	A prisoner cannot get out of the jail before the expiry of the period of his punishment.
6	Genetic Code (Nāma)	Organizes different parts of the body of the bios	The painter draws different types of pictures.
7	Inheritance (Gotra)	Determines family, surroundings, position of the bios for that particular mutation	The potter makes the different types of pots.
8	Incapacitation (Antarāya)	Creates an obstacle in the working of bios	A going car stops due to getting its fuel tank dried.

The set of (bounded) *karma paramāṇus* at an instant in configuration bond is called instant effective bond (IEB) (*samayaprabaddha*) and its minimum and maximum values are as under :

Maximum Value = Number of emancipated bios x a

Minimum Value =  $\frac{\text{Number of bounded bios}}{a}$

where 'a' is some large number.

As the elements in the set of emancipated bios are changing with time, we say that the set of IEB is variable.

## 2. Point bond (*Pradesa Bandha*)

In the set of binding of karmic matter with bios the point bond decides how many points of space be occupied by this karmic matter.

## 3. Recoil Energy bond (*Anubhāga Bandha*)

It deals with the energy imparted to the karmic matter. The energy possessed by karmic matter is responsible for giving results (*phala*).

## 4. Life Time bond (*Stithi Bandha*)

The life time bond is the time period for which the matter is bounded with bios.

In addition, we need some more information about *karma paramāṇus* which now we mention as under.

### Rise

When the *karma paramāṇus* are in bounded state, they possess activation energy, but they cannot utilize that energy in this state. But when the life time bond is finished, the bounded *karma paramāṇus* becomes free to utilize their energy. We can understand this by taking simple example of any configuration e.g. knowledge screening *karma paramāṇus* will obstruct the knowledge of bios. This process is called rise of *karma paramāṇus*.

### Time Lag Period

When the *karma paramāṇus* are in bonded state, their inherent energy require some specific time depending upon the configuration and the period is termed as time lag period after which the desired effect of energies are seen.

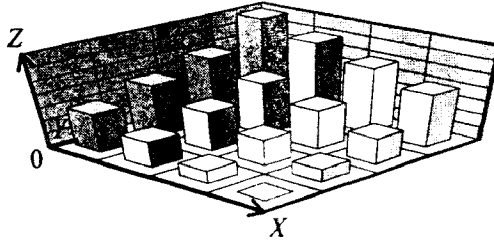
### Niseka

*Niseka* is the group of *karma paramāṇus* which rise in one instant. It forms a particular system as if they are cells in the body which are created,

existed for some time and decayed in course of time. Each *niṣeka* contains eight types of *karma paramāṇus*.

### Graphic Representation of *Niṣeka*

The position of any *niṣeka* can be represented graphically. Let time be taken on X-axis and number of *niṣekas* as mass number equipped with recoil energy on Y-axis, the Z-axis be taken as configuration axis. The 3-dimensional space so formed is considered as *kārmic* space or *karmas*. The position of *niṣeka* is represented by  $N^{ijk}$ , where i represents instants (time unit), j the mass number and k the configuration (*prakṛti*).



We observe that since there is decay of *niṣekas*, the mass number on Y-axis decreases with time as a step function.

### Matrix Representation

The *karma paramāṇus* which posses least amount of energy is called indivisible corresponding section (*Avibhāgi praticcheda*) for short ICS. The class of *karma paramāṇus* possessing same number of ICS is called variform (*vargaṇā*). A minimum variform is one which has least number of ICS. The set having one more ICS then minimum variform is called second variform. In this way the sequence of the variforms is increasing, the number of ICS increases in arithmetic progression with common difference one. The group of such variforms is known as minimum supervariforms (*spardhaka*). The number of ICS in the next variforms increases by two and the group will form the second supervariform with common difference two. Similarly for third supervariform the common difference will be four. In general for the  $n^{\text{th}}$  supoervariform common difference will be  $2^{n-1}$ . The set of supervariforms is a geometric regression and the geometric regression length is the number of supervariforms.

The *karma* matrix whose elements are *karma paramāṇus*, has w rows and s columns, where w stands for number of instants and s for the number of supervariforms. The matrix of the first geometric regression assumes the form :

$$\begin{bmatrix} v[2w(s-1) - 1]d & .... & v - (2w-1)d & v - (w-1)d \\ .... & .... & .... & .... \\ .... & .... & .... & .... \\ v - [w(s-1) + 1]d & .... & v - (w+1)d & v - d \\ v - w(s-1)d & .... & v - wd & v \end{bmatrix}$$

If we denote the elements in the  $i^{\text{th}}$  row and  $j^{\text{th}}$  column by the symbol  $a_{ij}$ , then

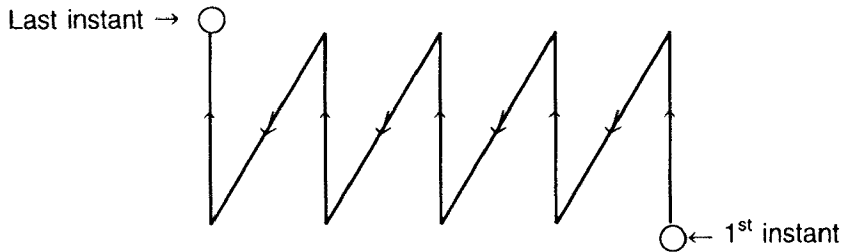
$a_{ws} = v$ , the number of *karma paramāṇus* decayed in the 1<sup>st</sup> instant.

$a_{w-1, s} = v - d$ , the number of *karma paramāṇus* decayed in the 2<sup>nd</sup> instant.

.....

$a_{11} = v[2w(s-1) - 1]d$ , the number of *karma paramāṇus* decayed in the last instant.

The decay of *karma paramāṇus* is indicated in the following representation.



The matrix of the second geometric regression is -

$$\begin{bmatrix} v/2[2w(s-1) - 1]d/2 & .... & v/2 - (2w-1)d/2 & v/2 - (w-1)d/2 \\ .... & .... & .... & .... \\ .... & .... & .... & .... \\ .... & .... & .... & v/2 - d/2 \\ v/2 - w(s-1)d/2 & .... & v/2 - wd/2 & v/2 \end{bmatrix}$$

Similarly we can constitute different matrices of different geometric regressions. In general for  $n^{\text{th}}$  geometric regression the matrix can be written as -

$$\left[ \begin{array}{ccc} v/2^n - 1 - [2w(s-1) - 1]d/2^n - 1 & \dots & v/2^n - 1 - (w-1)d/2^n - 1 \\ \dots & \dots & \dots \\ \dots & \dots & \dots \\ \dots & \dots & \dots \\ v/2^n - 1 - w(s-1)d/2^n - 1 & \dots & v/2^n - 1 \end{array} \right]$$

We give an example from *Todarmal Artha Samidr̥ṣṭi* page 231 (c), where  $v = 6300$ ,  $w = 8$  and  $s = 1$ .

We consider the  $n$  geometric regression matrix i.e.,  $n = 6$ .

The matrix is expressed as

No. of Geometric Regression -	6 <sup>th</sup>	5 <sup>th</sup>	4 <sup>th</sup>	3 <sup>rd</sup>	2 <sup>nd</sup>	1 <sup>st</sup>
No. of Instant						
8	9	18	36	72	144	288
7	10	20	40	80	160	320
6	11	22	44	88	176	352
5	12	24	48	96	192	384
4	13	26	52	104	208	416
3	14	28	56	112	224	448
2	15	30	60	120	240	480
1	16	32	64	128	256	512
Total	100	200	400	800	1600	3200

The sum of all the entries of the matrix comes out to be 6300.

### Explanation

- Total *karma paramāṇus* of the last column

$$= \frac{v}{2^n - 1} = \frac{6300}{2^6 - 1} = \frac{6300}{63} = 100.$$

Therefore the number of *karma paramāṇus* in last i.e., 6<sup>th</sup> geometric regression will be 100.

- Double this value and repeat the process to achieve the number of *karma paramāṇus* in 5<sup>th</sup>, 4<sup>th</sup> and other geometric regressions.

Hence the total *karma paramāṇus* in

5<sup>th</sup> geometric regression : 200.

4<sup>th</sup> geometric regression : 400.

- 3<sup>rd</sup> geometric regression : 800.  
 2<sup>nd</sup> geometric regression : 1600.  
 1<sup>st</sup> geometric regression : 3200.

■ To find a common difference, we apply the formula -

$$\text{common difference} = \frac{2 (\text{Total quantity in geometric regression})}{(3 \times \text{geometric regression length} + 1) \cdot \text{geometric regression length}}$$

For the 1<sup>st</sup> geometric regression, we have

$$d = \frac{2 (3200)}{(3 \times 8 + 1) 8} = 32$$

The number of *karma paramāṇu* decayed in the 1<sup>st</sup> instant in this geometric regression is given by the formula :

Number of *karma paramāṇu*s = common difference  $\times 2 \times$  geometric regression length

$$\text{Therefore the number of } \textit{karma paramāṇu}\text{s decayed in the 1}^{\text{st}} \text{ instant} \\ = 32 \times 2 \times 8 = 512$$

which is the element in the 8<sup>th</sup> row and the 6<sup>th</sup> column.

The other numbers are computed by subtracting common difference 32 from 512 step by step, i.e.  $512 - 32 = 480$   
 $480 - 32 = 448$ .

Similarly, for second geometric regression, we have

$$d = \frac{2 (1600)}{(3 \times 8 + 1) 8} = 16$$

$$\therefore d = 16.$$

And the number of *karma paramāṇu*s decayed in the 1<sup>st</sup> instant in this geometric regression is given by  $16 \times 2 \times 8 = 256$ , which is the element of the matrix in the 8<sup>th</sup> row and the 5<sup>th</sup> column. The other members are calculated by subtracting the common difference 16 from 256 and so on i.e.  $256 - 16 = 240$ ,  $240 - 16 = 224$ , .....

Similarly the remaining elements of the matrix are calculated.

## References

1. Gandhi N.V., *Gommaṭasāra Karmakāṇḍa* of Nemicandra *Siddhānta Cakravartī*, N.V. Gandhi Publisher, 1939.
2. Varni Jinendra, *Jainendra Siddhānta Kosa*, *Bhārtiya Jñānapīṭha Prakāśhan*, New Delhi, 1944.
3. Jain, L.C., *Tao of Jain Sciences*, Arihanta International, New Delhi, 1992.



## कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर का प्रकल्प

### सन्दर्भ ग्रन्थालय

आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दि महोत्सव वर्ष के सन्दर्भ में 1987 में स्थापित कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने एक महत्वपूर्ण प्रकल्प के रूप में भारतीय विद्याओं, विशेषतः जैन विद्याओं, के अध्येताओं की सुविधा हेतु देश के मध्य में अवस्थित इन्दौर नगर में एक सर्वांगपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थालय की स्थापना का निश्चय किया।

हमारी योजना है कि आधुनिक रीति से दशमिक पद्धति से वर्गीकृत किये गये इस पुस्तकालय में जैन विद्या के किसी भी क्षेत्र में कार्य करने वाले अध्येताओं को सभी सम्बद्ध ग्रन्थ/शोध पत्र एक ही स्थल पर उपलब्ध हो जायें। हम यहाँ जैन विद्याओं से सम्बद्ध विभिन्न विषयों पर होने वाले शोध के सन्दर्भ में समस्त सूचनाएँ अद्यतन उपलब्ध कराना चाहते हैं। इससे जैन विद्याओं के शोध में रुचि रखने वालों को प्रथम चरण में ही हतोत्साहित होने एवं पुनरावृत्ति को रोका जा सकेगा।

केवल इतना ही नहीं, हमारी योजना दुर्लभ पांडुलिपियों की खोज, मूल अथवा उसकी छाया प्रतियों/माइक्रो फिल्मों के संकलन की भी है। इन विचारों को मूर्तरूप देने हेतु दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर पर नवीन पुस्तकालय भवन का निर्माण किया गया है। 31 दिसम्बर 2001 तक पुस्तकालय में 9250 महत्वपूर्ण ग्रन्थ एवं 1167 पांडुलिपियों का संकलन हो चुका है। जिसमें अनेक दुर्लभ ग्रन्थों की फोटो प्रतियाँ भी सम्मिलित हैं। अब उपलब्ध पुस्तकों की समस्त जानकारी कम्प्यूटर पर भी उपलब्ध है। फलतः किसी भी पुस्तक को क्षण मात्र में ही प्राप्त किया जा सकता है। हमारे पुस्तकालय में लगभग 350 पत्र-पत्रिकाएँ भी नियमित रूप से आती हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं।

आपसे अनुरोध है कि —

- संस्थाओंसे : 1. अपनी संस्था के प्रकाशनों की 1-1 प्रति पुस्तकालय को प्रेषित करें।  
लेखकों से : 2. अपनी कृतियों (पुस्तकों/लेखों) की सूची प्रेषित करें, जिससे उनको पुस्तकालय में उपलब्ध किया जा सके।  
3. जैन विद्या के क्षेत्र में होने वाली नवीनतम शोधों की सूचनाएँ प्रेषित करें।

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम परिसर में ही अमर ग्रन्थालय के अन्तर्गत पुस्तक विक्रय केन्द्र की स्थापना की गई है। सन्दर्भ ग्रन्थालय में प्राप्त होने वाली कृतियों का प्रकाशकों के अनुरोध पर बिक्री केन्द्र पर बिक्री की जाने वाली पुस्तकों की नमूना प्रति के रूप में उपयोग किया जा सकेगा। आवश्यकतानुसार नमूना प्रति के आधार पर अधिक प्रतियों के आर्डर दिये जायेंगे।

प्रकाशित जैन साहित्य के सूचीकरण की परियोजना भी यहीं संचालित होने के कारण पाठकों को बहुत सी सूचनाएँ यहाँ सहज उपलब्ध हैं।

देवकुमारसिंह कासलीवाल  
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन  
मानद सचिव



## ĀCĀRYA VĪRASENA AND HIS MATHEMATICAL CONTRIBUTION

■ Mrs. Pragati Jain \* & Dr. Anupam Jain\*\*

Jainism, an ancient religion, is well known for its excellent culture, tradition and heritage. The contribution of Jainas is not confined to literature alone, but has also extended to the science in general and mathematics in particular. There is a rich tradition of mathematics among Jainas. Many Jaina *Ācāryas* / scholars contributed a lot in the field of mathematics. *Ācārya Śrīdhara*, *Ācārya Mahāvīra*, *Śrīha Tilakasūri* and *Thakkarapheru* are few names who had independently written mathematical texts. There are many other *Jainacāryas* who are basically philosophers but their texts contain enough mathematical knowledge. The names of *Ācārya Yativraṣabha*, *Vīrasena*, *Nemīcandra*, *Mādhavacandra* and *Pt. Todarmala* can be included in this list.

*Ācārya Vīrasena* is one of them whose name came on the top in the list of philosopher mathematicians. His famous book is *Dhavalā Tīkā* (commentary on *Śaṭkhaṇḍāgama* of Puṣpadanta and Bhutabali) written in the beginning of ninth century A.D. It is a text of first rate importance and treated as *Āgama* in Jaina community especially in Digambara sect. It is more clear by the statement written by A.N. Singh<sup>1</sup>:

**‘The Dhavalā becomes a work of first rate importance to the historian of Indian Mathematics, as it supplies informations about the darkest period of history of Indian Mathematics - the period preceding the fifth century A.D.’**

The above statement inspired me to go through the valuable commentary. This voluminous commentary first published by Jaina Sahityodharak Fund, Vidisha, Amravati and then by Jaina Sanskriti Samrakshak Sangh, Solapur under the editorship of Dr. H.L. Jain and A.N. Upadhye in sixteen volumes. It is an important source of mathematical informations of the dark period of Indian Mathematics i.e. 500 B.C. to 500 A.D.

As per the information available in different Jaina texts, four more commentaries has been written on ‘*The Śaṭkhaṇḍāgama*’, before Vīrasena by Kundakunda, Sāmakunda, Tumbulūra and Bappadeva. All these commentaries had been used by Vīrasena in the process of writing the *Dhavalā* commentary.

\* Asst. Professor - Mathematics, I.L.V.A. Commerce & Science College, Indore.

\*\* Department of Mathematics, Holkar Autonomous Science College, Indore - 452 009

No doubt, Virasena had a lot of mathematical intelligence but they had definitely used the mathematical knowledge contained in the previous commentaries and the mathematical texts of Jain tradition available at that time. It is clear by the references of *Pariyamma Suttam* and other mathematical texts.<sup>2</sup> Certainly Virasena is not a mathematician. He was a philosopher and religious divine. He was a religious saint and *Ācārya* of Digambara Jain tradition. He had written 72,000 *slokas (gāthās)* for *Dhavaṭṭa* and 20,000 *slokas* of *Jaya-Dhavaṭṭa* commentary which is completed by his pupil *Ācārya Jinasena*.

As per information available in the ending lines of *Uttara Purāṇa*, one more commentary of the book entitled *Siddha-Bhūpaddhati* was written by *Ācārya Virasena*. But at present it is not available. I am just quoting one verse of *Uttara Purāṇa* -

सिद्धिभूपद्धतिं यस्य टीकां संवीक्ष्य भिक्षुभिः।  
टीक्यते हेलयान्येषां विषमापि पदे पदे॥<sup>3</sup>

That means *Siddha Bhūpaddhati* is a text which is very difficult and Virasena has written this commentary to facilitate the study.

Now we give some details of the mathematical material available in *Dhavaṭṭa* as follows :-

### Decimal Place Value System of Notation

Method of Place Value Notation is found in Jain canonical literature and at some places in *Gaṇita-sāra-saṁgraha*.<sup>4</sup>

For example :

7999998 is expressed as a number which has 7 in the beginning, 8 at the end and 9 repeated 5 times in between.<sup>5</sup>

Some other methods are also found to represent the number in the form of digits like, 46666664 is expressed as sixty-four, six hundreds, sixty-six thousands, sixty-six hundred-thousands and four kotis.<sup>6</sup>

22799498 is expressed as two kotis, twenty-seven, ninety-nine thousands, four and ninety eight.<sup>7</sup>

### Fundamental Operations

All the fundamental operations-addition, subtraction, division, multiplication, extraction of square, cube, square-root and cube-roots, the raising of numbers to the given number, etc. are mentioned both with respect to integers and fractions. Some examples are -

$$\begin{array}{ll} 1^{\text{st}} \text{ square of 'a'} & = a^2 \\ 2^{\text{nd}} \text{ square of 'a'} & = a^{2^2} \end{array}$$

$$3^{\text{rd}} \text{ square of 'a'} = a^{2^3}$$

$$\text{Similarly, } n^{\text{th}} \text{ square of 'a'} = a^{2^n}$$

Now square - roots :

$$1^{\text{st}} \text{ square - root of 'a'} = a^{1/2} = a^{1/2}$$

$$2^{\text{nd}} \text{ square - root of 'a'} = a^{1/2^2} = a^{1/4}$$

$$3^{\text{rd}} \text{ square - root of 'a'} = a^{1/2^3} = a^{1/8}$$

$$\text{Similarly, } n^{\text{th}} \text{ square - root of 'a'} = a^{1/2^n} = a^{1/2^n}$$

Cube and Cube - roots :

$$\text{Cube of cube of 'a'} = (a^3)^3 = a^9$$

$$\text{Square - root of cube of 'a'} = (a^3)^{1/2} = a^{3/2}$$

### Law of Indices

From the above examples and other material available, *Ācārya Vīrasena* was fully conversant with the laws of Indices :

$$a^m \times a^n = a^{m+n}$$

$$a^m \div a^n = a^{m-n}$$

$$(a^m)^n = a^{mn}$$

Another example is

$$2^{2^7} \div 2^{2^6} = 2^{2^6}$$

which means 7<sup>th</sup> varga of 2 divided by 6<sup>th</sup> varga of 2 gives the 6<sup>th</sup> varga of 2.

### Vargita - Samivargita

There is a great contribution of *Ācārya Vīrasena* to give the method of *Vargita - Samivargita* in process of expressing big numbers. This method has been used for raising of a number to its own power. For example :

$$1^{\text{st}} \text{ Vargita - Samivargita of 2} = \bar{2}I^1 = 2^2 = 4$$

$$2^{\text{nd}} \text{ Vargita - Samivargita of 2} = \bar{2}I^2 = [2^2]^{[2^2]} = 4^4$$

$$3^{\text{rd}} \text{ Vargita - Samivargita of 2} = \bar{2}I^3 = [4^4]^{[4^4]} = 256^{256}$$

This method is very easy to express the big number 256<sup>256</sup>.

In connection with this in *Dhavaṭā*, there is one another operation called

'*Viralana-deya*' means 'Spread and Give'.

The *Viralana* means the separating of a number into its unities.

*Deya* means the substitution of 'n' in place of 1.

Example :

Viralana of 'n' is

1,1,1,1,.....n times.

*Vargita-Samvargita* of 'n' is obtained by multiplying together the n's obtained by the *viralana-deya*. For example :

*Vargita-Samvargita* of '3' is :  $3.3.3 = 3^3 = 27$

### Logarithms

The terms used in *Dhavalā* for  $\log_2$ ,  $\log_3$ ,  $\log_4$ , and  $\log_2 \log_2$  are *Arddhaccheda*, *Trikaccheda*, *Caturthaccheda* and *Vargaśalaka* respectively. Also these terms are well defined.

**Arddhaccheda**<sup>8</sup> : It is denoted by  $A_c$ . *Arddhaccheda* of a number is equal to the number of times that it can be divisible by 2.

For example : 32 is divisible by 2 in 5 times, hence *Arddhaccheda* of 32 is 5.

$$\log_2 32 = 5$$

**Trikaccheda**<sup>9</sup> : *Trikaccheda* of a number is equal to the number of times that it can be divided by 3.

For example : 81 is divided by 3 only 4 times, thus *Trikaccheda* of 81 is 4.

$$\log_3 81 = 4$$

**Caturthaccheda**<sup>10</sup> : *Caturthaccheda* of a number is the number of times that it can be divided by 4 e.g. 256 can be divided by 4 in 4 times, hence *caturthaccheda* of 256 is 4 i.e.

$$\log_4 256 = 4$$

The results related to logarithms in *Dhavalā* can be written in a modern way as follows :

(i)<sup>11</sup>  $\log m/n = \log m - \log n$

(ii)<sup>12</sup>  $\log (m.n) = \log m + \log n$

(iii)<sup>13</sup>  $\log_2 2^m = m$

(iv)<sup>14</sup>  $\log (x^x)^2 = 2 \times \log x$

$$(v)^{15} \quad \log \log (x^x)^2 = \log x + 1 + \log \log x$$

$$(vi)^{16} \quad \log (x^x)^{x^x} = x^x \log x^x$$

In *Dhavaṭā* we find that theory of logarithms are mentioned to the base 2, 3 and 4. Of course, the operations with base 10 and exponential are not available.

**Fractions** : Sufficient material is available in *Dhavaṭā* on fractions. But these are not found in any known contemporary mathematical work. All these material is present in *gāthās*. Converting these *gāthās* into mathematical work, we get following results -

$$1.^{17} \quad \frac{n^2}{n \pm (n/p)} = n \pm \frac{n}{p \pm 1}$$

$$\text{For example} \quad (1) \quad \frac{1}{1 + (1/2)} = \frac{2}{3} = 1 - \frac{1}{3}$$

$$(2) \quad \frac{1}{1 - (1/3)} = \frac{3}{2} = 1 + \frac{1}{2}$$

2.<sup>18</sup> Let a number  $m$  be divided by the divisors  $d$  and  $d^1$ , and let  $q$  and  $q^1$  be the quotients, then the following formula gives the result when  $m$  is divided by  $d \pm d^1$  :

$$\frac{m}{d \pm d^1} = \frac{q^1}{(q^1/q) \pm 1}$$

$$= \frac{q}{1 \pm (q/q^1)}$$

$$3.^{19} \quad \text{If} \quad \frac{m}{d} = q \text{ and } \frac{m^1}{d} = q^1$$

$$\text{Then} \quad d(q - q^1) + m^1 = m.$$

$$4.^{20} \quad \text{If} \quad \frac{a}{b} = q$$

$$\text{Then} \quad \frac{a}{b + b/n} = q - \frac{q}{n + 1}$$

$$\text{and} \quad \frac{a}{b - b/n} = q + \frac{q}{n - 1}$$

- 5.<sup>21</sup> If  $\frac{a}{b} = q$   
 Then  $\frac{a}{b+c} = q - \frac{q}{b/c + 1}$   
 and  $\frac{a}{b-c} = q + \frac{q}{b/c - 1}$
- 6.<sup>22</sup> If  $\frac{a}{b} = q, \quad \frac{a}{b^1} = q + c$   
 Then  $b^1 = b - \frac{b}{q/c + 1}$   
 and if  $\frac{a}{b} = q - c$   
 Then  $b^1 = b + \frac{b}{q/c - 1}$
- 7.<sup>23</sup> If  $\frac{a}{b} = q, \text{ and } \frac{a}{b^1} \text{ is another fraction}$   
 Then  $\frac{a}{b} - \frac{a}{b^1} = q \frac{b^1 - b}{b^1}$
- 8.<sup>24</sup> If  $\frac{a}{b} = q, \quad \frac{a}{b+x} = q - c$   
 Then  $x = \frac{bc}{q - c}$
- 9.<sup>25</sup> If  $\frac{a}{b} = q, \quad \frac{a}{b-x} = q + c$   
 Then  $x = \frac{bc}{q + c}$
10. If  $\frac{a}{b} = q, \quad \frac{a}{b+c} = q^1$   
 Then  $q^1 = q - \frac{qc}{b+c}$
11. If  $\frac{a}{b} = q, \quad \frac{a}{b-c} = q^1$   
 Then  $q^1 = q + \frac{qc}{b-c}$

Such complicated operations on fractions indicate the great interest of *Jainācāryas* in mathematics.

But the modern mathematics give honour to the Italian Mathematician Pietro Antonio Cataldi (1548 - 1616 A.D.) for the development of continued fractions. But the availability of continued fraction in *Dhavalā Tikā* <sup>26</sup> rejects the above statement.

Some Geometric Formulas are also available in *Dhavalā* of *Virasena*.<sup>27</sup>

### Rate of Increase

It is used for calculating the length of a horizontal section of a trapezoid. This also occurs in the Jaina cosmography as a vertical section of the lower and the upper worlds.

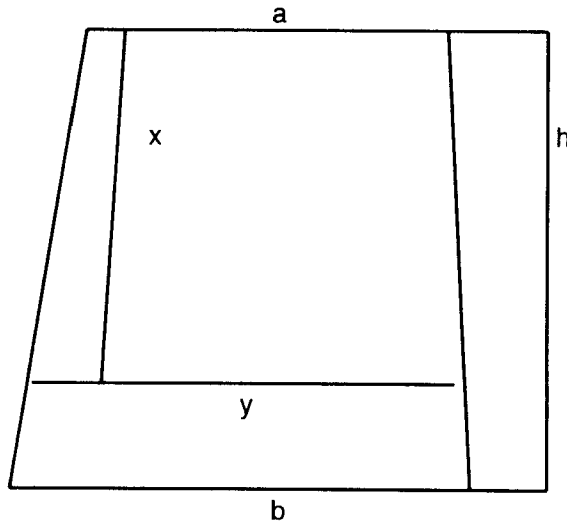
Suppose the rate of increase is 'r' and let the top, the base and the height of a trapezoid be 'a', 'b' and 'h' respectively, then the rate will be

$$r = \frac{b-a}{h}$$

<sup>28</sup> If this rate of increase be multiplied by an optional number 'x' and increased by the top, it becomes the fruit 'y',

$$y = rx + a$$

This is an 'adapted formula'.



### Volume of a Trapezoidal Prism

It is given by an 'adapted formula'<sup>29</sup> -

$$V = \frac{a+b}{2} \times 7^2 + \frac{b+m}{2} \times 7^2 \text{ cubic rajju.}$$



That means when a trapezoid cut in half the base 'a' and the middle line 'm', both increased by the top 'b', multiplied the result by the square of seven and made them into one, there will be the volume of the world in cubic rajjus.

### Volume of Cylindrical Spaces

Let 'V' and 'h' are respectively the volume and height of a cylinder and 'd', 'c' and 'A' are respectively the diameter, the circumference and the area of its base. Then the formula for the volume which taken for granted by Vīrasena<sup>30</sup> is

$$V = Ah \text{ where } A = 3 \left( \frac{d}{2} \right)^2$$

Also 
$$A = c \cdot \frac{d}{4}$$

The first formula for area is cited in a different wording as a formula of 'practical' nature as against 'exact'.<sup>31</sup>

The Jaina mathematician Mahāvīra also prescribes it in a section for geometrical formulas of 'practical' nature of his *Gaṇitasārasaṃgraha*.

The second formula and its variation,  $A.(c/2).(d/2)$  has been used in India since at least the times of *Umāsvatī*.<sup>32</sup>

### Circumference of a circle

There are two formulas for the circumference of a circle given by Vīrasena,

$$C = \sqrt{10d^2}$$

$$C = 3d + \frac{16d + 16}{113} = \frac{355d + 16}{113}$$

The second formula will be more accurate than the first one.<sup>33</sup>

Vīrasena also uses the formula (in addition to above) -

$$C = 3d + \frac{16d}{113}$$

$$C = \frac{355}{113} d$$

Thus, Vīrasena uses the three approximations for  $\pi$  which is 3,  $\sqrt{10}$  and  $\frac{355}{113}$ .

The first value is for the area and the rest values for the circumference.

## Approximate Volumes of Irregular Solids

The volume of the fields occupied by various *jīvas* living outside *Svayamprabhā* mountain and having two to five sense organs, are given an approximate calculation. The 'depth' (*ogāhaṇa*) or the height of each creature is stipulated in the following verse, and the other sizes are given by Vīrasena in his calculation of each volume.<sup>34</sup>

*sanikho puṇa bāraha jovaṇāṇi gomhī bhava tikosaṁ tu*  
*Bhamaro joyaṇam egaṁ maccho puṇa joyaṇasahassoll*

### (1) A bee (bhamara) : Approximation by a semi-cylinder<sup>35</sup>

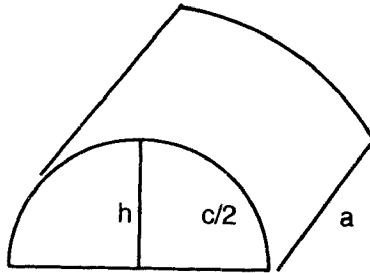
If the length of the field of a bee = a = 1 yojana  
 height = h = 1/2 yojana  
 and circumference = c/2 = 1/2 yojana

then the formula for calculating the field of a bee, given by Vīrasena is -

$$V = \frac{c/2}{2} \times h \times a = \frac{3}{8} \text{ utsedha yojana}^3.$$

where a = 1, h = 1/2, c/2 =  $\pi \times 1/2 = 3/2$  (with  $\pi = 3$ ).

It is interesting that for the circumference and the area of a circle, the value of  $\pi$  is taken as 3.



Semi-cylindrical field occupied by a bee

### (2) A centipede (gomhi) : Approximation by a rectangular solid.<sup>36</sup>

When the length 'a' of a centipede is three forth of an *utsedha yojana*, the width 'b', one-eighth of 'a' and the thickness 'h', half of the width, all these are multiplied mutually, a countable number 'nth' part of a cubic *utsedha-yojana* is obtained.

$$V = abh = \frac{3}{4} \cdot \frac{3}{32} \cdot \frac{3}{64} \\ = \frac{27}{8192} = \frac{1}{n} \text{ utsedha-yojana}^3.$$

where 'n' is a countable number.<sup>37</sup>

**(3) A conch-shell (samkha) : Approximation by an irregular cone**

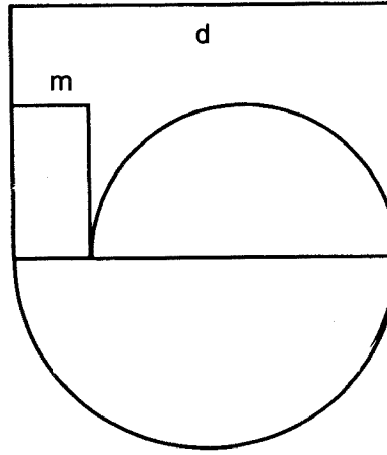
If 'A' be the area of the field of a conch-shell, length be 'a' (=12 yojanas), whose mouth be 'm' (=4 yojanas), diametere be 'd', 'h' be its height, then volume of the field will be -

$$V = A \times \left( \frac{h-m+h}{4} \right) \quad \text{utsedha-yojana}^3$$

where

$$A = \left[ d^2 - \frac{m}{2} + \left( \frac{m}{2} \right)^2 \right] \times 2 \div 4$$

The meaning of  $\frac{h-m+h}{4}$  is not known, but it is perhaps a modified height.



**Conch-shell like plane figure**

But the result given by Mahāvīra<sup>38</sup> is more accurate area of a conch-shell like figure. He used  $\sqrt{10}$  for  $\pi$ .

$$A = \sqrt{10} \left[ \left( \frac{d-m/2}{2} \right)^2 + \left( \frac{m}{4} \right)^2 \right]$$

**(4) A fish (maccha) : Approximation either by an elliptic cylinder or by a rectangular solid<sup>39</sup>**

Let the length of the field of a fish be 'a', height be 'h' and width be 'b', where a = 1000 yojanas, h = 500 yojanas and b = 250 yojanas. Then the volume will be -

$$V = n \text{ pramāṇa} - \text{aṅgula}^3$$

where n is a countable number.

According to Digambara table of measures -

$$1 \text{ utsedha-yojana}^3 = 15363 \text{ pramāṇa} - \text{anigulas}^3$$

### Progression :

Virasena also uses the formula for the sum of a finite geometric progression :-

$$S(n) = a + ar + ar^2 + ar^3 + \dots + ar^{n-1} = \frac{a(r^n - 1)}{r - 1}$$

Above formula is used in his computation of the number of the heavenly bodies<sup>40</sup> and the areas of the cocentric islands and oceans.

Another derivation of the same formula is -

$$\begin{aligned} S &= a + \frac{a}{p} + \frac{a}{p^2} + \dots + \langle 0 \rangle \\ pS &= ap + \left[ a + \frac{a}{p} + \frac{a}{p^2} + \dots + \langle 0 \rangle \right] \\ &= ap + S \end{aligned}$$

In the above expression  $\langle 0 \rangle$  indicates a 'space point' (*agasa-pradeśa*). This notation is clearly seen in Virasena's expression of the 'thickness' of a plane figure.

In the previous lines we have given some descriptions of the mathematical excellence of Virasena. Of course all these are available in the *Dhavalā* commentary, not only it, but a lot of more mathematical material is available in *Dhavalā*. On the basis of it, I can say that *Dhavalā* is a book of first rate importance of the historian of mathematics and more systematic & deeper study is essential from the mathematical point of view.

### References :

1. 'Mathematics in Dhavalā', Dhavalā-IV, p. 4, Sholapur, 1984.
2. (a) Anupam Jain, 'Katipaya Ajñāta Jaina Gaṇita Grantha', *Gaṇita Bhāratī*, 4(3-4), (Delhi), 1981, pp. 61-71.  
(b) 'Jaina Gaṇitīya Sahitya', Arhat Vacana (indore), 1(1), September, 1988.
3. See ref. 1.
4. 'Gaṇita-sāra-saṅgraha' by Mahāvīra, 1963 with a Hindi translation by L.C. Jain, Solapur, Ch. - 1, 63-68.
5. *Dhavalā*-III, p. 98, quoted verse 51, cf. *Gomnata-sāra-Jivakānda*, pp. 633. ('Satakhandāgama, *Dhavalā Tīkā*' by Ācārya Virasena, Ed.-Dr. Hiralal Jain, Part : 1-16, Amravati, Solapur etc. 1939-59).
6. Ibid, p. 99, quoted verse 52.
7. Ibid, p. 99, quoted verse 53.
8. Ibid, p. 56.

9. Ibid, p. 56.
10. Ibid, p. 56.
11. Ibid, p. 60.
12. Ibid, p. 60.
13. Ibid, p. 85.
14. Ibid, p. 21.
15. Ibid, p. 21.
16. Ibid, p. 21-24.
17. Ibid, p. 46.
18. Ibid, p. 47.
19. Ibid, p. 46.
20. Ibid, p. 46.
21. Ibid, p. 46.
22. Ibid, p. 46.
23. Ibid, p. 46.
24. Ibid, p. 48.
25. Ibid, p. 49.
26. Ibid, p. 45-46.
27. Geometric Formulas in the *Dhavaṭā* of *Virasena*. By Takao Hayashi, *Jinamanjari (Canada)*, 14 (2), 1996, pp. 53-76.
28. *Dhavaṭā*, vol. 4, p. 57.
29. *Dhavaṭā*, vol. 4, p. 146.
30. Ibid, p. 209.
31. By Bhāskara - I in his commentary on Āryabhaṭīya.
32. *Tattvārthādhigamaśūtrabhāṣya*, 3-11, 5th century A.D.
33. *Dhavaṭā*, vol. 4, p. 221-222.
34. Stanza 12 in *Dhavaṭā*-IV, p.33.
35. *Dhavaṭā*-IV, p. 34.
36. Ibid, p. 34-35.
36. *Dhavaṭā*-III, p. 11-26.
38. *Gaṇita-sāra-Saṁgraha*, 7.65-66.
39. *Dhavaṭā*-IV, p. 36.
40. Ibid, p. 150-159.



# KD Theory of Time and Consciousness

■ Dilip Suraana \*

I start this paper with a very general idea.....that of Time Machine.

The concept of time machine is as open as it ever was. Can one travel back in the past (or for that matter transport into future)? Well, some say yes, it is possible, but they do not have any means to justify it. Some say no, as, if it is yes then you would be able to prevent your own birth. Logically correct it seems.<sup>1</sup>

Actually past of the future is always present. And this aptly represents the truth. It has to be explored further - how?

It is possible to know the past as well as the future as both these are present in a relevant sense. One cannot say that the past does not exist nor can one deny the existence of the future. If the three altogether exist then the first solution first premise is the one to get the support. But at the same time I would say one cannot see the time as it has no form. If one has to know time in the sense of physical knowledge then the answer must be no as we can neither touch nor hear nor taste nor smell nor see the time. None of our senses are capable of knowing time in that sense.

Taking the first hypothesis first, if one exists then one must be able to locate it and may be see it. No existence can be there without a location and an existence is always knowable. We see shapes but we cannot see existence. Which has no shape cannot be seen either. Time has no shape even though it is relevant to space which has a shape. It must then be somewhere.

The effort is to be directed to find that somewhere.

The universe is grandest not finite but infinite. So the past and future must exist within this infinite. Infinite past has been there and infinite future would be there. Both these infinities should co-exist in the infinite universe along with the finite present.

How to locate it?

If we do not know what the past is or the future is then we cannot locate it. First we have to know this. Even if we know it today we may

be unsuccessful in locating it. But that is immaterial as one time in future will enable us to locate the existence if in the present one has that basis of knowledge.

What then is the past or future (or for that matter what present is) ?

These are components of infinite time - one is the front and the other reverse (as seen from one end - may be reversed if seen from the other end as present is the future of past) and in between the two faces the present - finite present is there. Past and future in one sense to not exist at all. Only the present does.

What then the time is ?

Time is an Eml.

I feel no word exists as Eml in science vocabulary and I have used it in that way to denote and describe what in one word I would not have been able to do.

Eml is a matter or characteristics or subject or existence or shape or anything like that consisting of one or more of these.

The Eml is not necessarily a visible entity. It may be invisible - not subject to any of the senses.

But the Eml is necessarily amenable to knowledge.

Take a person's knowledge for instance - it exists but one cannot see it not even in his brain - even then it is there. All the parts of brain are exactly the same just one second after a person's death but it does not work - why? Only because the knowledge is not brain nor any of its parts - neurons etc. It is something different which makes the difference of one second most vital. The knowledge has left the body, so it won't work any more. It existed but one could not see it - Yes one has always known it. Knowledge knows. But knowledge is not Eml.

Similarly Eml exists - one may not see it but one can know it. The knowledge of Eml is always possible. But knowledge does not necessarily includes seeing. If one can see then in theoretical situation one can interfere with it. Since we cannot see time we cannot interfere with it or since we cannot interfere with time we cannot see it. We can know a happening if our speed is more than the speed of time which is not equivalent to speed of light but more. Time is not relevant to light, but light can be adjudged in terms of speed only with regard to time.

This takes care of the prevention of one's own birth. I can know my

birth but I cannot interfere with it.

Space is infinite so we have to locate the time within this infinite as time is relevant to the space. The attempt to locate time must take into consideration the space as without space time cannot be computed in isolation. Not impossible but daunting even then.

Since location of time is dependent on knowledge we have to increase the knowledge as if it was within the present domain and capacity of knowledge then we would have been able to locate the past by now. We have not been able to do this due to finiteness of our present knowledge which is very very finite when compared to the infinite time. If we can increase the limits of finiteness of the knowledge then our frontiers for knowing the time will also increase. Time will come closer to be known.

Look at different persons - all have some knowledge. Limits of knowledge vary from person to person, animal to animal, plant to plant, though they may belong to same species. Each living being has knowledge and each one's knowledge is partially covered - in some covered to the maximum but not fully and in some minimum part of the knowledge is covered but not totally uncovered. This cover has to be removed. When knowledge is fully uncovered it knows everything in all its respects for all times.

This cover is also an Eml. We can know it but we cannot see it. We can feel it (not by any senses) but we cannot observe it - literal (external) observation I mean. Reason is that knowledge cover is negative of knowledge having the same properties but only in the negative.

The cover of knowledge - 'Kc' is there from the first moment of a particular life.

We can always know what actually happened at a particular time either in past or even what is going to happen at a particular time in future and stretching it we can see all for infinity both ways. But in the absence of total knowledge these specific limits are imposed on our knowing which is relevant to the level of cover. More the cover more the limit and more the ignorance.

How can we know what happened at a particular time past?

One and the only sure way is the total knowledge when anything past and everything future and all present is clear like back of one's palm. The second is one positions oneself at a place which is a point so much removed away from the past and future that these convert themselves into present which is always knowable and the third is one travels faster than the speed of past



and future - in one the speed being negative and in the other positive. For the past events the speed has to be positive and for future it is always negative speed as it is unascertained at the moment. One has to travel beyond and faster than the speed of past and future to know it.

Positive speed reaches but negative speed only probes. Positive is always certain but this necessity does not attaches to negative hence positive must reach a certain specific stage, but negative only touches it - and that too from a distance.

For this what then is past? Past in one sense is the time that has passed but in another sense it represents whatever happened as relative to that particular time. Time passes, it changes, so it has to have a speed. This speed of time is relative to the happening at the time - its place - particular space. The speed may look different from another space. So if the time is relative to a place then at other places it may be different. Diference leading to the exclusivity of a time to that particular space only. This space is as minute as the time is. Therefore, a particular space can be known by its particular time. Similarly we can know a particular time by the particular space it occupies. Each time has its own space and all time has all space with all space having all time. If we know one space we can know all time past, present or future of that particular space. A clarification - a simple pinhead has infinite spaces.

The difference between knowing time and knowing the events (s) that happened at a particular time is certainly very important. Time is also relative *to an event. If there is no event then there is no time either. Eventless time is irrelevant. Event also encompasses existence. The space is demarcated by events.* Therefore many events can be relevant to a particular space differentiated by time. Our purpose will be served if we can observe the event (s) that has taken place in the past or will take place in future at a particular space. Pure and simple time is irrelevant to us as we do not know what to do with pure time. Actually pure time would be unavailable. It will have the same qualifications of space and event for past, present and future too.

Every living being's knowledge carries Kc with itself or put simply every living being howsoever microscopic it may be, has its knowledge covered at least to some or to a great extent. The limits of Kc increase or decrease explainable on the basis of KD. Theory of Matter & Form particularly its law of Determination of Sequential Change.

The speed of time must be less than infinite as otherwise we can never

know infinite time. Reason being we can never reach infinite as speed is always finite. From one end of infinite to the other end of infinite what is contained is definitely 'finite'. The time relative to any of that point must also by necessary implication be finite as what has passed only after a particular point of time - no infinite passage as such - so whatever is limited by time must then necessarily be finite.

We can know the finite past and finite future. The total past is infinite and similarly total future is infinite, but anything between these two is finite and we can know it. Our knowledge when it is infinite can travel (so to say) on and on without stopping even once infinitely. Nothing will remain infinite if one can reach infinite. So the journey of infinite knowledge to know the infinite can continue only till infinite and whatever comes within that journey does not remain infinite, but axiomatically becomes finite and can either be expressed or felt. Infinite cannot be expressed but can only be felt. Expression is only of finite thing - it can as well be felt.

Another question may arise if the speed for knowing the past should be greater than the speed for knowing the future? Since past that has gone is too vast to be expressed but the future is only moments away so the speed should not be the same. Illogical!

The moments later future has its corresponding moments earlier past so that speed of knowing future 24 hours hence would have to be equal to the speed of knowing past 24 hours back. The only question may be if speed of knowing immediate past or future can be equal to the speed of knowing terminal past or future (of a later point).

The answer is not easy.

But it is very simple too.

The speed of knowledge is same for knowing both the immediate or terminal time - past or future. The knowledge can know any of the past or future in an instant - no more time is necessary. This speed is in consonance with the Kc. The lower the Kc higher is the reach and speed of knowledge.

Knowledge may also be called consciousness.

We can now express this KD theory of Time (- and - consciousness) by the following equation -

$$\text{Total knowledge is when } K - X \text{ equals } \frac{K}{x}$$

$$\text{or } K = K - X = \frac{K}{x}$$

(Where K stands for knowledge, x stands for Kc (knowledge cover) and

only when x becomes nil).

When  $K - X = \frac{K}{x}$  that is the stage to be reached and until the value of X is absolutely nil knowledge will not be total. It will be covered. Only when the knowledge is total - totally uncovered then the equation will be proved. This position is possible only when x is nil otherwise never. It can never be - K or - x, most certainly - K and - x can never exist.

This can be expressed in another way : -

$$\begin{matrix} (K) \\ (x) \end{matrix} = (Kx)$$

K is always positive and independent of x is complete while x is always negative (as relevant to K) and always subtracts K. K will become total but can never be nil. x can however become nil but can never be total or absolute.

Independently K - x is reduction of effect of x with lesser being the x greater would be (increase of) K.

Similarly independently  $\frac{K}{x}$  is effect of K when reduced by effect of x and then more the x greater would be the reduction of effect of x with corresponding increase of K.

$\therefore K - x = \frac{K}{x} \therefore x$  is a factor or event which would be equal in both  $K - x$  and  $\frac{K}{x}$  only when at both values it would be nil.

We have to consider three points in the universe and two distances in between. The first is where we are relative to space and relative to time. The second is what event we want to know which has taken place relative to space and time in past. And similarly the third point is relative to a future time and future space for a future event. The distance between any of the two is subject of our position and query.

How these distances are to be covered? Unless we can cover these two distances we can never know either the past or future. The only relief is that at any time we have at least two fixed points to cover so it can be covered. If there never were two points then the time would have remained unknown.

Speed of knowledge is hindered by Kc. The less the Kc more is the speed and when Kc is totally absent, K is having its full speed. So to say in which case K's speed becomes infinite which is certainly more than required to know a finite past or finite future.

Of course when one is predicting that at a particular time this eclipse will take place - this only means a forecast commensurate with knowledge

cover being removed in particular persons compared to those who have no schooling and therefore cannot foresee what others have foreseen and forecasted, i.e. their Kc has not been lessened to that particular extent in a particular direction at a particular time.

Knowledge is neither dependent on body nor nerve cells nor anything else. Knowledge since it is soul is dependent on itself. The less the knowledge cover more the knowledge is realised and more a living being (particularly human beings) knows - past - present - future. When the knowledge cover is nil the knowledge is absolute/total/infinite. Then the person does not see through his eyes, hears through his ears, tastes through his tongue, feels through his skin, smells through his nose but he knows and sees through his whole body (And this is the reason why some persons can tell colour by mere touch...their knowledge cover so far as to that extent is concerned has becomes less) - his whole soul as it resides in the whole body. A person having complete knowledge will not sleep as sleep is a result of knowledge cover - that is why our apparent consciousness becomes almost nil in sleep or in coma.

Consciousness that we have been dealing with here deserves an independent paper for complete explanation and in as much as this paper relates to Time Vis-a-vis consciousness suffice it to say that consciousness itself is soul and soul is consciousness itself - spread all over body going to the extent that when Kc is fully obliterated then one would not see with eyes but with consciousness that is soul that is whole body for example - and this paper due to its own inherent limitations of subject cannot deal with consciousness per se in greater details which along with the whole world from origin (?) to end (?) is subject matter of another book.

This KD Theory of Time (- and - consciousness) is dedicated to my Fourth Guru but for whom I would not have been able to make it out and only who has been instrumental in all these revelations and realisations.

**Received : 22.5.2001**

## कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित साहित्य

क्रमांक	पुस्तक का नाम	लेखक	I.S.B.N.	मूल्य
* 1.	जैनधर्म का सरल परिचय	पं. बलभद्र जैन	81-86933-00-X	200.00
2.	बालबोध जैनधर्म, पहला भाग संशोधित	पं. दयाचन्द गोयलीय	81-86933-01-8	1.50
3.	बालबोध जैनधर्म, दूसरा भाग	पं. दयाचन्द गोयलीय	81-86933-02-6	1.50
4.	बालबोध जैनधर्म, तीसरा भाग	पं. दयाचन्द गोयलीय	81-86933-03-4	3.00
5.	बालबोध जैनधर्म, चौथा भाग	पं. दयाचन्द गोयलीय	81-86933-04-2	4.00
6.	नैतिक शिक्षा, प्रथम भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-05-0	4.00
7.	नैतिक शिक्षा, दूसरा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-06-9	4.00
8.	नैतिक शिक्षा, तीसरा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-07-7	4.00
9.	नैतिक शिक्षा, चौथा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-08-5	6.00
10.	नैतिक शिक्षा, पांचवां भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-09-3	6.00
11.	नैतिक शिक्षा, छठा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-10-7	6.00
12.	नैतिक शिक्षा, सातवां भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-11-5	6.00
13.	The Jaina Sanctuaries of the Fortress of Gwalior	Dr. T.V.G. Shastri	81-86933-12-3	500.00
14.	जैन धर्म - विश्व धर्म	पं. नाथूराम डोंगरीय जैन	81-86933-13-1	10.00
15.	मूलसंघ और उसका प्राचीन साहित्य	पं. नाथूलाल शास्त्री	81-86933-14-X	70.00
16.	Jain Dharma - Vishwa Dharma	Pt. Nathuram Dongariya Jain	81-86933-15-8	20.00
* 17.	अमर ग्रन्थालय में संग्रहीत पाण्डुलिपियों की सूची	संपा. - डॉ. अनुपम जैन एवं अन्य	81-86933-16-6	200.00
* 18.	आचार्य कुन्दकुन्द श्रुत भण्डार, खजुराहो में संग्रहीत पाण्डुलिपियों की सूची	संपा. - डॉ. अनुपम जैन एवं अन्य	81-86933-17-4	200.00
19.	मध्यप्रदेश का जैन शिल्प	श्री नरेशकुमार पाठक	81-86933-18-2	300.00
* 20.	भट्टारक यशकीर्ति दिग. जैन सरस्वती भण्डार, ऋषभदेव में संग्रहीत पाण्डुलिपियों की सूची	संपा. - डॉ. अनुपम जैन एवं अन्य	81-86933-19-0	200.00
21.	जैनाचार विज्ञान	मुनि सुनीलसागर	81-86933-20-4	20.00
22.	समीचीन सार्वधर्म सोपान	पं. नाथूराम डोंगरीय जैन	81-86933-21-2	20.00
23.	An Introduction to Jainism & Its Culture	Pt. Balbhadra Jain	81-86933-22-0	100.00
24.	Ahimsa : The Ultimate Winner	Dr. N.P. Jain	81-86933-23-9	100.00
25.	जीवन क्या है?	डॉ. अनिल कुमार जैन	81-86933-24-7	50.00

\* अनुपलब्ध

नोट : पूर्व के सभी सूची पत्र रद्द किये जाते हैं। मूल्य परिवर्तनीय हैं।

प्राप्ति सम्पर्क : कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर - 452 001



जैन गणित के प्रथम विदेशी प्रचारक  
**डॉ. डेविड यूजीन स्मिथ**  
 (1860 - 1944)

■ डॉ. राधाचरण गुप्त\*

अन्तर्राष्ट्रीय History of Science Society (स्थापित 1924) के संस्थापक डॉ. डेविड यूजीन स्मिथ (David Eugene Smith) जीवन पर्यन्त जिस क्षेत्र में कार्यरत रहे वह था गणित का इतिहास जिसको वह पूर्णतया समर्पित थे। देश की सीमाओं को लांघ कर उन्होंने विश्व-गणित के इतिहास का अध्ययन, प्रचार तथा प्रकाशन किया। इस विषय से संबंधित बहुमूल्य सामग्री का संग्रह करके तन-मन-धन से उस शास्त्र की सेवा की। लेखक, सम्पादक, संग्रहकर्ता तथा प्रबन्धक होने के साथ वह एक सफल प्राध्यापक भी थे।

सन् 1860 ई. में जन्में डी.ई. स्मिथ ने Syracuse विश्वविद्यालय से Ph.B., Ph.M., Ph.D. तथा L.L.D. की उपाधियाँ क्रमशः सन् 1881, 1884, 1887 तथा 1905 में प्राप्त की। बाद में उन्हें Sc. D. उपाधि से सम्मानित किया गया। सन् 1891 से 1898 तक वे Michigan State Normal School, Ypsilanti में गणित के प्राध्यापक रहे। बाद में कोलम्बिया (Columbia) विश्वविद्यालय के Teacher's College में गणित के प्राध्यापक बने।

गणित के इतिहास संबंधी पुस्तकें, हस्तलिखित पोथियाँ, यन्त्र व पदक इत्यादि को प्राप्त करने के लिये उन्होंने विश्व भ्रमण किया। वह भारत भी आये थे जहाँ उन्होंने गणित सार संग्रह के सम्पादन में कार्यरत प्रा. एम. रंगाचार्य से भेंट की थी। बाद में डॉ. स्मिथ ने ग्रन्थ के लिये अंग्रेजी में भूमिका (Introduction) भी लिखी जिसे प्रा. रंगाचार्य ने 'गणित सार संग्रह' (अंग्रेजी अनुवाद सहित संपादित) में, सभी विद्वानों की ओर से धन्यवाद देते हुए छपी थी (Madras, 1912)। वास्तव में रंगाचार्य ने गणित-इतिहास के विशेषज्ञ स्मिथ का सहयोग प्राप्त करने में बड़ी सूझबूझ और दूरदर्शिता से काम लिया। फलस्वरूप आधुनिक भाषानुवाद सहित प्रकाश में आये 'गणित सार संग्रह' के ऐतिहासिक महत्व की ओर विश्व का ध्यान आने लगा।

डॉ. स्मिथ ने 4th International Congress of Mathematicians, Rome, 1908 में गणित सार संग्रह पर अपना एक शोध लेख पढ़ा जो कि बाद में Bibliotheca Mathematica पत्रिका में छपा और I.C.M. की Proceedings में भी (1909)। दो-तीन वर्ष बाद स्मिथ द्वारा प्राचीन भारतीय गणितज्ञों पर लिखे गये लेख जब Cyclopaedia of Education में प्रकाशित हुए तो उनमें आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त तथा भास्कर-II के साथ 'गणित सार संग्रह' के रचयिता महावीराचार्य पर भी स्वतंत्र लेख था। मद्रास से छपे 'गणित सार संग्रह' ग्रन्थ की समीक्षा (Review) भी स्मिथ ने की जो अमरीका गणितीय सोसायटी की बुलेटिन (1913) में छपी। स्मिथ के लेखों तथा समीक्षाओं का सिलसिला चलता रहा।

सन् 1923 में डॉ. स्मिथ ने एक आन्दोलन चलाया जिसके फलस्वरूप अगले वर्ष के प्रारंभ में ही History of Science Society की स्थापना हो गई। वैज्ञानिक युग के लिये यह संस्था अपने ढंग की विश्व में निराली थी। सन् 1931 में डॉ. स्मिथ ने अपने जीवन के चालीस वर्षों में किया गया पुस्तकों, पोथियों तथा अन्य सामग्रियों का विशाल तथा अनूठा संग्रह कोलम्बिया विश्वविद्यालय को भेंट कर दिया। वह संग्रह D.E. Smith Library

के नाम से एक विख्यात शोध तथा सूचना केन्द्र बना।

1936 में जब Osiris नाम की एक नयी शोध पत्रिका History of Science पर प्रारंभ की गई तो उसका प्रथम खंड D.E. Smith को समर्पित था। (वास्तव में समर्पण समारोह स्मिथ के जन्म की 75 वीं वर्षगांठ के अवसर पर 1935 में मनाया गया था।) इस पत्रिका में स्मिथ की रचनाओं की एक विशाल सूची (1892 से 1935 तक) उपलब्ध है जिसमें उनकी रचित व संपादित/अनुवादित पुस्तकों, लेखों, समीक्षाओं, आख्याओं आदि की संख्या 564 है। जीवन में इतना लेखन तथा संग्रहण कार्य एक समर्पित महान् व्यक्ति ही कर सकता है।

### SELECTED BIBLIOGRAPHY OF D.E. SMITH ON ANCIENT INDIAN (Including Jaina) MATHEMATICS

1. *The Gaṇitasārasaṁgraha* (GSS) of *Mahāvīrācārya*, Paper presented in the 4th I.C.M., Rome, April 6-11-1908
2. Same published in the *Bibliotheca Mathematica*, 3rd series, Vol. 9 (Dec. 1908), pp. 106-110
3. Same also in the *Atti del IV Congresso internazionale deimatematici* (i.e. Proceedings of the 4th I.C.M.), Vol. 3, 1909, PP. 428-431
4. *The Hindu Arabic Numerals*, Ginn & Co., Boston, 1911 (With L.C. arpinski).
5. Articles on Āryabhatta 'Bhaskara', Brahmagupta and Mahāvīrācārya in the *Cyclopedia of Education* (ed. by P. Monroe), Macmillan, N.Y., c. 1911-1913.
6. *Introduction to Madras*, ed. of GSS, 1912, p. xix-xxiv. Same reprinted in the Sholapur (1963) & Hombuja (2000) editions.
7. Review of Madras ed. of GSS in *BAMS*, Vol. 19 (1913), 310-315
8. *The Geometry of Hindus, Isis, I (1913), 197-204.*
9. Review of G.R. Kaye, *Indian Mathematics*, in *Science* n.s. 43 (June 2, 1916), 781-783.
10. *Rabbi ben Ezra and the Hindu-Arabic Problem*, *Amer. Math. Monthly*, 25 (1918), 99-108 (With J. Ginsburg).
11. *History of Mathematics*, 2 Vols, Boston, 1923, 1925; Revised ed. 1928, 1930. *Dover Paperback ed.*, N.Y. 1958.
12. (Edition) *A Source Book in Mathematics*, *Mc Graw*, N.Y., 1929
13. G.R. Kaye (1866-1929), *Archeion*, 11 (1929), 230-231
14. Review of the Āryabhaṭīya (tr. by W.E. Clark), *Math. Teacher*, 23 (1930), 396-398
15. *Review of The Science of the Sulba* (by B. Datta), *Scripta Mathematica*, 2 (1934), 166-168.
16. The Ganesh Prasad Prize, *Science*, n.s. 81 (May 17, 1935), p. 487

\* आर - 20, रसबहार कालोनी, झांसी - 284 003

प्राप्त : 10.6.02



## A LITTLE KNOWN 19TH CENTURY STUDY OF THE GAṆĪTA-SĀRA-SAMGRAHA

■ Prof. R.C. Gupta\*

It is now well-known that Mallana (about A.D. 1100) wrote a Telugu version of the famous Sanskrit work the *Gaṇita-sāra-samgraha* (= GSS) of the Jaina Mathematician Mahāvīrācārya. Mallana's father was Sivvana and mother Gaurama. His grand-father had received a land-grant from the Eastern Chalukya king Rājārāja Narendra who ruled the Vengi kingdom from 1022 to 1062. Mallana's version of the GSS was not simply its Telugu rendering but contained changes and additions. He seems to have given the name *Sāra-samgrah-gaṇita* to his translation which is usually and popularly called *Pavuluriganitamu* (= PG) after the name of the village to which Mallana belonged. It is the first Telugu work on mathematics. In spite of its importance, only a part of it has been published. Recently the Telugu Academy has entrusted a scholar to edit and bring out the PG fully.

One natural change made by Mallana was to replace the name of Mahāvīrācārya's deity *Jina* by his own deity Siva. Also Mahāvīrā's list of 24 decuple terms was extended to 36 terms ending with *Mahāsamudra* or *Sāgara* (=  $10^{35}$ ). Mallana was also justified in adding the units and measures which were prevalent locally. He also added relevant material to mathematical exposition. For example, informing the necklaces of digits, Mahāvīrā formed (GSS, II.2) the necklace 12345654321 by multiplying 27994681 by 441, while Mallana got it by squaring 111111 and gave some longer necklaces. It is only after a critical edition of PG is prepared, that will be able to know the full changes and additions made by Mallana from GSS to PG. But one thing is quite clear - any study of PG will also be essentially a study of GSS on which PG is based.

It so happened that about two centuries ago, a scholar-officer named Benjamin Heyne obtained a copy of the PG. He tried to understand the work with the help of an instructor who possessed 'the best practical knowledge of the science (of land measurements)' as it existed in India. Since Heyne was interested in land-measures and revenue of the country, he translated the sixth chapter entitled *Kṣetra Gaṇita* from PG into English. This was published as 'A free Translation of the *Chettri Gaṇitam* or Field Measuring of the Hindoos', which was included in the **Tracts of India** (London, 1814).

It seems that he translated only a portion of the chapter but has included lot of land measures e.g. *Kunta* = one square bamboo = 4096 square feet.



But some basic mathematical rules (of the GSS) are found in his translation of the PG. We give two cases :

1. To find the area in *kuntas* of a quadrangular field, take half the amount of the bamboos of the north and south sides, multiply it by half the amount of the east and west sides. The product will be the number required. (Cf. GSS, VII.7)
2. To find area of a *Sarikha Figure*, deduct half the amount of the short diameter from the long diameter, square the remainder, do the same with half of the short diameter and add the two products together. Multiply the amount by three. Divide this product by four. The quotient is the area. that is,

$$\text{Area} = [(D - d/2)^2 + (d/2)^2] \cdot (3/4)$$

which may be compared with the GSS (VII. 23) from -

$$\text{Area} = \frac{1}{3}(p/2)^3 + (3/4) \cdot (d/2)^2$$

where  $p = 3(D - d/2)^2$ .

Thus we see that PG from is just a simplification of the GSS form. A figure is also drawn.

Heyne could not procure the Sanskrit original of the Telugu PG which, he was told, is a translation of the former whose name and details were also not, apparantly, told to him. Heyne also complained of some imperfections in the copy of PG he consulted. Of course, the presentation of the English version of the PG by Heyne is also poor. Any way, he studied indirectly (i.e. via PG) and even unknowingly the selected portion of GSS in its Teugu version by Mallana and this happened more than 190 years ago. A study of PG is automatically a study of GSS and may throw some new light in the field. Publication of some ancient commetary (whether in Sanskrit, Telugu or Kanada) of GSS is also highly desirable.

## References

1. R.C. Gupta, *Mallana, The First Telugu Writer of Mathematics*, *Ganita Chandrika*, 2(2), 2001, 5-8 and 293), 9.
2. R.C. Gupta, *World's Longest Lists of Decuple Terms*, *Ganita Bhārafi*, 23, 2001, 83-90.
3. B. Heyne, *Tracts, Historical and Statistical on India*, London, 1814, PG's portion appears on pp. 172-180
4. L.C. Jain (ed.), *GSS with Hindi translation*, Sholapur, 1963
5. S.R. Sharma, *The Pavuluriganitamu*, *Studien zue Indologie and Iranistik*, Hefft, 13/14 (1987), 163-176.
6. V.P. Sastri (ed.) *Sarasamgraha-ganitamu*, (of Mallana), Part-I, Tirupati, 1952 (s.V.O.R.S. No. 38) (metioned by S.R. Sharma).

Received : 10.06.02

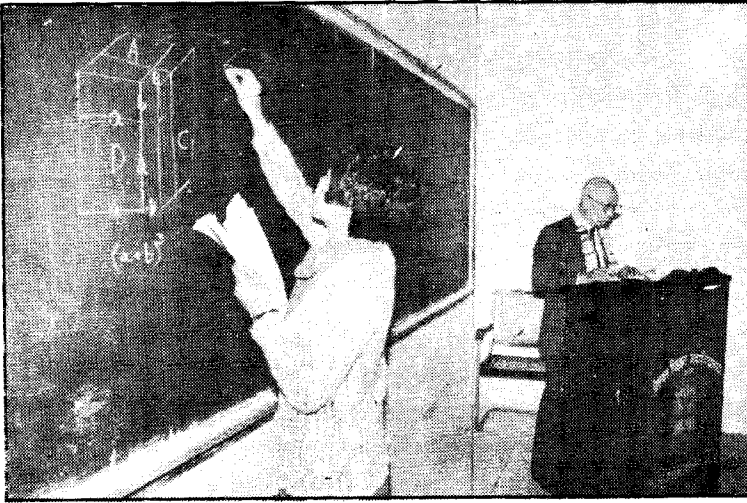
★ R-20, Rasbahar Colony, Jhansi-284 003



## जैन गणित के अध्ययन का एक गतिशील केन्द्र होलकर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर

■ श्रेणिक बंडी \*

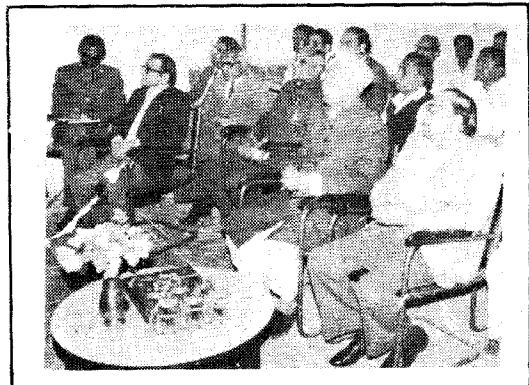
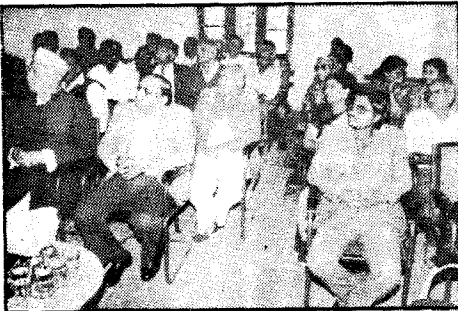
10 जून 1891 में स्थापित होलकर महाविद्यालय वर्ष 2002 में अपनी स्थापना के 111 वर्ष पूर्ण कर चुका है। इस दीर्घवधि में इस महाविद्यालय ने शोध एवं अनुसंधान के क्षेत्र में अनेक प्रतिमान स्थापित किये हैं। सम्प्रति इस शासकीय होलकर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय को मध्यप्रदेश के आदर्श, उत्कृष्ट महाविद्यालय का दर्जा प्राप्त है एवं राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद (NAAC) द्वारा भी इसे ★★ की श्रेणी प्रदान की गई है।



चित्र में प्रो. मिचिवाकी व्याख्यान देते हुए एवं समीप उनकी पुरी कु. मुत्तुको मिचिवाकी ज्यामितीय आकृति बनाते हुई

महाविद्यालय के यशस्वी गणित विभाग में Special Functions के क्षेत्र में तो शोध कार्य होता ही है, प्राचीन भारतीय गणित एवं गणित इतिहास के क्षेत्र में श्लाघनीय कार्य हो रहा है। 1987 में स्थापित कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (शोध संस्थान), इन्दौर के आमंत्रण पर भारत पधारे जापान के गुन्मा विश्वविद्यालय के प्राध्यापक प्रो. योशिमाशा मिचिवाकी 9 जनवरी 1990 को प्रातः

11.00 बजे On the resemblance between Indian, Chinese and Japanese Mathematics पर व्याख्यान देने हेतु गणित विभाग में पधारे। इस व्याख्यान में प्राचीन भारतीय गणितज्ञों विशेषतः जैन गणितज्ञों द्वारा प्रयुक्त ज्यामितीय संरचनाओं की जापानी गणितज्ञों द्वारा प्रयुक्त ज्यामितीय संरचनाओं में साम्य की विवेचना की गई।



इस व्याख्यान में महाविद्यालय के प्राचार्य, गणित विभाग के अनेक प्राध्यापक - प्रो. दुबे, मैं (प्रो. श्रेणिक बंडी), प्रो. प्रमिला खाबिया तो मौजूद थे ही, महाविद्यालय के अनेक तत्कालीन शिक्षक एवं पूर्व शिक्षक भी मौजूद थे। निम्नांकित चित्र में प्रो. वी.के. निलोत्से, प्रो. आर. एन. जैन, प्रो. ए.जी. फडनीश, प्रो. राबर्ट, प्रो. धारपुरे, प्रो. उषा गुप्ता, प्रो. ढोबले, प्रो. कुमुद मिश्रा, प्रो. सक्सेना, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के यशस्वी अध्यक्ष श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल, श्री महाराजाबहादुरसिंह कासलीवाल, श्री कैलाशचन्द चौधरी एवं डॉ. अनुपम जैन (मानद सचिव) (सम्प्रति इसी महाविद्यालय में पदस्थ) दिखाई दे रहे हैं।

महाविद्यालय के गणित विभाग के प्राध्यापक प्रो. महेश दुबे की भारतीय गणित एवं गणित इतिहास में प्रारम्भ से ही रुचि रही है। प्रसिद्ध जैन गणितज्ञ आचार्य महावीर पर आपके निम्न 2 शोध पत्र प्रकाशित हुए हैं -

1. कवि और गणितज्ञ - महावीराचार्य, अर्हत् वचन (इन्दौर), 3 (1), जनवरी 1991, 1-26.
2. *Mahāvīrācārya : The Poet and the Mathematician*, Mathematical Spectrum (London), 1998, pp. 1-6.

साथ ही वर्ष 2000 में एम.एससी. की एक छात्रा कु. रश्मि जैन को आपने प्रोजेक्ट भी लिखाई - *Mahāvīrācārya and his Mathematical Works*.

महाविद्यालय के गणित विभाग में 1995 से पदस्थ डॉ. अनुपम जैन की विशेषज्ञता का क्षेत्र ही 'जैन गणित' है। 1980 में एम.फिल. प्रोजेक्ट रिपोर्ट एवं उसके पश्चात अपना शोध प्रबन्ध 'गणित के विकास में जैनाचार्यों का योगदान' विषय पर प्रस्तुत कर आपने पीएच.डी. की उपाधि अर्जित की है। विभाग में पदांकन के उपरान्त आपने एम.फिल. एवं एम.एससी. की निम्न 4 प्रोजेक्ट्स हेतु निर्देशन कार्य किया -

1. योगेन्द्र शर्मा, *श्रीधराचार्य*, M.Phil. Project (चौधरी चरणसिंह वि.वि.), मेरठ, 1996.
2. प्रशान्त तिलवनकर, *Śrīdharācārya, The Man & the Mathematician*, 2000.
3. Swati Agnihotri, *Ācārya Nemicaandra and his Mathematical Contribution*, 2001.
4. Arti Agrawal, *An Introduction to Indian Mathematics including Vedic Mathematics (to be submitted in 2003)*.

आपने चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय में 2001 में प्रस्तुत ममता अग्रवाल के शोध प्रबन्ध का निर्देशन किया। तथा सम्प्रति श्री दिपक जाधव, श्रीमती प्रगति जैन, श्रीमती नीतू बंसल एवं श्री एन. शिवकुमार का कार्य प्रगति पर है।

आप मैसूर वि.वि. (1998), भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी (2001), I.I.T., Kanpur (2002) आदि में भी व्याख्यान जैन गणित पर प्रस्तुत कर चुके हैं। आपके अनेक शोध पत्र भी प्रकाशित हो चुके हैं।

देवी अहिल्या विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में महिला संगठन, इन्दौर द्वारा आयोजित संगोष्ठी (2002) में विभाग की श्रीमती कल्पना मेधावत ने 'वक्षाली हस्तलिपि - एक अनुचिन्तन' शोध आलेख का वाचन भी किया जिसमें महाविद्यालय के प्राचार्य प्रो. नरेन्द्र धाकड़ की उपस्थिति उल्लेखनीय रही।

इससे स्पष्ट है कि महाविद्यालय का गणित विभाग जैन गणित के अध्ययन के विशिष्ट केन्द्र के रूप में विकसित हो रहा है।

✽ प्राध्यापक - गणित, होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर



## श्रुत पंचमी ऐसे मनायें

■ लालचन्द्र जैन 'राकेश'\*

“श्रुत पंचमी” जैन संस्कृति का महापर्व है। तीर्थकरों और गुरुओं के पर्व तो वर्ष में कई बार आते हैं किन्तु मां जिनवाणी का यह पर्व तो वर्ष में एक बार ही आता है तथा प्रतिवर्ष ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को मनाया जाता है। इसका सीधा सम्बन्ध श्रुतावतार के महनीय इतिहास से है। यह पर्व ज्ञान की आराधना का संदेश देता है, श्रुत के अवतरण, संरक्षण एवं संवर्द्धन की याद दिलाता है तथा हमारी सुप्त चेतना को जागृत करता है। संक्षेप में यह ज्ञान का पर्व है। अतः इसे हम “ज्ञान पंचमी” भी कह सकते हैं।

जैन संस्कृति में “श्रुत” को पूज्यता का पद प्राप्त है। इसे श्रुत देवी/श्रुत देवता या जिनवाणी माता कहते हैं। इसे रत्नोपाधि से अलंकृत किया गया है।

श्रुत का प्रभाव अनुपम है। श्रुत ज्ञान सम्यग्दर्शन का निमित्त है। इसके परिशीलन से पदार्थ के बोध के साथ ही हिताहित का ज्ञान भी प्राप्त होता है। हितानुबन्धी ज्ञान से सन्मार्ग में प्रवृत्त हुआ व्यक्ति शाश्वतिक, निराकुल सुख को भी पा लेता है। सत्य तो यह है कि श्रुत देवी/श्रुत ज्ञान ही हमारा कल्याण करने वाला है, उसके आश्रय से ही केवलज्ञान को प्राप्त किया जा सकता है। श्रुत ज्ञान का महत्व बतलाते हुये कहा गया है कि “ज्ञान की अपेक्षा श्रुत ज्ञान तथा केवल ज्ञान दोनों ही सदृश हैं परन्तु दोनों में अंतर यही है कि श्रुत ज्ञान परोक्ष है और केवल ज्ञान प्रत्यक्ष है।” पद्मनन्दी आचार्य के अनुसार “जो श्रुत की उपासना करते हैं, वे अरहंत की ही उपासना करते हैं क्योंकि श्रुत और आप्त में कुछ भी अंतर नहीं है इसलिये सरस्वती की पूजन साक्षात् केवली भगवान की पूजन है।”

किसी कवि ने ठीक कहा है, “जिनवाणी जिन सारखी।” शास्त्रों में श्रुत की अपूर्व महिमा का गान करते हुये लिखा है कि -

श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः सदास्तु मः।  
सज्जानमेव संसार वारणं मोक्ष कारणम्॥

जन्म-जरा-मृत्यु क्षय करै, हरे कुनय जड़रीति।

भव-सागर सौ ले तिरै, पूजौ जिन वच प्रीति॥

श्रुत पंचमी ऐसे मनायें - ऐसे महापर्व पर हमारे क्या कर्तव्य/उत्तरदायित्व हो जाते हैं, उनका संक्षिप्त दिग्दर्शन ही इस आलेख का विषय है।

1. हमारे पूर्वज, पूर्वाचार्यों द्वारा लिखित जिनवाणी को ताड़पत्र/भोजपत्र/कागज पर लिखकर/लिखवा कर जिनालयों में विराजमान करते रहे हैं। बड़े-बड़े शहरों से लेकर छोटे से छोटे सुदूरवर्ती ग्रामों के जिनालयों में भी उनकी पाण्डुलिपियां विद्यमान हैं, जिनमें हमारी संस्कृति, इतिहास एवं आचार-विचार की अमूल्य धरोहर सुरक्षित है। हमें चाहिये कि इस धरोहर की सुरक्षा एवं प्रचार-प्रसार के लिये इस पर्व पर हम कटिबद्ध हों। उनके पुराने वेष्टन बदल कर, प्रासुक करके, पुनः नवीन वेष्टनों में बांध कर, वेष्टन के बाहर ग्रंथ का नाम अंकित कर उन्हें सुरक्षित, सीलन रहित स्थान पर विराजमान करें।

2. कागज की पाण्डुलिपियों के दोनों ओर मजबूत कागज के पुट्टे लगायें तथा ताड़पत्रीय/भोजपत्रीय पाण्डुलिपियों को दोनों तरफ लकड़ी के पटिये (पटिये कुछ बड़े हों) लगा कर, वेष्टन में बांध कर अलग-अलग खानों में रखें।

3. सम्पूर्ण ग्रंथों की सूची का एक रजिस्टर भी बनायें।
4. पाण्डुलिपियों/ग्रंथों को रखने के लिये लोहे की अलमारियों का उपयोग करें। लकड़ी की अलमारियों से ये अधिक सुरक्षित हैं।
5. वेष्टन सूती हों, रंग लाल या पीला हो। लाल रंग पर सूर्य-ताप का दुष्प्रभाव नहीं पड़ता तथा पीला रंग कीटाणु निरोधक होता है।
6. वेष्टन को कस कर बांधना चाहिए ताकि उठाने-रखने में ग्रंथ को क्षति नहीं पहुंचे।
7. आज के मुद्रण प्रधान युग में हस्तलिखित पाण्डुलिपियों की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता। वे उपेक्षित होकर चूहों और दीमकों की भोज्य बन रही हैं। हमें उनका लेमीनेशन करा कर, माइक्रो फिल्म बनावा कर, बिन्दु क्रमांक एक-दो के अनुसार उनकी सुरक्षा करना चाहिये।
8. यदि पाण्डुलिपियों/प्राचीन ग्रन्थों की उक्तानुसार आपके यहां सुरक्षा व्यवस्था संभव न हो तो कृपया उन्हें किसी पाण्डुलिपि संरक्षण केन्द्र को सादर समर्पित कर दें ताकि वे सुरक्षित रह सकें।
9. आज के इस मुद्रण प्रधान युग में प्राचीन, हस्तलिखित पाण्डुलिपियों ग्रन्थों को कोई पढ़ना नहीं चाहता, उनके पढ़ने की योग्यता भी सामान्य जनों में नहीं है, यहां तक कि नवीन पीढ़ी के विद्वान भी उनके पढ़ने में अरुचि एवं असमर्थता प्रकट करते हैं। ऐसी स्थिति में पाण्डुलिपि प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन हितकर होगा। इस "ज्ञान यज्ञ" के लिये साधु, विद्वान, श्रुतसेवी संस्थाएँ एवं जिनवाणी भक्त श्रेष्ठी वर्ग आगे आयेँ और इस ज्ञान की संचित निधि को विलुप्त होने से बचायें।
10. इन शिविरों के माध्यम से ग्रंथागारों की पाण्डुलिपियों का सूचीकरण, प्रशिक्षण, ग्रन्थों का सम्पादन तथा प्रकाशन जैसे कार्य भी सरलता से हो सकेंगे।
11. प्रत्येक जिनालय में बड़ी संख्या में मुद्रित/हस्तलिखित/प्राचीन/नवीन ग्रन्थ पाये जाते हैं किन्तु सुरक्षा, रख-रखाव का न तो हमें ज्ञान है और न ध्यान। फलतः ग्रंथ शीघ्र फट जाते हैं, कीड़े लग जाते हैं, चूहे काट जाते हैं, उन्हें दीमक चट कर जाती है या वे सड़-गल जाते हैं। अतः उनकी सुरक्षा के लिये अल्पकालीन/दैनिक उपाय निम्नानुसार है -
1. पुस्तकों/ग्रंथों को सदा स्वच्छ/शुद्ध हाथों से ही उठाये एवं रखें।
2. पुस्तकों/ग्रंथों को धूलि एवं गंदगी से बचायें। उनकी साप्ताहिक, मासिक, त्रैमासिक, वार्षिक जैसे भी संभव और आवश्यक हो, सफाई की व्यवस्था करें। हमारे पूर्वजों ने श्रुतपंचमी पर्व जिनवाणी की सुरक्षा आदि के लिये ही नियत किया है। सुरक्षा भी जिनवाणी की पूजा का एक अंग है।
3. पुस्तकों/ग्रन्थों के साथ जीवित मानव (जिनवाणी माता) जैसा व्यवहार करें। अतः अलमारियां पूरी बंद न करें, कुछ हवा आने दें या कभी-कभी खोल कर रखें।
4. पुस्तकों के रखने का स्थान न तो अधिक गर्म हो, न अधिक ठंडा न, न सीलन भरा हो, प्रासुक/निर्जंतुक हो। अतः पुस्तकों को भीतरी कक्ष में रखना चाहिये।
5. पुस्तकों पर सूर्य की तीव्र किरणें सीधी नहीं पड़ना चाहिये इससे कागज की आयु कम हो जाती है। मंद ताप/प्रकाश के लिये खिड़की/रोशनदान के काँचों पर रंग करा देना चाहिये।
6. पुस्तकें को पत्थर या दीवाल से सटा कर न रखें, सीलन आ सकती है।
7. पुस्तकें रखने के स्थान पर अगल-बगल-सामने कागज लगा कर फिर पुस्तकें रखें।

8. पुस्तकें अलमारी में खड़ी रखें, एक दम ठूस-ठूस कर न रखें अन्यथा पुस्तकों को निकालने और रखने में असुविधा होगी। पुस्तकें रगड़ से फट सकती हैं, उनकी जिल्द उखड़ सकती है।

9. पुस्तकें आड़ी, एक के ऊपर एक न रखें क्योंकि बीच में से पुस्तक निकालने में असुविधा होगी।

10. अत्यन्त महत्वपूर्ण पुस्तकों को सुरक्षित रखने के लिये पृथक से मजबूत पुट्टे के बॉक्स बनाये जा सकते हैं।

11. ग्रन्थालयों में या उनके आस-पास खाद्य पदार्थ तथा चिकनाई वाले पदार्थ नहीं होना चाहिये। मंदिरों की पुस्तकें इन पदार्थों के कारण चूहे काट जाते हैं।

12. नीम के सूखे पत्ते अलमारियों में पुस्तकों के बीच बिछा कर पुस्तकों को दीमक, सफेद कीड़ों आदि से बचाया जा सकता है।

13. चन्दन के बुरादे की पोटली भी अलमारी में प्रत्येक खाने में पुस्तकों की सुरक्षा हेतु रखी जा सकती है।

14. पुस्तकों के उठाते-रखते एवं पढ़ते समय सावधानी रखें। अधिक मोटी पुस्तकें पढ़ते/खोलते समय उन्हें दोनों ओर कोई सहारा दें ताकि उनकी जिल्द सुरक्षित रहे। लकड़ी के उपकरण इस हेतु बाजार में उपलब्ध हैं।

15. पुस्तकों पर जिल्द चढ़ाने से उनका जीवन दीर्घ हो जाता है।

संक्षेप में, ग्रन्थों की रचना बड़े कष्ट से की जाती है। एक मूर्ति के टूटने/नष्ट होने पर उस जैसी दूसरी मूर्ति बन सकती है। किन्तु एक प्राचीन ग्रंथ/पाण्डुलिपि नष्ट होने पर वैसा दूसरा ग्रंथ तैयार नहीं हो सकता। अतः इनकी यत्न पूर्वक जल-वायु-अग्नि, मूषक तथा चोरों से रक्षा करना चाहिये। कहा भी है -

कष्टेन लिखितं शास्त्रं, यत्नेन परिपालयेत्।

उदकानल चौरभ्यो, मूषकेभ्यो हुताशनात्॥

तैलाद रक्षेज्जलाद् रक्षेद् रक्षेच्छिथिल बंधनात्॥

मूर्ख हस्ते न दानव्यम् एवं वदति पुस्तकम्॥

16. “श्रुत पंचमी” ज्ञान और ज्ञान के आराधकों के सम्मान का पर्व है। अतः जिन विद्वानों ने अनथक श्रम करके प्रतिकूल परिस्थितियों में रह कर भी ग्रन्थों का सम्पादन, अनुवादन, लेखन, संरक्षण आदि कार्य कर मां जिनवाणी की अपूर्व सेवा की है उन्हें आज सम्मानित पुरस्कृत किया जाना चाहिये अथवा जो सरस्वती सेवक अभावों का जीवन जी रहे हैं उन्हें आर्थिक सहयोग देकर उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहिये।

17. समाज में प्रतिवर्ष सैकड़ों पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं एवं गजरथ महोत्सवों में करोड़ों की धनराशि व्यय की जाती है उसका या उसमें से कुछ अंश का उपयोग आगमिक ग्रन्थों के प्रकाशनादि कार्यों पर व्यय करने का प्रावधान होना चाहिये।

18. हमारी समाज में न तो श्रेष्ठियों की कमी है और न उदारदानियों की, कमी है उन्हें सही मार्ग दर्शन की। साधु समाज अपने विवेक और प्रभाव का उपयोग कर जिनवाणी के संरक्षण एवं प्रसार की अगुआई कर सकते हैं। पूज्य श्री 108 उपाध्याय ज्ञानसागर जी का योगदान इस क्षेत्र में प्रशंसनीय है।

प्राप्त : 22.5.01

\* पूर्व प्राचार्य  
नेहरू चौक, गली नं. 4,  
गंजबासोदा (जि. विदिशा)



# ध्यान

## एक यात्रा (अ) ज्ञात के उस पार

■ डॉ. एन.एन. सचदेव\*

‘ध्यान’ (Meditation) न केवल भारत, बल्कि यूरोप व अमेरीका में भी लोकप्रिय हो गया है। आज तनाव जीवन का एक अंग बन गया है। उससे मुक्ति पाने के लिये (आस्तिक तथा नास्तिक) किसी भी धर्म में विश्वास रखने वाले अथवा मत-मतान्तर से दूर रहने वाले लोगों ने इसे स्वीकार कर लिया है। ‘ध्यान प्रणाली’ सिखाना एक बड़ा व्यवसाय बन गया है। यह आय का इतना बड़ा स्रोत बन गया है कि इन लोगों की गिनती विश्व के गिने-बुने धनी वर्ग में आती है।

देवत्व की परिभाषा मानव समझ के परे हैं। इसी प्रकार ध्यान क्या है? इसे शब्दों में ढालना इतना सरल नहीं है। मैं इसे साधना मानता हूँ, यह अथाह है। इसके अनगिनत पहलू हैं, वास्तव में यह समझ के परे है।

भिन्न-भिन्न लोग अपनी-अपनी तरह से भिन्न-भिन्न प्रकार से समझते-समझाते हैं, जैसे प्राचीन काल के योगी तथा सूफी समाधि में पहुँच जाते थे, इसी तरह ध्यान भी मनुष्य को इस अवस्था में ले जाने का प्रयास है। मनोवैज्ञानिक भाषा में इसे सेल्फ हिप्नोटिज्म (Self Hypnotism) भी कहा जा सकता है। ऐसी अवस्था क्षण भर के लिये भी आ जाय तो उसे अनुभव तो किया जा सकता है परन्तु अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है।

ध्यान किसी उद्देश्य व वस्तु प्राप्ति का आधार नहीं हो सकता। अपने आपको जानने तथा समझने का माध्यम कहा जा सकता है। यह एक मनोवैज्ञानिक यात्रा है जो इस समझ और सूझबूझ के पार लगाने का प्रयास है और सांसारिक यात्राओं की भांति आनन्ददायक है तथा जीवन लक्ष्य को नगण्य कर देती है। यह स्वयं एकाकी सत्संग है। आस्तिक तथा देवत्व में विश्वासु लोगों के लिये अपने इष्ट देव से सीधा सम्पर्क करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जब कोई समाधि की अवस्था में पहुँच जाता है, तब ऐसा लगता है कि समय रुक गया है व अनन्त से जुड़ गया है। ‘मैं’ की भावना लुप्त हो जाती है, देखने में तो चैतन्य अवस्था है, परन्तु वास्तव में पूर्ण जाग्रत नहीं है, यह कहना कठिन है कि कोई अन्तर्शक्ति जाग्रत हो जाती है। परन्तु यह अवस्था चरमोत्कर्ष आनन्द की उल्लास तरंगें उत्पन्न कर देती है, जिसकी कोई सीमा नहीं, कोई पर्याय नहीं।

उन्नीसवीं सदी के विश्व प्रसिद्ध उर्दू कवि ‘गालिब’ ने इस अवस्था को इन शब्दों में ढाला है -

“हम वहाँ हैं, जहाँ से हमको भी  
कुछ हमारी खबर नहीं आती”

किसी वस्तु, ज्योति की लौ, बिन्दु, शब्द अथवा मंत्र ध्यान को केन्द्रित करने में तथा अपने मन को बाह्य संसार से अलग-अलग, क्षणभर के लिये यादों से परे जाने व शून्य अवस्था में पहुँचने के लिये, अभ्यास, विश्वास तथा श्रद्धा की आवश्यकता है। जीवन में तनाव के साथ-साथ सहज जीवन आज के युग में संभव नहीं है। ध्यान, एक ऐसी कला है जिसके महत्व को झुठलाया नहीं जा सकता, इसलिये इसे ध्यान का प्रचार करने वाले व सिखाने वाले कैसे भी हों, चाहे पैसे के लिये हों, आज के समाज में उन्हें मान्यता देने में कोई आपत्ति नहीं होना चाहिए। इस संदर्भ में देखा जाय तो इस मानव के हित में वे प्रशंसनीय भूमिका ही निभा रहे हैं।

अनुवादक - एल.एस. आचार्य

प्राप्त : 02.07.2001

\* देवलोक, न्यू पलासिया, इन्दौर - 452 001



## धर्म और विज्ञान

■ जतनलाल रामपुरिया\*

धर्म निराकार है, श्रद्धा उसे आकार देती है। धर्म अगोचर है, श्रद्धा उसकी सत्ता का बोध कराती है। धर्म निर्मल हृदय से निःसृत भावों की पवित्रता है, श्रद्धा उसे स्थूल क्रियाओं में अभिव्यक्त करती है। एक बिन्दु पर पहुँचकर हर मनुष्य उस बात को धर्म मान लेता है जहाँ श्रद्धा उसे स्थिर करती है। इसलिए धर्म के संदर्भ में श्रद्धा बीज-रूप है। चिंतन के क्षितिज पर एक पड़ाव ऐसा भी आता है जहाँ न विज्ञान काम करता है न तर्क शरण देती है। श्रद्धा ही वहाँ मनुष्य को भटकने से बचाती है। पर बीज को वृक्ष का रूप लेने के लिए आवरण चाहिए मिट्टी का, पोषण चाहिए पानी का। श्रद्धा का बीज भी इच्छित फल तब देता है जब उसे शोध की उर्वर धरती मिले और साथ ही जिज्ञासा का अमृत पानी। अकेली श्रद्धा छद्म-भेष में अंधानुकरण की वृत्ति है। प्रथम आवृत्ति में वह व्यक्ति के मौलिक चिंतन को अवरुद्ध करती है। असहिष्णुता, विघटन, हिंसा और ध्वंस उसकी अंतिम और अनिवार्य परिणतियाँ हैं।

जिज्ञासा और शोध की वृत्ति ज्ञान के प्रथम सोपान हैं। इन पर आरुढ़ ज्ञान की पूर्णाहुति विज्ञान है। भगवान महावीर ने सम्यक् ज्ञान को अपनी आध्यात्म यात्रा का आदिबिन्दु बना। "सम्यक्" शब्द पूर्णता का द्योतक है। सम्यक् ज्ञान की परिभाषा भी इसलिए उतनी ही व्यापक है और इस परिभाषा में विज्ञान की परिभाषा समाहित है।

आध्यात्म की साधना ज्ञान के सम्यक्त्व के बिना नहीं होती और ज्ञान का सम्यक्त्व जड़ और चेतन-दोनों के गुण धर्म समझे बिना नहीं सधता। यह संपूर्ण सृष्टि एक ही सूत्र से संचालित है इसलिए पुण्य और पाप की गुत्थियों को द्रव्य जगत और भाव जगत दोनों की गहराइयों में उतरकर ही समझा जा सकता है। इस प्रतिपादन के साथ भगवान महावीर ने आध्यात्म के क्षेत्र में संपूर्ण एक नया अध्याय खोला।

Reason और Logic को सामने रखकर उन्होंने एक वैज्ञानिक की पद्धति से क्रिया और प्रतिक्रिया के अटूट सम्बन्धों की आध्यात्म के धरातल से व्याख्या की। यही उनका अनूठापन था। उन्होंने देखा कि आत्म-जगत की जटिलताओं का विश्लेषण पदार्थ जगत की सघन परिक्रमा के बिना संभव नहीं। इसीलिए सम्पूर्ण ब्रम्हाण्ड में व्याप्त इस सृष्टि के नियामक जिन सात तत्त्वों का जैन धर्म में गहन विवेचन है "अजीव" उनमें से एक है। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन नव पदार्थों में अजीव का उल्लेख अकारण नहीं बल्कि प्रयोजनवश है क्योंकि अजीव की परिभाषा ही परोक्ष रूप में जीव की व्याख्या है। अजीव को जाने बिना जीव का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता और अजीव एवं जीव दोनों के अन्तरंग अवलोकन के बिना ज्ञान पारदर्शी नहीं बनता। बिना पारदर्शी ज्ञान के धर्म पारदर्शी नहीं बनता।

भगवान महावीर ने इसीलिए विज्ञान की पृष्ठभूमि से आध्यात्म की खोज की और आध्यात्म के अंतरंग में विज्ञान को देखा। इन दोनों के विलय में उन्होंने सत्य के दर्शन किए और अपने जीवन को जन्म और मृत्यु के हेतुओं की तलस्पर्शी मीमांसा करने की प्रयोगशाला बनाया। आध्यात्म और विज्ञान के समन्वय का भगवान महावीर का यह सूत्र हमें किस नये क्षितिज पर ले चलता है, सम्प्रति हमारी वार्ता इसी के विश्लेषण पर केन्द्रित है।



धर्म का सत्य और विज्ञान का सत्य मिलकर जिस सत्य को उद्घाटित करते हैं उस तक पहुंचने में स्वयं को प्रवृत्त करना ही आध्यात्म की यात्रा है। प्रत्यक्षतः विज्ञान केवल भौतिक चीजों की सच्चाइयों का जानने का उपक्रम है। पर उनके संधान-अनुसंधान की प्रक्रिया में वह सम्यक् ज्ञान का वाहक बनता है और इस प्रकार अपनी अंतिम परिणति में आध्यात्म की राह प्रशस्त करता है। धर्म और विज्ञान दोनों का लक्ष्य सत्य की शोध है। धर्म का विषय आत्मा के सत्य को जानना है, विज्ञान का पदार्थ जगत के सत्य को। धर्म अदृश्य को स्पर्श करने का प्रयत्न करता है, विज्ञान अगम्य को गम्य बनाने का। दोनों गूढ़ से अगूढ़ की ओर प्रस्थान के प्रयास हैं, इसलिए दोनों के प्रवाह की दिशा एक है। इस दृष्टि से दोनों एकार्थक हैं। अपने चरम उत्कर्ष पर संभवतः एक दूसरे के पर्याय भी। सहचर तो है इसलिए दोनों की समरस आराधना ही गंतव्य तक पहुंचने का सबसे तेज वाहन है।

धर्म का उद्भव श्रद्धा जनित नहीं। प्रारंभ में धर्म की कल्पना के पीछे भी विज्ञान की ही तरह बुद्धि, विवेक, विचार, तर्क, हेतु, प्रयोजन, युक्ति, कारण और न्याय ही रहे हैं। इनके आधार पर धर्म की जो परिभाषा बनी, कालान्तर में उसकी गलत व्याख्याएँ हुईं। फलस्वरूप धर्म में विसंगतियों और विकृतियों का समावेश हुआ। सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान के अभाव ने उन विकृतियों को धर्म का परिधान पहना दिया। कुछ का आग्रह रहा और कुछ का अज्ञान, जब दोनों मिले तो विवेक और युक्ति की जगह श्रद्धा ने ले ली। समय बीतता गया। श्रद्धा के आसन पर अन्ध श्रद्धा कब आरुढ़ हुई पता ही नहीं चला। दृष्टि आसन पर ही अटकी रही और हम भटक गये।

केवल धर्म की नहीं, इन पृष्ठों पर विज्ञान की बात भी हम साथ लेकर चले थे। एक बार फिर लौटते हैं उस पर। धर्म की तरह विज्ञान भी सम्यक्दर्शन की साधना है, सम्यक्ज्ञान की आराधना है। विज्ञान विवेक और युक्ति को कभी छोड़ता नहीं और इसलिए अपने पथ से कभी भटकता नहीं। फलतः उसमें विसंगतियों और विकृतियों का प्रवेश नहीं होता। धर्म और विज्ञान में यही एक मूलभूत अन्तर बनता है और इस अन्तर को मिटाना हम सबका दायित्व है। आध्यात्म और विज्ञान के समन्वय का सूत्र जो भगवान महावीर ने दिया वह हमें इसी बिन्दु पर पहुंचाता है।

भगवान महावीर ने सम्यक् ज्ञान को धर्म की आधारभूमि माना। आज का विज्ञान भगवान महावीर के सम्यक्ज्ञान के विशाल साम्राज्य का ही एक अंग है और इसलिए वह धर्म का भी एक अंग है। हमारी चिंतन धारा विज्ञान के साथ आत्मसात् होकर चले यही इष्ट है। धर्म के रूप में उसका अभिन्न अंग बनकर पल रही विकृतियों का जब हम सही आंकलन करेंगे। यह आंकलन हमें निर्लिप्त निरपेक्ष होकर नहीं बैठने देगा। उनकी परिशुद्धि हेतु तब हमारे सतत प्रयास, अपने अंतिम चरण में, धर्म के जिस स्वरूप को सामने लायेंगे वही सच्चा धर्म होगा - विमुक्त, अनावृत और अनाच्छादित। तब कहीं एकान्त नहीं रहेगा, तब कहीं द्वेष्ट नहीं रहेगा, तब कहीं द्वेध नहीं रहेगा। तब वहीं कोई सम्प्रदाय भी नहीं रहेगा। तब केवल धर्म रहेगा - निर्बन्ध, निरावरण और निर्विशेषण।

यह अहिंसा, सत्य और अपरिग्रह का धर्म होगा, यह अनेकान्त और अनाग्रह का धर्म होगा, यह दया और करुणा का धर्म होगा। यह मनुष्य का धर्म होगा और इसलिए भगवान महावीर को इस बात की अपेक्षा नहीं होगी कि यह धर्म उनके धर्म के नाम से जाना जाय।

प्राप्त : 08.03.02

\* एडवोकेट, 15, नूरमल लोहिया लेन, कोलकाता - 7



## जैन गणित को समर्पित साध्वी आर्यिका श्री विशुद्धमती माताजी

■ डॉ. अनुपम जैन \*

बीसवीं शताब्दी जैन गणित के अध्ययन के विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। 1908-1912 में महावीराचार्य कृत 'गणित सार संग्रह' के प्रकाश में आने से भारतीय गणित की शाखा 'जैन गणित' की ओर विश्व समुदाय का ध्यान आकृष्ट हुआ।



मध्यप्रदेश में जबलपुर जिले के रीठी नामक छोटे से ग्राम में चैत्र शुक्ला तृतीया, संवत् 1986, तदनुसार 12 अप्रैल 1929 को समताभावी और सदाचारी सद्गृहस्थ श्री लक्ष्मणलाल सिंघई के यहाँ पाँचवीं सन्तान के रूप में जब एक बालिका का जन्म हुआ तब घर और बाहर किसी को भी यह कल्पना तक नहीं थी कि एक दिन यह बालिका अगाध आगम ज्ञान प्राप्त करके कठेर तप की साधना करती हुई, स्व-पर कल्याण के पथ पर आरूढ़ अपनी पर्याय की उत्कृष्ट उपलब्धि अर्जित करेगी।

प्रसिद्ध जैन विद्वान श्री नीरज जैन (सतना) एवं श्री निर्मल जैन (सतना) की सगी बहन सुमित्राजी ही दीक्षोपरान्त आर्यिका विशुद्धमतीजी बनीं।

विदुषी आर्यिका पूज्य श्री विशुद्धमती माताजी ने 14 अगस्त 1964 को मोक्ष सप्तमी के दिन परम पूज्य आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज से आर्यिका दीक्षा प्राप्त की थी, फिर 25 वर्ष की सतत तपस्या के माध्यम से उन्होंने अपनी साधना का भव्य भवन बनाया। उसके उपरान्त 12 वर्ष की सल्लेखना लेकर, कठोर साधना करते हुए उन्होंने अपने उस पुण्य-भवन पर उत्तुंग शिखर का निर्माण किया जो अपने आप में एक अनोखा उदाहरण था। इन बारह वर्षों में क्रमशः एक-एक वस्तु त्यागते हुए सन् 1998 के चातुर्मास से एक दिन के अन्तर से और सन् 2002 के चातुर्मास से दो दिन के अन्तर से आहार लेकर उन्होंने उत्कृष्ट समाधि-साधना का अप्रतिम उदाहरण प्रस्तुत किया। अन्त में केवल जल ही उनकी इस पर्याय का आधार था जिसे उन्होंने 16 जनवरी 2002 को जीवनपर्यन्त के लिये त्याग दिया और अंतिम छह दिवस माताजी ने निर्जल व्यतीत किये।

पूज्य माताजी द्वारा विरचित वांगमय निम्नवत् है -

● भाषा टीकाएं :

1. सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य विरचित त्रिलोकसार टीका।
2. भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसारदीपक टीका।
3. यतिवृषभाचार्य विरचित तिलोयपण्णत्ती : हिन्दी टीका (तीन खण्डों में)
4. क्षपणासार
5. अमितगति निसंगयोगिराज विरचित - योगसार प्राभृत (प्रश्नोत्तरी टीका)
6. मरणकण्डिका (प्रश्नोत्तरी टीका)

● मौलिक रचनाएं :

1. श्रुतनिकुंज के किंचित् प्रसून
2. गुरु गौरव
3. श्रावक सोपान और बारह भावना
4. आनन्द की पद्धति अहिंसा
5. निर्माल्य ग्रहण पाप है
6. केवती विधान

● प्रश्नोत्तर लेखन :

1. धर्मप्रवेशिका प्रश्नोत्तर माला
2. धर्मोद्योत प्रश्नोत्तर माला
3. छहढाला
4. इष्टोपदेश
5. स्वरूपसम्बोधनपंचविंश

● संकलन - सम्पादन :

1. वत्थुविज्जा (खण्ड 1 - गृहशिल्प)
2. वत्थुविज्जा (खण्ड 2 - मंदिरशिल्प)
3. श्रमणचर्या
4. समाधिदीपक
5. दीपावली पूजन विधि
6. श्रावक सुमन संचय
7. स्तोत्र संग्रह
8. श्रावक सोपान
9. आर्यिका आर्यिका है
10. संस्कार ज्योति
11. पाक्षिक श्रावक प्रतिक्रमण सामायिक विधि
12. वृहद् सामायिक पाठ एवं व्रती श्रावक प्रतिक्रमण
13. आचार्य शान्तिसागरजी महाराज का संक्षिप्त जीवनवृत्त
14. रात्रिक / दैवसिक प्रतिक्रमण (अन्वयार्थ सहित)
15. पाक्षिकादि प्रतिक्रमण
16. वास्तुविज्ञान परिचय
17. नित्यनियमपूजा
18. शान्तिधर्म प्रदीप
19. नारी बनो सदाचारी
20. महावीरकीर्ति स्मृति ग्रन्थ : एक अनुशीलन
21. ऐसे थे चारित्र चक्रवर्ती
22. चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर चरित्र

करणानुयोग के बहुप्रतिष्ठित ग्रन्थ 'त्रिलोक सार' की हिन्दी टीका के 1974 में प्रकाशन के साथ ही जैन गणित के क्षेत्र में एक अभाव की पूर्ति हुई। इसके उपरान्त आपने करणानुयोग के ही अति प्राचीन ग्रन्थ, आचार्य यतिवृषभ कृत 'तिलोयपण्णत्ति' के सम्पादन के काम को हस्तगत किया। 1981 में उदयपुर जाने के उपरान्त पूर्व प्रकाशित तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थ की टीका का कार्य हाथ में लिया। वास्तव में माताजी की भावना तिलोयपण्णत्ति के गणितीय भाग के विवेचन की ही थी। उन्होंने स्वयं लिखा है - 'पूर्व सम्पादकद्वय एवं हिन्दी कर्ता विद्वानों के श्रम के फल को सुरक्षित रखने के लिये ग्रन्थ का मात्र गणित भाग स्पष्ट करना है, अन्य किसी विषय को स्पर्श करना नहीं है।' पूज्य माताजी के इसी निर्णय के कारण आपकी टीका गणितज्ञों के लिये विशेष महत्व की बन गई। मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता एवं गौरव की अनुभूति हो रही है कि प्रो. लक्ष्मीचन्द्र जैन (जबलपुर) के साथ भुझे भी तिलोयपण्णत्ति टीका के सम्पादन की प्रक्रिया में उदयपुर में इसके गणितीय भाग को देखने का अवसर प्राप्त हुआ।

माताजी की उपरोक्त टीका में पूर्व टीका से अतिरिक्त 115 गाथायें, 90 चित्र, 95 तालिकायें सम्मिलित हैं। इस टीका के माध्यम से अनेक गणितीय गुत्थियाँ सुलझी हैं।

पूज्य माताजी के प्रति हम सभी जैन गणित के अध्येताओं की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि।

\* गणित विभाग - होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर - 452017



## श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार 2001 समर्पण समारोह केकड़ी, 26.5.2002

■ जयसेन जैन\*

राजस्थान प्रान्त के अजमेर जनपद के अन्तर्गत केकड़ी शहर में सराकोद्वारक संत परमपूज्य उपाध्यायरत्न श्री ज्ञानसागरजी महाराज की प्रेरणा से श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ द्वारा प्रवर्तित श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार-2001 का समर्पण समारोह 26 मई 2002 को भव्य समारोह में सम्पन्न हुआ। केकड़ी (राज.) में नवनिर्मित भव्य जिनालय की वेदी प्रतिष्ठा एवं श्री मज्जिनेन्द्र पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के अंतिम दिन मोक्ष कल्याणक के समापन के पश्चात् पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी व मुनि श्री इन्द्रनन्दिजी के ससंघ सान्निध्य में आयोजित इस समारोह के प्रमुख अतिथि केन्द्रीय वस्त्र राज्यमंत्री श्री वी. धनंजयकुमार थे। विशिष्ट अतिथि के रूप में स्थानीय विधायक एवं समाज के वरिष्ठ समाजसेवी बड़ी संख्या में उपस्थित थे।

मंगलाचरण के पश्चात् उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी के गुरु पूज्य आचार्य श्री 108 सुमतिसागरजी महाराज के चित्र के समक्ष अतिथिगणों ने दीप प्रज्ज्वलित किया। पश्चात् डॉ. अनुपम जैन द्वारा संकलित एवं संपादित श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ द्वारा प्रदत्त पुरस्कारों की परिचायिका, अन्य ग्रंथों एवं डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर' द्वारा लिखित जैन संस्कृति कोश के 3 खण्डों तथा 'सन्मतिवाणी' मासिक का विमोचन सम्पन्न हुआ।

प्रमुख अतिथि केन्द्रीय मंत्री श्री वी. धनंजयकुमार ने पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कहा कि पूज्य उपाध्यायश्री द्वारा जैन धर्म की अपूर्व प्रभावना हो रही है। देश के पूर्वी क्षेत्र स्थित प्रांतों के निवासी सराक बन्धुओं के उद्धार एवं उन्हें जैन धर्म के अनुसरण हेतु प्रेरित करने हेतु पूज्य उपाध्यायश्री ने जो अभूतपूर्व प्रयास किये हैं, वे श्लाघनीय हैं। श्रमण संस्कृति के अन्य साधकों को भी इस क्षेत्र में आगे आकर सहयोग देना चाहिये। उन्होंने आगे कहा कि विश्व में जैन धर्म ही एक ऐसा धर्म है जिसके सिद्धान्तों पर चल कर विश्व शांति संभव है। भगवान महावीर के 2600 वें जन्म कल्याणक महोत्सव वर्ष हेतु सरकार ने 100 करोड़ रु. आबंटित कर हमारे जैन धर्म का सम्मान ही किया है, धर्म प्रभावना के क्षेत्र में इस राशि का भरपूर सदुपयोग किया जाना चाहिये।

पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज ने महती धर्मसभा को आशीर्वाद देते हुए कहा कि आप लोग 'कंकर से शंकर', 'आत्मा से परमात्मा' तथा 'भक्त से भगवान' बनें, यही हमारी भावना है। उन्होंने केन्द्रीय मंत्री श्री धनंजयकुमार, डॉ. अनुपम जैन तथा श्रुत संवर्द्धन संस्थान के समस्त पदाधिकारियों की भी प्रशंसा करते हुए उन्हें धर्मवृद्धि हेतु आशीर्वाद दिया। पूज्य उपाध्यायश्री ने केकड़ी समाज की भी मुक्त मंठ से प्रशंसा की जिन्होंने इस छोटे से नगर में प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का वृहद् आयोजन सफलतापूर्वक सम्पन्न कराने में तन, मन व धन समर्पित किया। आपने पुरस्कार प्राप्त करने वाले विद्वज्जनों को भी धर्म प्रभावनार्थ आजीवन संलग्न रहने हेतु आशीर्वाद दिया।

पुरस्कार समर्पण समारोह में पुरस्कृत समस्त विद्वानों को प्रमुख अतिथि श्री धनंजयकुमारजी,

विशिष्ट अतिथिगण तथा समाज के पदाधिकारियों द्वारा मंगल तिलक, माल्यार्पण, श्रीफल, उत्तरीय, शाल, प्रशस्तिपत्र, स्मृति चिन्ह व रु. 31000/- की नगद राशि भेंटकर सम्मानित किया। सर्वप्रथम आचार्य श्री शांतिसागर (छाणी) स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार-2001 जैन आगम साहित्य के पारम्परिक अध्येता पं. मल्लिनाथ जैन शास्त्री (चैन्नई) को परोक्ष रूप में समर्पित किया गया।



श्री जयसेन पुरस्कार प्राप्त करते हुए

वाले जैन विद्या के शोध व अनुसंधान के क्षेत्र में समर्पित विद्वान डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर' (नागपुर) रहे। जबकि मुनिश्री वर्द्धमानसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार-2001 प्राप्त करने वाली गाजियाबाद की परम विदुषी महिला डॉ. (श्रीमती) नीलम जैन रहीं।

इसी प्रकार सराक वर्ग के लोगों के उत्थान हेतु की गई प्रशंसनीय सेवा के लिये साद्धम (बोकारो) निवासी डॉ. कमलकुमार जैन को परोक्ष रूप से सम्मानित किया गया।

उल्लेखनीय है कि संस्थान द्वारा ये पुरस्कार सन् 1991 से विभिन्न क्षेत्रों में समर्पण देने वाले मनीषी जैन विद्वज्जनों को समर्पित किये जाते रहे हैं तथा अब तक संस्थान द्वारा 26 विद्वानों को सम्मानित किया जा चुका है।

केकड़ी के इतिहास में संभवतः यह प्रथम अवसर था जबकि विशाल स्तर पर यह भव्य आयोजन सम्पन्न हुआ।

'श्रुत संवर्द्धन संस्थान' के सम्माननीय अध्यक्ष प्रो. नलिन के. शास्त्री (लखनऊ) ने संस्थान की वर्तमान गतिविधियों एवं भविष्य की रूपरेखा पर प्रकाश डाला। कार्यध्यक्ष श्री योगेशकुमार जैन (खतौली), महामंत्री श्री हंसकुमार जैन (मेरठ) तथा कोषाध्यक्ष श्री विवेक जैन (गाजियाबाद) ने समारोह को सुव्यवस्थित रूप से सम्पन्न कराने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। पुरस्कार समिति के संयोजक डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर) ने समारोह का सशक्त संचालन किया तथा श्री महावीरप्रसाद सिंघल (केकड़ी) ने समस्त आगत अतिथि एवं विद्वज्जनों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की।

\* संपादक - सन्मतिवाणी,

महावीर ट्रस्ट, 63, म.गांधी मार्ग, इन्दौर - 452 001



## गोपाचल विरासत दशा एवं दिशा राष्ट्रीय संगोष्ठी

ग्वालियर - 7 से 8 सितम्बर, 2002

■ डॉ. अभयप्रकाश जैन \*

परम पूज्य 108 मुनि श्री पुलकसागरजी महाराज एवं 105 कुल्लक श्री प्रयोगसागरजी महाराज के मंगल सान्निध्य में श्री दिग. जैन वर्षायोग समिति ग्रेटर ग्वालियर ने डॉ. अभयप्रकाश जैन ग्वालियर के संयोजकत्व में 7 और 8 सितम्बर को द्विदिवसीय 'गोपाचल दशा एवं दिशा' विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया। चार सत्रों में सम्पन्न इस संगोष्ठी में 12 विद्वान सम्मिलित हुए और उन्होंने अपने वक्तव्य एवं शोध पत्र प्रस्तुत किये। संगोष्ठी में बाहर से आये हुए प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन (फिरोजाबाद), डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर), पं. नीरज जैन (सतना), डॉ. हरिवल्लभ माहेश्वरी (चेन्नई), डॉ. नीलम जैन (गाजियाबाद) एवं स्थानीय विद्वानों में डॉ. कांति जैन, डॉ. कृष्णा जैन, डॉ. लालबहादुर सिंह, डॉ. अभयप्रकाश जैन, श्री रामजीत जैन एडवोकेट एवं डॉ. अशोककुमार जैन ने अपने विचार प्रकट किये।

संगोष्ठी का उद्घाटन मंगलाचरण एवं प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन द्वारा दीप प्रज्वलन से हुआ। वर्षायोग समिति के अध्यक्ष श्री प्रदीप जैन 'मामा', महामंत्री श्री नत्थीलाल जैन, श्री अजय जैन, रवीन्द्र जैन, महेश जैन आदि के सहयोग से समागत विद्वानों का बैज एवं सम्पुट (किट), माल्यार्पण से सम्मान किया गया। सत्र की अध्यक्षता प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन एवं मुख्य आतिथ्य को पं. नीरज जैन ने स्वीकार किया। अपने उद्घाटन वक्तव्य में बोलते हुए श्री सतीश जी अजमेरा ने गोपाचल तीर्थक्षेत्र के गौरव को स्पष्ट करते हुए कहा कि गोपाचल सुप्रतिष्ठ केवली की तपस्थली है, अतः सिद्धक्षेत्र है। विश्व की सबसे बड़ी पद्मासन भगवान पार्श्वनाथ की 42 फुट ऊंची प्रतिमा यहाँ स्थापित है तथा यह अतिशय का केन्द्र है। किन्तु पुरातत्व विभाग के संरक्षित स्मारकों में होने के कारण आज गोपाचल का विकास नहीं हो पाया है। समाज की निष्क्रियता भी इसमें एक बड़ा कारण रही है। गोपाचल हमारी धरोहर है। हमें इस सांस्कृतिक मेरुदण्ड को बचाना है इसी उद्देश्य को लेकर यह संगोष्ठी आयोजित की गई है। मंच पर उपस्थित सभी विद्वानों का वाचिक स्वागत करते हुए आपने कहा -

**खुद ही सवाल हैं ये, खुद ही जबाब हैं ये  
देख लो परख लो, गुदड़ी के लाल हैं ये।**

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी ने अपने वक्तव्य में कहा कि भारतीय संस्कृति में मंदिर, मूर्ति, माला, मंत्र और महात्मा इन पांच प्रकारों में जन-जन की आस्था केन्द्रित हैं। भारत का कोई भी धर्म ऐसा नहीं है जिसमें इनको माहात्म्य नहीं दिया गया है। मंदिर श्रेष्ठ नागरिक बनने की सर्वोत्तम कार्यशाला है तो मूर्ति में जीवन्त भगवान् की कल्पना है, महात्मा, मुनि हमारी आस्था एवं भक्ति के केन्द्र हैं, प्रभु तक पहुँचने का मार्ग बताने वाले हैं। जिन आचार्यों की प्रेरणा से तोमरकालीन राजाओं ने मूर्तियों का निर्माण कराया वे वन्दनीय हैं लेकिन वह तो अब संसार में नहीं है। इनको संरक्षित करना हमारा दायित्व है। मुनिश्री की प्रेरणा अत्यन्त सराहनीय है जिसके कारण ग्वालियर समाज गोपाचल तीर्थ के विकास एवं संरक्षण के लिए कृत संकल्पित हुआ है।

मुनि श्री पुलक सागर जी ने अपने मंगल उद्बोधन में कहा कि जब बाबर ने

मूर्तियों को शीशविहीन कर खण्डित किया तब जैन समाज की चुप्पी ही गोपाचल के लिए कलंक बन गई थी और तब से आज तक इस क्षेत्र का क्षरण ही हो रहा है। आपने उपस्थित जनसमुदाय को गोपाचल जीर्णोद्धार के लिए अपना सब कुछ समर्पित करने की प्रेरणा प्रदान की।

संगोष्ठी का द्वितीय सत्र दोपहर 2.30 बजे चेम्बर ऑफ कामर्स भवन में आयोजित किया गया। पूज्य मुनि श्री के साथ ही मंच पर आर्यिका विपश्यना श्रीजी आर्यिका संघ के साथ मंच पर विराजमान थी। सत्र की अध्यक्षता श्री शिवकुमार विवेक (संपादक दैनिक भास्कर) ने की एवं श्री वीरेन्द्र गंगवाल जी (अध्यक्ष ग्वालियर मेला प्राधिकरण) इस सत्र के मुख्य अतिथि थे। इस सत्र में डॉ. लालबहादुर सिंह, डॉ. नीलम जैन, डॉ. कांति जैन एवं डॉ. कृष्णा जैन ने अपने शोधपत्र प्रस्तुत किये। गोपाचल के इतिहास, उसकी वर्तमान दशा पर विचार करते हुए उसके जीर्णोद्धार के सम्बन्ध में अपने-अपने सुझाव प्रकट किये एवं नारी शक्ति का आव्हान किया कि वह भी इस सिद्धक्षेत्र के संरक्षण में कदम से कदम मिलाकर आगे आये।



संगोष्ठी का तृतीय सत्र जी.वाय. एम.सी. परिसर में आरंभ हुआ जिसकी अध्यक्षता श्री पारस जी गंगवाल ने की एवं पं. नीरज जी जैन इस सत्र के मुख्य अतिथि थे। इस सत्र के प्रथम वक्ता श्री रामजीत जी जैन एडवोकेट ने कई अनछुए पहलुओं की ओर सभा का ध्यान आकृष्ट किया। आपका मानना है कि गोपाचल पर एक पत्थर की बावड़ी से भी अधिक सुन्दर मूर्तियाँ हैं जो किसी ने नहीं देखी, उनके लिए अभी रास्ता दुर्गम है, वहाँ यदि आवागमन के साधन सुलभ हो जायें तो वह भी अनुपम समूह बन सकता है।

डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर) जो इसके पूर्व भी गोपाचल पर कई बार सर्वेक्षण के समय उपस्थित थे, उन्होंने उस समय से आज तक हुए प्रगति कार्य को प्रस्तुत करते हुए अनेक सुझाव गोपाचल जीर्णोद्धार के लिए प्रस्तुत किए एवं डॉ. कृष्णदत्त बाजपेई द्वारा लिखित एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में सुरक्षित अंग्रेजी भाषा की कृति GOPACHAL की पाण्डुलिपि

मुनि श्री के अवलोकन हेतु उपलब्ध कराई। आपने अत्यन्त विस्तार से 1990 से 2002 के घटनाक्रम, पूर्व में किये गये प्रयासों, उनके परिणामों की समीक्षा की। आपने कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा 1990 से 1997 तक डॉ. टी. व्ही. जी. शास्त्री के नेतृत्व में चली गोपाचल सर्वेक्षण, अभिलेखीकरण एवं मूल्यांकन परियोजना की उपलब्धियों, प्रकाशित पुस्तकों आदि की जानकारी देने के साथ ही अग्रांकित कार्ययोजना प्रस्तुत की।

1. पर्वत पर बनी मूर्तियों तथा गुफाओं की सफाई कर यहाँ काई, फंगस आदि से मुक्त कर इनका रासायनिक परिरक्षण कराना चाहिये। जिससे मूर्तियों एवं अन्य कलात्मक पत्थरों का क्षरण रोका जा सके। पानी का रिसाब रोकना भी जरूरी है। पूरी योजना का निर्माण भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा कराया जाना चाहिये। उनकी विशेषज्ञता का लाभ सभी दृष्टियों से हितकर है, संसाधन रूप में हम मदद कर सकते हैं।
2. इस क्षेत्र में धार्मिक एवं ऐतिहासिक पर्यटन की असीम संभावनाएँ हैं। एतदर्थ इसके चतुर्दिक उद्यान, मार्ग विद्युतीकरण कार्य आदि का विकास कर आधारभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराना चाहिये। कार्य चल रहा है, यह देखकर कुछ संतोष है, किन्तु गंदगी को रोकना प्राथमिक रूप से आवश्यक है।
3. पर्वत के जैन पुरातत्व से सम्बद्ध सभी भागों पर एक V.D.O. फिल्म का निर्माण कराया जाना चाहिये, विशेषतः शिलालेखीय अंशों को संरक्षित किया जाना चाहिये। पूर्व में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की मन्दिर सर्वेक्षण योजना में शायद कुछ काम हुआ है।
4. लगभग 16 पृष्ठ की एक लघु परिचयात्मक पुस्तिका का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी/अंग्रेजी में प्रकाशन किया जाना चाहिये। इसमें प्रकाशित सामग्री या चित्रों की गुणवत्ता पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। इसका मूल्य प्रतीकात्मक रु. 2.00/5.00 हो, भले ही लागत 10 - 15 रुपये आये। हम इसमें सहयोग हेतु प्रस्तुत हैं।
5. डॉ. शास्त्री द्वारा लिखित एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित पुस्तक का हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित होना चाहिये। डॉ. अभयप्रकाश जैन द्वारा इसका अनुवाद कराया जाये, ज्ञानपीठ इसके सम्पादन एवं प्रकाशन करने हेतु प्रस्तुत है। संसाधन ट्रस्ट को उपलब्ध कराना जरूरी है।
6. गोपाचल पर भावी अध्ययन में उपयोगी समस्त उपलब्ध सामग्री (प्रकाशित/अप्रकाशित) का संकलन यहाँ उपलब्ध कराया जाना चाहिये। श्री रामजीत जैन एडवोकेट की पुस्तक गौरवता का गौरव-गोपाचल का पुनर्प्रकाशन, डॉ. रागिनी त्रिपाठी के जीवाजी वि.वि. में 1982 में प्रस्तुत प्रबन्ध का प्रकाशन भी अपेक्षित है।
7. कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा गोपाचल के विविध भागों के लगभग 500-600 चित्र खींचे गये थे। इसमें अनेक तो ऐसे हैं जिनका छायांकन अत्यन्त दुष्कर था। इन चित्रों की एक प्रदर्शनी यहाँ आयोजित की जानी चाहिये। चित्रों का आकार बड़ा होना चाहिये जिससे वह ध्यान आकृष्ट करे। आवश्यकतानुसार नये चित्र भी खिंचवाये जा सकते हैं।
8. विख्यात पुराविद् प्रो. के. डी. बाजपेयी से भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली ने गोपाचल पर एक पुस्तक लिखाई थी। इसकी प्रति प्रो. बाजपेयी ने अपने सारंगपुर प्रवास में 1992 में लेखक को दिखाई थी। इसकी एक प्रति साहू श्री अशोकजी ने ज्ञानपीठ के यशस्वी अध्यक्ष श्री देवकुमारसिंहजी कासलीवाल को ग्वालियर में एक बैठक में प्रदान की थी।



वह प्रति आज भी ज्ञानपीठ में सुरक्षित है। किन्तु मूलप्रति शायद भारतीय ज्ञानपीठ में कहीं गुम हो गई। भारतीय ज्ञानपीठ के अनुरोध पर हमने यह प्रति उसे कुछ माह पूर्व उपलब्ध करा दी है। इसकी छायाप्रति यहाँ भी उपलब्ध है। इसके सुन्दर आकर्षक रूप में प्रकाशित करने की आवश्यकता है। एतदर्थ आवश्यक चित्रों को उपलब्ध कराने एवं सम्पादन कार्य हेतु हम प्रस्तुत हैं। यदि ट्रस्ट संसाधन उपलब्ध कराये तो कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ प्रकाशित कर सकता है।

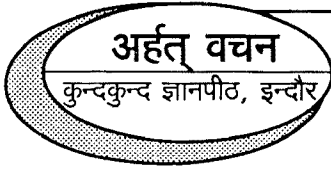
9. मुझे यहाँ ट्रस्ट के पदाधिकारियों एवं समाज के वरिष्ठजनों से ज्ञात हुआ कि परस्पर कुछ अविश्वास है, सहयोग वांछित स्तर पर नहीं मिल रहा है। ट्रस्ट के संसाधनों की सीमा है अतः उक्त सुझावों के क्रियान्वयन हेतु वर्तमान ट्रस्ट द्वारा ही व्यापक आधार वाली जीर्णोद्धार एवं विकास समिति गणित की जाये। समिति का स्वरूप अखिल भारतीय होना चाहिये। वह अधिकार सम्पन्न भी हो किन्तु वह ट्रस्ट से परामर्श कर विकास कार्य करे।

संगोष्ठी का समापन सत्र दोपहर 2.30 चेम्बर ऑफ कामर्स के भवन में आरंभ हुआ जिसकी अध्यक्षता श्री सुभाष जैन ने की। डॉ. हरिवल्लभ माहेश्वरी जी ने इन्टेक द्वारा सम्पन्न किये गए गोपाचल सम्बन्धी कार्यों पर प्रकाश डाला एवं बताया कि अभी भी गोपाचल का कुछ हिस्सा पुरातत्व की संरक्षित सूची में नहीं है जिसका विकास जैन समाज अपने हाथ में ले सकती है। डॉ. अशोक जैन ने गोपाचल की मूर्तियों के रखरखाव के वैज्ञानिक तरीकों की ओर सभा का ध्यान आकृष्ट किया। डॉ. अभयप्रकाश जैन ने गोपाचल की धरोहर को सुरक्षित करने, सूचीकरण एवं नष्ट हुए मंदिरों को चिन्हित करने एवं वैज्ञानिक तरीकों से उसके संरक्षण पर बल दिया। पं. नीरज जैन ने पुरातत्व के माध्यम से एवं उसके सहयोग से किस प्रकार जीर्णोद्धार के कार्य किए जा सकते हैं, इस सम्बन्ध में अपने वक्तव्य को प्रस्तुत करते हुए पुरातत्व विभाग की नीतियों से सभी को अवगत कराया।

डॉ. अभयप्रकाश जैन ने सभी आगन्तुक अतिथियों के प्रति आभार व्यक्त किया। वर्षायोग समिति की ओर से सभी विद्वानों को शॉल, श्रीफल एवं माल्यार्पण से सम्मान किया गया। पं. नीरज जैन, सतना को संगोष्ठी में 'वाणी भूषण' की उपाधि से अलंकृत किया गया।

पूज्य मुनिश्री ने अपने समापन मंगलाशीष में कहा कि संगोष्ठी के माध्यम से जो भी बिन्दु सामने आये हैं हमें उन पर अमल करना चाहिए।

\* एन. - 14, चेतकपुरी,  
खालियर - 474 009



## सिरिभूवलय अनुसंधान परियोजना बढ़ते कदम

■ डॉ. महेन्द्र कुमार जैन 'मनुज'\*

आचार्य श्री कुमुदेन्दु (9 वीं शदी) द्वारा रचित सिरिभूवलय अद्भुत ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का परिचय जब भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद जी को दिया गया तो उन्होंने इसको संसार का आठवाँ आश्चर्य बताया और इसे राष्ट्रीय महत्व का कहकर इसकी पाण्डुलिपि राष्ट्रीय अभिलेखागार में सुरक्षित करवाई। इस ग्रन्थराज में 18 महाभाषाएँ तथा 700 कनिष्ठ भाषाएँ गर्भित हैं। अंकराशि से निर्मित यह ग्रन्थ अद्वितीय सिद्धान्तों पर आधारित है, विज्ञान का भी यह अभूतपूर्व ग्रन्थ है।

इस ग्रन्थ में बड़ा वैचित्र्य है। इसमें 27 पंक्ति (लाइनें) और 27 स्तंभ (कालम) में 729 खाने युक्त कई टेबल हैं, खानों में 1 से 64 तक अंकों का प्रयोग किया गया है, अंकों से ही अलग-अलग अक्षर बनते हैं, उन अक्षरों से इस ग्रन्थ के श्लोक पढ़ने के कई सूत्र हैं, उन्हें "बंध" कहा जाता है। बंधों के अलग-अलग नाम हैं। जैसे - चक्रबंध, हंसबंध, पद्मबंध, मयूरबंध आदि। बंध खोलने की विधि का जानकारी ही इस ग्रन्थ का वाचन कर सकता है। इसके एक-एक अध्याय के श्लोकों को अलग-अलग रीति से पढ़ने पर अलग-अलग ग्रन्थ निकलते हैं। इसमें ऋषिमंडल, स्वयंभू स्तोत्र, पात्रकेशरी स्तोत्र, कल्याणकारक, प्रवचनसार, हरिगीता, जयभगवद्गीता, प्राकृत भगवद्गीता, संस्कृत भगवद्गीता, कर्नाटक भगवद्गीता, गीर्वाण भगवद्गीता, जयाख्याना महाभारत आदि के अंश गर्भित होने की सूचना तो है ही साथ ही अब तक अनुपलब्ध स्वामी समन्तभद्राचार्य विरचित महत्वपूर्ण ग्रन्थ गंधहस्ती महाभाष्य के गर्भित होने की भी सूचना है। इसमें ऋग्वेद, जम्बूदीवपण्णत्ती, तिलोपपण्णत्ती, सूर्यप्रज्ञप्ति, समयसार तथा पुष्पायुर्वेद, स्वर्ण बनाने की विधि आदि अनेक विषय गर्भित हैं। भगवान् महावीर की दिव्यध्वनि (विशेष उपदेश) जैसे विभिन्न भाषा-भाषियों को अपनी-अपनी भाषा में सुनाई देती थी, ठीक वही सिद्धान्त इसमें अपनाया गया है, जिससे एक ही अंकचक्र को अलग-अलग तरह से पढ़ने पर अलग-अलग भाषाओं के ग्रन्थ और विषय निकलते हैं।

इस पर अनुसंधान के परिणाम स्वरूप अनेक विलुप्त ग्रन्थ प्रकाश में आएँगे। आज की चिकित्सा पद्धति से भी उच्च चिकित्सा पद्धति प्रकाश में आने की संभावना है, जो संपूर्ण मानव जाति को कल्याणकारी होगी। तात्कालिक 718 भाषाओं में निबद्ध हमारी संस्कृति उद्घाटित होगी जिसमें कई चौंकाने वाले तथ्य प्रकाश में आएँगे।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने 'सिरि भूवलय अनुसंधान परियोजना' पर 1 अप्रैल 2001 से विधिवत कार्य प्रारंभ किया है। अब तक का प्रगति विवरण इस प्रकार है -

### चार शोध यात्राएँ

सिरिभूवलय पर अब तक अनुसंधान का प्रयत्न करने वाले मनीषियों, संस्थाओं से उनके द्वारा किए प्रयत्नों की जानकारी, संभावित सहयोगी विद्वानों के सम्पर्क, परियोजना सम्बन्धित पाण्डुलिपि आदि के अन्वेषण हेतु उक्त अवधि में डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज'

(लेखक) ने चार अनुसंधान यात्राएँ की।

1. **राजस्थान प्रांत - 22 से 25 अप्रैल 2001 तक** राजस्थान प्रांत की शोध यात्रा की गई इसमें मुख्य रूप से जगत (गींगला) जिला उदयपुर की यात्रा जहाँ आचार्यश्री कनकनंदी जी महाराज संघ सहित विराजमान थे। उन्होंने 20 वर्ष पूर्व सिरिभूवल्य पर अनुसंधान के प्रयत्न किए थे। उनसे उपयोगी मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

2. **कर्नाटक प्रांत - 7 से 23 जून 2001 तक** कर्नाटक प्रान्त की 17 दिवसीय अनुसंधान यात्रा की गई। यह यात्रा बहुत ही महत्वपूर्ण थी। इसमें विशाधिक मनीषियों से भेंट व चर्चा की गई। जिनमें श्रवणबेलगोला के भट्टारक स्वस्ति श्री चारुकीर्ति स्वामीजी, अरहंतगिरी के भट्टारक स्वस्ति श्री धवलकीर्ति जी, मूडबिद्री के भट्टारक स्वस्ति श्री चारुकीर्तिजी, कनकगिरी के भट्टारक श्री भुवनकीर्ति जी, प्रो. वी.एस. सण्णैया, डॉ. सुरेश कुमार, पं. श्री प्रभाकर आचार्य, श्री वर्द्धमान उपाध्ये, पं. ऋषभकुमार शास्त्री - श्रवणबेलगोला, डॉ. शुभचन्द्र, प्रो. एम.डी. वसंतराज - मैसूर, पं. देवकुमार शास्त्री - मूडबिद्री, ब्र. आदिसागरजी - होंमुज, श्री वीरेन्द्र हेगड़े - धर्मस्थल, श्री लक्ष्मी ताताचार्य मेलकोटले, डॉ. एच.एस. वेंकटेशमूर्ति, श्री वाय.के. जैन, श्री जिनेन्द्रकुमार, श्री ए.वाय. धर्मपाल, पं. देवकुमार शास्त्री, वैद्यश्री वासुदेव मूर्ति बैंगलौर प्रमुख थे। श्रवणबेलगोल, मूडबिद्री और कनकगिरि के प्राचीन ताडपत्रीय जैन शास्त्र भंडारों का भी सर्वेक्षण किया। पं. यल्लप्पा शास्त्री के पुत्र श्री ए.वाय. धर्मपाल से हम बैंगलौर में मिले, उनके पास सिरि भूवल्य की कुछ सामग्री है, किन्तु उन्होंने हमारा किसी भी तरह सहयोग करने से साफ इंकार कर दिया।

3. **मध्यप्रदेश - इन्दौर में संयोग प्राप्त आचार्यों, विद्वानों से प्राप्त मार्गदर्शन के अतिरिक्त 9 एवं 24 जून - 2001 को सागर (म.प्र.) की यात्रा की गई।** यहाँ आचार्य श्री देवनंदी जी महाराज संघ सहित विराजमान थे। इन्होंने 20 वर्ष पूर्व आचार्य कुंथुसागर जी महाराज के सान्निध्य में सिरिभूवल्य को वाचन आदि का प्रयास किया था। श्री गौराबाई दिग. जैन मंदिर, कटरा बाजार, सागर में मेरा सिरिभूवल्य पर 24 जून को एक व्याख्यान हुआ।

4. **दिल्ली व राजस्थान प्रदेश - 29 जुलाई से 4 अगस्त 2001 तक** दिल्ली एवं जयपुर की शोधयात्रा की गई। दिल्ली में राष्ट्रीय अभिलेखागार का सर्वेक्षण किया। दिल्ली में आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज - लाल मंदिर, आचार्य श्री विद्यानंद जी महाराज, डॉ. सुदीप जैन - कुंदकुंद भारती से मिले। यहाँ अपेक्षानुकूल मार्गदर्शन व सहयोग नहीं मिल सका। जयपुर में प्रमुख रूप से डॉ. जे.डी. जैन एवं श्री हेमन्त कुमार जैन से मिलें। इनके प्रोजेक्टर पर सिरिभूवल्य पाण्डुलिपि की माइक्रोफिल्म देखी। जयपुर में डॉ. शीतलचंद्र जैन, डॉ. सनतकुमार जैन, पं. राजकुमार जैन, पं. राजकुमार शास्त्री, पं. अनूपचंद न्यायतीर्थ, डॉ. कमलचंद सोगानी, पं. प्रद्युम्न कुमार जैन आदि विद्वानों से भेंट की।

#### **संगोष्ठियों / व्याख्यान**

1. 24 जून 2001 को गौराबाई दिग. जैन मंदिर, कटरा-सागर में आचार्य श्री देवनंदीजी महाराज के ससंघ सान्निध्य में सिरिभूवल्य पर व्याख्यान दिया।
2. 24-25 फरवरी 2002 को दि. जैन महिला संगठन, इन्दौर, अ.भा.दि. जैन महिला संगठन, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर एवं तीर्थकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ आदि के तत्वावधान में आयोजित विद्वत् संगोष्ठी में सिरिभूवल्य पर शोध आलेख वाचन किया।

3. 28 फरवरी 2002 को बण्डा - सागर में आचार्य श्री विद्यासागर जी, मुनि श्री अभयसागरजी व संघस्थ साधुवृन्दों के सान्निध्य में सिरिभूवल्य पर चर्चात्मक व्याख्यान दिया।
4. 21 अप्रैल 2002 को बड़वानी में आचार्य श्री सन्मत्तिसागरजी, आचार्य श्री सिद्धान्तसागरजी, बालाचार्य श्री योगीन्द्रसागरजी व गणिनी आर्यिका श्री विजयमती माताजी सभी के संसंध सान्निध्य में सिरिभूवल्य पर चर्चात्मक व्याख्यान दिया।
5. 30 अप्रैल 2002 को मोराजी सागर में आचार्य श्री विरागसागरजी महाराज के संसंध सान्निध्य में विशाल जनसमुदाय के बीच सिरिभूवल्य पर विशेष व्याख्यान दिया।

### उल्लेखनीय उपलब्धि

आचार्य कुमुदेन्दु द्वारा केवल अंकों में रचित सर्वभाषामय अद्भुत ग्रन्थ सिरिभूवल्य लगभग 400 अध्यायों की श्रुति है, किन्तु अभी तक 59 अध्यायों की सामग्री ज्ञात है। बेंगलूर (कर्नाटक) के श्री यल्लप्पा शास्त्री ने इस ग्रंथ की पाण्डुलिपि प्राप्त कर तथा विशिष्ट विधि से बंध खोलकर इसे पढ़ने और लिपिबद्ध करने में सफलता हासिल कर ली थी। आचार्य देशभूषण जी महाराज के सान्निध्य में शास्त्रीजी इसके हिन्दी अनुवाद के कार्य में संलग्न थे कि इनका सन् 1957 में आकस्मिक निधन हो गया। तब तक मात्र 14 अध्यायों का हिन्दी अनुवाद हो पाया था। शास्त्री जी के निधन के बाद आगे कार्य अवरुद्ध हो गया। तब से अनेक प्रयत्न किए गये, किन्तु किसी को अपेक्षित सफलता नहीं मिल पाई, क्योंकि प्रत्येक अध्याय को पढ़ने की विधि (बंध) अलग - अलग है।

मैंने बंध खोलने के अनेक प्रयत्न किए। कठिन परिश्रम के फलस्वरूप सिरिभूवल्य के तीन अध्यायों के बंध खोलने में मुझे सफलता मिल गई है। हमने इनके कुछ अंशों का कन्नड़ एवं देवनागरी पद्यमय लिपिकरण कर लिया है तथा इनमें से समयसार की प्राकृत गाथाएँ, षट्खण्डागम के कुछ गाथासूत्र, तत्त्वार्थसूत्र के सप्तम अध्याय के कुछ सूत्र और सर्वदोष प्रायश्चित्तविधि के कतिपय मंत्र अन्वेषित कर लिए हैं।

### अन्य सम्पन्न कार्य

इस अवधि में हमने सिरिभूवल्य अनुसंधान परियोजनान्तर्गत निम्नांकित कार्य सम्पन्न किए हैं -

1. श्री देवकुमारसिंह जी कासलीवाल के प्रयत्नों से प्राप्त सिरिभूवल्य के अंश की माइक्रोफिल्म का तथा उसके प्रिंट कन्नड़ लिपि एवं भाषा में होने के कारण विगत तीन वर्षों से अव्यवस्थित तथा अवाचित थे। सर्वप्रथम हमने इस सामग्री को व्यवस्थित किया, इसकी सूची बनाई और यह जाना कि बीच-बीच के कितने अंशों की सामग्री हमें उपलब्ध है।
2. मुद्रित, फोटोस्टेट कॉपी आदि सामग्री जो कन्नड़ में थी उसे पूर्ण व्यवस्थित किया।
3. प्रथम छमाही में हमने लगभग 200 साधुसंतों, विद्वानों, संस्थाओं से सघन पत्राचार किया, जिसके फलस्वरूप इस परियोजना को गति देने में हम सफल हुए हैं।
4. माइक्रो फिल्म देखने के लिये पुरातत्व विभाग के डॉ. नरेश पाठक से अनुरोध किया तो उन्होंने सहर्ष प्रोजेक्टर हमें उपलब्ध करा दिया। हमने उसको ठीक करके फिल्म देखने में सफलता पा ली किन्तु रीडिंग के लिये वह उपयुक्त नहीं है क्योंकि गर्म होने से फिल्म जलने का भय है।

5. दो बंधों को खोल (Decodie) कर 44 - 45 वर्षों से अवरुद्ध कार्य को गति देने में सफलता हासिल कर ली है।
6. माइक्रो फिल्म रीडर उपलब्ध नहीं होने से फिल्म पर से कोई कार्य किया नहीं जा सका। इसके जो प्रिंट थे बहुत अच्छे नहीं आये हैं। डॉ. शुभचन्द्रजी - मैसूर जैसे कई कन्नड़ के विद्वानों को भी हमने प्रिन्ट दिखाये, किन्तु उन्होंने पढ़ने में असमर्थता व्यक्त की। उनमें जो पत्र वाच्य हैं, हमने उन कन्नड़ पत्रों को पढ़ने का प्रयत्न किया।
7. अंकचक्रों में केवल तीन अंक-चक्र ऐसे थे जो अध्याय के प्रारंभ के तथा एक दूसरे सम्बद्ध थे। ये अंकचक्र 59 वें अध्याय के थे। इस अध्याय के बंध पढ़ने की विशिष्ट कुंजी ज्ञात कर अंकों से कन्नड़ लिपिकरण और देवनागरी लिपिकरण किया।
8. कन्नड़ आदि 14 भाषाओं के साफ्टवेयर संचालित करने के लिये मैं स्वयं कम्प्यूटर आपरेट करता हूँ। 14 लिपियों के अंक चक्र आदि निकाल कर विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत किये हैं।
9. एक बंध खोल (Decode) कर उसका कम्प्यूटर द्वारा कन्नड़ एवं देवनागरी लिपिकरण करके उसमें 34 भाषायें चिन्हित कर ली हैं।
10. सिरिभूवल्य में 718 भाषाओं होने के उल्लेखों को ध्यान में रखकर विश्व के 290 देशों एवं विश्व में प्रचलित 600 भाषाओं की सूचना प्राप्त कर ली है।

### सिरिभूवल्य की पाण्डुलिपि

अक्टूबर 2001 के अन्त में सिरिभूवल्य की पूर्ण पाण्डुलिपि कर ली गई है। इसमें 1252 अंकचक्र, 59 अध्याय हैं। इससे व्यवस्थित कार्य प्रारंभ किया जा सकता है।

### मार्गदर्शन

सिरिभूवल्य अनुसंधान परियोजना देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर के कुलपति प्रो. भरत छापरवाल, कुंदकुंद ज्ञानपीठ के अध्यक्ष श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल, निदेशक प्रो. ए. ए. अब्बासी, सचिव डॉ. अनुपम जैन एवं कोषाध्यक्ष श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल के मार्गदर्शन एवं सहयोग से गतिमान है।

### महत्व, सराहना व सहयोग

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के अध्यक्ष श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल विगत 13 - 14 वर्षों से सिरिभूवल्य को प्रकाश में लाने के लिये प्रयत्नशील रहे हैं। अप्रैल 2001 से इसका कार्य प्रारंभ हो जाने पर वे इतने वयोवृद्ध होते हुए भी कार्य की प्रगति जानने एवं अपना मार्गदर्शन प्रदान करने ज्ञानपीठ में नियमित आते हैं। ज्ञानपीठ के मानद सचिव डॉ. अनुपम जैन, प्रबन्धक श्री अरविन्दकुमार जैन एवं पुस्तकालयाध्यक्ष श्रीमती सुरेखा मिश्रा द्वारा भी अपने स्तरानुकूल इसमें योगदान प्रदान किया जा रहा है।

परियोजना के प्रारंभ में श्री दीपचन्द एस. गार्डी ज्ञानपीठ में पधारे, उन्होंने यह महत्वपूर्ण कार्य विधिवत संचालित करने के लिये ज्ञानपीठ को उत्साह एवं प्रेरणा प्रदान की। पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी, आचार्य श्री विद्यानन्दजी, आचार्य श्री सन्मतिसागरजी, आचार्य श्री कनकनदीजी, आचार्य श्री देवनदीजी, आचार्य श्री विरागसागरजी, आचार्य श्री सिद्धान्तसागरजी, उपाध्याय मुनि श्री निजानन्दसागरजी, उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी, कर्मयोगी चारुकीर्ति भट्टारकजी - श्रवणबेलगोला, भट्टारक श्री भुवनकीर्ति, भट्टारक श्री चारुकीर्ति - मूडबिद्री, भट्टारक श्री

धवलकीर्ति - अरहंतगिरी ने उत्साहवर्द्धन करते हुए आशीर्वाद प्रदान किया है। मंगलोर वि.वि. के कुलपति प्रो. एस. गोपाल ने अपनी शुभकामनायें प्रेषित की हैं। केन्द्रीय संचार राज्य मंत्री श्रीमती सुमित्रा महाजन, अ.भा.दि. जैन विद्वत् परिषद के पूर्व अध्यक्ष डॉ. रमेशचन्द्र जैन - बिजनौर, प्रो. नलिन के. शास्त्री - बोधगया, पं. श्री गुलाबचन्द आदित्य - भोपाल तथा स्थानीय विद्वानों ने इस कार्य को संचालित करने के लिये ज्ञानपीठ की सराहना की है तथा अभूतपूर्व सफलता हासिल करने के लिये हमें शुभकामनायें प्रदान की हैं।

### उपलब्ध साधन व तैयारी

सिरिभूवल्य विविध विषयों व 700 वे अधिक भाषाओं में होने से इस परियोजना के संचालन के लिये सर्वप्रथम सम्पन्न पुस्तकालय का होना जरूरी था जो कि ज्ञानपीठ का लगभग 10000 ग्रन्थों से युक्त हमें सुलभ है। ज्ञानपीठ में संचालित प्रकाशित जैन साहित्य सूचीकरण परियोजना के माध्यम से अन्य ग्रन्थ भंडारों के लगभग 40 हजार ग्रन्थों की सूची भी हमें उपलब्ध है।

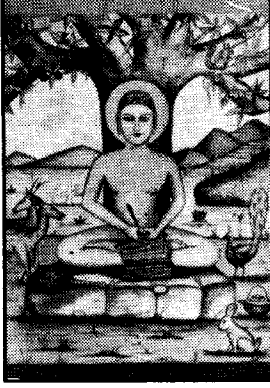
परियोजना संचालन हेतु आधुनिक संगणन केन्द्र (Computer Centre) कुंदकुंद ज्ञानपीठ में स्थापित कर लिया गया है। इसमें निम्नांकित साफ्टवेयर सुविधाओं को उपलब्ध कर लिया गया है -

1. अंग्रेजी से ग्रीक भाषा के लिप्यानुवाद का Word Processor 425.exe. उपलब्ध।
2. अंग्रेजी से फ्रेंच भाषा के लिप्यानुवाद का Word Processor 314.exe. उपलब्ध।
3. बरहा साफ्टवेयर - इससे अंग्रेजी वर्णों की फीडिंग से हिन्दी, अंग्रेजी, कन्नड़, मराठी, संस्कृत में अनुवाद होता है।
4. आई लीप साफ्टवेयर में कन्नड़, तमिल, तेलगु, मलयालम, गुजराती, मराठी, पंजाबी, अंग्रेजी आदि 14 भाषाओं के लिप्यांतरण की सुविधा है।
5. श्रीलिपि साफ्टवेयर 5.0 जेम पैकेज उपलब्ध। इसमें देवनागरी, गुजराती, पंजाबी, बंगाली, असमी, उड़िया, तमिल, कन्नड़, तेलगु, मलयालम, सिंहल, सिन्धी, अरैबिक, रसियन, संस्कृत, इंग्लिश, डाइक्रिटिकल और सिम्बोल के फोन्ट और लिपिकरण की सुविधा है।

मुझे सिरिभूवल्य के अंतिम (59 वें) अध्याय का बंध खालने में प्रथमतः सफलता हासिल हो गई थी, इसलिये इसी से कार्य प्रारंभ कर दिया था। 59 वें अध्याय में 40 अंकचक्रों से 592 कन्नड़ श्लोक बनेंगे। अब तक हमने 380 श्लोक डिकोड कर लिये हैं, इनका देवनागरी और कन्नड़ लिपि में लिपिकरण कर लिया है। सभी की सहयोग की सद् इच्छायें, उत्कंठायें होते हुए भी सिरिभूवल्य परियोजना का अब तक का सम्पन्न कार्य एकव्यक्तीय - कार्योपलब्ध्याश्रित है। परियोजना का पूर्ण साफल्य संस्था के संकल्प, अनुकूल वातावरण, समुचित परिश्रमिक व उत्साहवर्द्धन और प्राचीन कन्नड़ के ज्ञाता विद्वानों की उपलब्धता पर निर्भर करेगा।

प्राप्त : 30.07.02

\* शोधधिकारी - सिरिभूवल्य परियोजना,  
C/o. कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, म.गांधी मार्ग,  
तुकोगंज, इन्दौर - 452 001



## सुदीर्घ आवश्यकता की पूर्ति

पुस्तक का नाम	: गणित सार सङ्ग्रह (मूल संस्कृत, अंग्रेजी लिप्यांतरण, अंग्रेजी एवं कन्नड़ अनुवाद तथा कन्नड़ टिप्पण सहित)
मूल रचनाकार	: महावीराचार्य (850 ई.)
अंग्रेजी अनुवाद	: रायबहादुर एम. रंगाचार्य, मद्रास
कन्नड़ अनुवाद	: प्रो. (डॉ.) पद्मावथम्मा, मैसूर
प्रकाशन वर्ष	: 2000 ई., मूल्य - रु. 750.00
पृष्ठ संख्या	: LVI + 835
प्रकाशक	: श्री सिद्धान्त कीर्ति ग्रन्थमाला, श्री होम्बुज मठ, होम्बुज (कर्नाटक)
समीक्षक	: डॉ. अनुपम जैन, गणित विभाग, होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर

1912 में मद्रास सरकार द्वारा गणित सार संग्रह के अंग्रेजी अनुवाद एवं टिप्पण सहित प्रकाशन के साथ ही विश्व समुदाय का ध्यान जैन गणितज्ञों की गौरवशाली परम्परा की ओर आकृष्ट हुआ। 1963 में प्रो. एल. सी. जैन द्वारा अंग्रेजी अनुवाद के आधार पर तैयार किया गया हिन्दी अनुवाद भी सोलापुर से प्रकाशित हो चुका है। किन्तु ये दोनों संस्करण वर्तमान में उपलब्ध न होने के कारण भारतीय गणित के अध्ययताओं को बहुत असुविधा हो रही थी। डॉ. पद्मावथम्मा ने न केवल इस अभाव की पूर्ति की है अपितु कन्नड़ भाषा भाषी अध्ययताओं की सुविधा हेतु इसका कन्नड़ अनुवाद टिप्पण सहित उपलब्ध कराया है। मूलतः कन्नड़ भाषी आचार्य महावीर की संस्कृत भाषा में लिखी इस कृति का कन्नड़ अनुवाद पाकर निश्चय ही कन्नड़ भाषा भाषियों को हर्ष होगा।

1912 में इस ग्रन्थ के प्रकाश में आने के बाद करणानुयोग समूह के जैन ग्रन्थों के गणितीय दृष्टि से अध्ययन का क्रम प्रारम्भ हुआ एवं प्रो. बी. बी. दत्त, प्रो. ए. एन. सिंह, प्रो. एल. सी. जैन, प्रो. टी. ए. सरस्वती आदि विद्वानों ने त्रिलोकसार, तिलोपपण्णत्ति एवं जम्बूद्वीपपण्णत्तिसंग्रहो आदि का अध्ययन किया। लगभग 9 दशकों में महावीराचार्य के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर पर्याप्त शोध कार्य हुआ है, इनको समाहित करते हुए हमने प्रो. सुरेशचन्द्र अग्रवाल के सहयोग से एक पुस्तक 'महावीराचार्य - एक समीक्षात्मक अध्ययन' लिखी थी जिसमें प्रदत्त सूचनाओं का प्रस्तुत कृति की भूमिका लिखते समय प्रो. पद्मावथम्मा ने उपयोग किया। वे स्वयं लिखती हैं - *'The book in Hindi on Mahāvīrācārya authored by Dr. Anupam Jain was quite useful for me to write the preface.'*

पुस्तक का मुद्रण निर्दोष एवं आकर्षक है। गणित इतिहास विशेषतः भारतीय गणित के अध्ययताओं हेतु पुस्तक उपयोगी है। अनुवाद कर्त्री इस श्रम एवं समय साध्य किन्तु महत्वपूर्ण कृति के सृजन हेतु बधाई की पात्र है।

## ‘जैन शिलालेखों और प्राचीन जैन ग्रंथ प्रशस्तियों का योगदान’ – संगोष्ठी

श्री गणेश वर्णी दि. जैन संस्थान, वाराणसी में आयोजित सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्र स्मृति व्याख्यानमाला के अन्तर्गत भारतीय इतिहास के निर्माण में जैन शिलालेखों एवं प्राचीन जैन ग्रंथ प्रशस्तियों का योगदान विषयक आयोजित पंचम व्याख्यान माला में राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित प्रो. राजाराम जैन, आरा ने प्रमुख वक्ता के रूप में बोलते हुए कहा कि जैन ग्रंथ प्रशस्तियों और शिलालेखों के अध्ययन और उपयोग के बिना भारतीय संस्कृति और इतिहास की समग्रता अधूरी ही रहेगी क्योंकि प्राचीन जैन शिलालेखों और ग्रंथ प्रशस्तियों में उल्लेखित लिथियों, राजवंश, नगरों / ग्रामों, आचार्य परम्परा आदि के उल्लेख बड़ी प्रामाणिकता से मिलते हैं। सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ डॉ. के.पी. जायसवाल, राखालदास बनर्जी के कथनानुसार उड़ीसा में भुवनेश्वर के पास स्थित विश्व विख्यात उदयगिरि की गुफाओं में हाथी गुम्फा में उपलब्ध जैन सम्राट खारवेल के शिलालेख के अनुसार भारतवर्ष का इतिहास लेखन कार्य प्रारंभ होता है। यदि वह शिलालेख न मिलता तो निश्चय ही ईसा पूर्व का भारतवर्ष का इतिहास अधकार युगीन ही बना रहता।

डॉ. जैन ने बडली, सम्राट अशोक एवं सम्राट खारवेल के प्राकृत शिलालेखों एवं ब्राह्मी लिपि के आधार पर बतलाया कि भारतवर्ष का प्राच्य कालीन इतिहास कितना शानदार रहा। डॉ. जैन ने आगे कहा कि खारवेल के शिलालेखों की 10 वीं पंक्ति में भारतवर्ष का नाम का उल्लेख न मिलता तो इस देश का नाम इतना सुन्दर न होता।

आपने आगे कहा कि इस समय विदेशों में भारतवर्ष की एक लाख सत्ताईस हजार पाँच सौ (1,27,500) पांडुलिपियाँ सुरक्षित हैं। उनका सूचीकरण एवं मूल्यांकन जब तक नहीं हो जाता, तब तक मध्यकालीन भारतीय इतिहास का सर्वांगीण लेखन नहीं हो सकता। प्रारंभ में उन्होंने पांडुलिपियों का महत्व, पांडुलिपि लेखन, उसकी आवश्यकता, प्रादुर्भाव और विकास, पांडुलिपियों के उपकरण, ईसा पूर्व की सदियों में कागज और भोज पत्रों के प्रयोग, पांडुलिपियों का कृति मूलक वर्गीकरण, कागज की पांडुलिपियाँ, भारतीय प्राचीन लिपियाँ, जैन साहित्य लेखन परम्परा पर विशद विवेचन करते हुए जैन पांडुलिपियों की प्रशस्तियों में उपलब्ध कुछ ऐतिहासिक सामग्री पर रोचक दृष्टि से प्रकाश डाला। अंत में उन्होंने व्याख्यानमाला के शताब्दी पुरुष पं. फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री को श्रद्धांजलि अर्पित की।

व्याख्यानमाला के संयोजक डॉ. फूलचन्द्र जैन ‘प्रेमी’ ने प्रारंभ में भारतीय इतिहास के निर्माण में जैन ग्रंथ प्रशस्तियों और शिलालेखों के योगदान की चर्चा करते हुए कहा कि यदि हमें भारतीय इतिहास का सही दृष्टि से अध्ययन करना है तो इस विषयक गंभीर अध्ययन और सर्वेक्षण आवश्यक है। सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के जीवन के उत्तरार्ध का अध्ययन करना है तो कर्नाटक के श्रवणबेलगोला में चन्द्रगुप्त मौर्य का शिल्पांकन का अध्ययन आवश्यक है। इसी तरह भारत के अनेक राजाओं, राजवंशों और नगरों के अध्ययन के लिये जैन ग्रंथ प्रशस्तियों का अध्ययन आवश्यक है।

मुख्य अतिथि के रूप में काशी विद्यापीठ के इतिहास विभागाध्यक्ष, प्रो. परमानन्दसिंह ने कहा कि जैन साहित्य अथाह है। जब तक हम प्राकृत, पालि, संस्कृत, अपभ्रंश आदि प्राचीन भाषाओं के साहित्य का अध्ययन नहीं करेंगे, तब तक भारतीय इतिहास के निर्माण में अनेक बाधाएँ सदा उपस्थित रहेंगी। इन भाषाओं के साहित्य की उपेक्षा भारतीय इतिहास और संस्कृति की उपेक्षा है। साहित्य समाज का दर्पण है। जैन साहित्य का भंडार इतना विशाल है कि कोई भी व्यक्ति जीवन में उसकी सूची भी बनाये तो भी संभव नहीं है। जैन ग्रंथ प्रशस्तियों से इतिहास की अनेक उलझी हुई गुत्थियाँ सुलझ सकती हैं।

अध्यक्षीय वक्तव्य में भारत कला भवन के पूर्व निदेशक प्रो. रमेशचन्द्रजी ने कहा कि इस व्याख्यानमाला के प्रमुख वक्ता प्रो. राजाराम ने जैन ग्रंथ प्रशस्तियों और शिलालेखों के भारतीय इतिहास के निर्माण में योगदान की चर्चा की है वह बहुत ही महत्वपूर्ण है, क्योंकि जैन साहित्य में, विशेषकर जैन पुराणों में भारतीय कला विषयक जो चिंतन का विकास मिलता है, वह अत्यंत दुर्लभ है।



प्राकृत भाषा और ब्राह्मी लिपि में उल्लिखित उदयगिरि-खण्डगिरि का शिलालेख भारतीय इतिहास के परिप्रेक्ष्य में बहुत महत्व रखता है। आपने गणेश वर्णी दि. जैन संस्थान के संस्थापक पं. फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री की जैन साहित्य के विकास में योगदान की सराहना की।

व्याख्यानमाला का शुभारंभ साध्वीद्वय श्री सिद्धान्तसागरजी एवं सम्म्वेगसागरजी के प्राकृत भाषा के मंगलाचरण एवं अरिहंतकुमार जैन के महावीराष्टक से हुआ। आरंभ में संस्थान के मंत्री डॉ. अशोककुमार जैन ने अतिथियों का स्वागत करते हुए संस्थान का तथा संस्थान के गौरवशाली प्रकाशनों का परिचय दिया। इस अवसर पर 'यह जीवन कठिन कहानी है' नामक आध्यात्मिक काव्य संग्रह पुस्तक का विमोचन प्रो. आर.सी. शर्मा ने अपने कर कमलों से किया। अंत में व्याख्यान माला के प्रमुख वक्ता प्रो. राजारामजी जैन का अंगवस्त्र, श्रीफल और माल्यार्पण द्वारा सम्मान किया गया। धन्यवाद ज्ञापन व्याख्यान माला के संयोजक एवं संस्थान के उपाध्यक्ष डॉ. फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी' ने किया।

■ डॉ. फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी'

## जैन महाविद्यालय अलवर में अहिंसा पर दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

**अलवर।** भगवान महावीर के 2600 वें जन्म कल्याणक महोत्सव वर्ष पर श्री आदिनाथ दिग. जैन शिक्षण संस्थान, अलवर में परम पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज के पावन सान्निध्य में अहिंसा पर आयोजित द्विदिवसीय संगोष्ठी का शुभारंभ ब्र. अनीताजी के मंगलाचरण से हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता की श्री पी.सी. जैन ने तथा दीप प्रज्ज्वलन किया जिला कलेक्टर महोदय ने।

संगोष्ठी में सम्मिलित डॉ. एच.सी. गुप्त, डॉ. सी.पी. माथुर, पं. निर्मल जैन (सतना), श्री रिवल्लीमल जैन एडवोकेट, श्री ताराचन्द्र प्रेमी, श्री पी.सी. जैन, श्री प्रकाशचन्द्र जैन, डॉ. संदीप जैन (दिल्ली), डॉ. अशोक जैन (लाइन्स) आदि विद्वानों ने अहिंसा के महत्व पर अपने विचार व्यक्त किये।

उपाध्याय श्री ने कहा कि हमारा देश वर्तमान में अनेकों गंभीर स्थितियों से गुजर रहा है, देश ही नहीं, पूरा विश्व आज अशान्त नजर आ रहा है। इसका कारण हिंसा का ताण्डव नृत्य है। चारों ओर झूठ, कपट, अन्याय, अनीति, अत्याचार का बोलबाला है। विश्व शान्ति हेतु आज भगवान महावीर के सिद्धान्तों की महती आवश्यकता है। 'प्रमत्तयोगात् प्राण व्यपरोपणं हिंसा', जैन दर्शन में अहिंसा की बहुत सूक्ष्म विवेचना है - जिसके जीवन में प्रमाद है, असावधानी, बेहोशी है, वहाँ हिंसा है और जिसके जीवन में सावधानी है, होश है, जागरुकता है, वहाँ अहिंसा है।

श्री आदिनाथ जैन शिक्षण संस्थान के अध्यक्ष श्री सुरेन्द्र जैन ने आभार व्यक्त किया।

■ मुकेश कुमार जैन शास्त्री

## महाराष्ट्र जैन इतिहास परिषद का अधिवेशन सम्पन्न

महाराष्ट्र जैन इतिहास परिषद का द्वितीय अधिवेशन आरा (बिहार) निवासी प्रो. (डॉ.) राजाराम जैन, मानद निदेशक - श्री कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली की अध्यक्षता में भातकुली दि. जैन अतिथय क्षेत्र, अमरावती (महा.) में दिनांक 12-13 जनवरी 2002 को सम्पन्न हुआ। इसमें जैन इतिहास सम्बन्धी शोध पत्र वाचन, विशिष्ट भाषण तथा विविध सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन किये गये।

इसका उद्घाटन अमरावती विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. सुधीर पाटिल ने किया। परिषद के महासचिव श्रेणिक अन्नदाते ने परिषद के कार्यकलापों पर विस्तृत प्रकाश डाला तथा मंच संचालन सौ. पद्मा चन्द्रकान्त महाजन एवं सौ. मीना गरीबे ने किया। परिषद के अध्यक्ष श्री सतीश संगई ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

■ सौ. पद्मा चन्द्रकान्त महाजन  
आयोजन सचिव, अमरावती (महा.)

## बासोकुण्ड में विद्वत् गोष्ठी सम्पन्न

बासोकुण्ड, मुजफ्फरपुर स्थित प्राकृत जैन शास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली में भगवान महावीर के 2600 वें जन्म कल्याणक महोत्सव के समापन समारोह के अवसर पर 25-26 अप्रैल 2002 को विद्वत् गोष्ठी का आयोजन किया गया। समारोह की अध्यक्षता भीमराव अम्बेडकर बिहार वि.वि., मुजफ्फरपुर के कुलपति प्रो. नीहारनन्दन सिंह ने की और दीप प्रज्ज्वलित कर उद्घाटन मुजफ्फरपुर के आयुक्त श्री जयराम लाल मीणा ने किया। संगोष्ठी का विषय था - 'आतंकवाद के शमन में तीर्थंकर महावीर के उपदेशों की प्रासंगिकता'।

संगोष्ठी के प्रथम सत्र में प्रो. प्रमोदकुमार सिंह - मुजफ्फरपुर, प्रो. देवनारायण शर्मा - मुजफ्फरपुर, डॉ. कमलेशकुमार जैन - वाराणसी, डॉ. जैनमती जैन - आरा आदि विद्वानों ने अपने शोध पत्र प्रस्तुत किये। आयुक्त महोदय ने विषय के महत्व को रेखांकित किया। संस्थान के निदेशक प्रो. लालचन्द जैन ने विषय प्रवर्तन करते हुए उक्त शीर्षक की सार्थकता एवं उद्देश्य को प्रतिपादित किया। अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रो. नीहारनन्दन सिंह ने कहा कि भगवान महावीर के उपदेश आज भी अत्यन्त प्रासंगिक हैं। उन्होंने कहा कि आतंकवाद को बमों और हथियारों से नहीं मिटाया जा सकता, उसके लिये तो हमें महावीर के अहिंसक सिद्धान्तों को ही अपनाना होगा। सत्रान्त में संस्थान के नवीन ग्यारह ग्रन्थों का लोकार्पण किया गया। सत्र का संचालन संस्थान के निदेशक प्रो. लालचन्द जैन ने किया। मंगलाचरण डॉ. मंजूबाला एवं श्रीमती पद्मा जैन ने किया।

26 अप्रैल को डॉ. कमलेशकुमार जैन (वाराणसी) की अध्यक्षता में दूसरा सत्र प्रारंभ हुआ जिसमें संस्थान के निदेशक प्रो. लालचन्द जैन, प्राध्यापक श्री शिवकुमार मिश्र, डॉ. मंजूबाला, डॉ. ऋषभचन्द्र जैन एवं श्री आनन्द भैरव शाही आदि विद्वानों ने उक्त संदर्भ में अपने विचार व्यक्त किये। इस सत्र का संचालन डॉ. ऋषभचन्द्र जैन ने किया।

### प्राकृत, जैन शास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान के एकादश ग्रन्थों का लोकार्पण

तीर्थंकर महावीर के 2600 वें जन्म कल्याणक महोत्सव वर्ष के समापन समारोह के अवसर पर बासोकुण्ड में स्थित प्राकृत जैन शास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान वैशाली, शिक्षा विभाग, बिहार सरकार द्वारा प्रकाशित निम्नांकित एकादश ग्रन्थों का भव्य लोकार्पण 25 अप्रैल 2002 को श्री जयरामलाल मीणा, आइ.ए.एस., आयुक्त तिरहुत प्रमण्डल, मुजफ्फरपुर एवं अध्यक्ष, कार्यकारिणी - प्रकाशन समिति, प्राकृत शोध संस्थान, वैशाली और प्रो. नीहारनन्दनसिंह, कुलपति - भीमराव अम्बेडकर बिहार वि.वि., मुजफ्फरपुर ने विद्वानों, जैन समाज के प्रतिनिधियों, पदाधिकारियों और स्थानीय प्रबुद्ध विशाल जनसमूह की उपस्थिति में किया।

1. अद्वैतवाद, प्रो. (डॉ.) लालचन्द जैन
2. पंचास्तिकाय का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. (श्रीमती) जैनमती जैन
3. नियमसार, सम्पादन, डॉ. ऋषभचन्द्र जैन 'फौजदार'
4. उपासकदशांगसूत्र, सम्पादन - अनुवाद, डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव
5. मृच्छकटिकम्, सम्पादन - अनुवाद, प्रो. रामकृष्ण पोद्दार
6. आर्हन्तिकी, डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव
7. लीलावई, सम्पादन - अनुवाद, प्रो. (डॉ.) लालचन्द जैन एवं डॉ. ऋषभचन्द्र जैन 'फौजदार'
8. कंसवहो, सम्पादन - अनुवाद, प्रो. (डॉ.) लालचन्द जैन एवं डॉ. (श्रीमती) जैनमती जैन
9. प्राकृत गद्य - पद्य - बंध, भाग - 3, हिन्दी अनुवाद, प्रो. (डॉ.) लालचन्द जैन एवं डॉ. ऋषभचन्द्र जैन 'फौजदार'
10. नयचक्र, सम्पादन - अनुवाद, प्रो. (डॉ.) लालचन्द जैन एवं डॉ. (श्रीमती) जैनमती जैन
11. तत्वसार, सम्पादन - अनुवाद, प्रो. (डॉ.) लालचन्द जैन एवं डॉ. (श्रीमती) जैनमती जैन

लोकार्पण कर्त्ताओं ने संस्थान के प्रकाशनों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। उक्त ग्रन्थों के लेखकों को इस अवसर पर शाल, श्रीफल एवं माल्यार्पण द्वारा सम्मानित किया गया।

■ लालचन्द जैन, निदेशक

## भगवान महावीर 2600 वॉ जन्म कल्याणक महामहोत्सव का समापन

नई दिल्ली। प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने गुरुवार, 25 अप्रैल 2002 को सीरीफोर्ट ऑडिटोरियम में आयोजित भगवान महावीर 2600 वॉ जन्म कल्याणक महोत्सव समापन समारोह में कहा कि भगवान महावीर का अहिंसा, करुणा, प्रेम और भाईचारे का संदेश हमें विश्व भर में फैलाना है। इस समारोह को समापन न मानकर भगवान महावीर के दर्शन व सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार की श्रृंखला आगे भी जारी रहनी चाहिये। प्रधानमंत्री ने कहा कि अनेकता में एकता का संदेश देने वाला भगवान महावीर का अनेकान्तवाद ही हमें भटकाव से बचा सकता है। वर्ष भर चला वह महोत्सव सरकारी तौर पर अवश्य समाप्त हुआ है लेकिन जैन समाज का दायित्व है कि वह महोत्सव के रचनात्मक कार्यक्रमों को जारी रखें। भारत सरकार इसमें पूरा सहयोग देगी तथा महोत्सव वर्ष के सभी कार्यक्रम पूरे किये जायेंगे। प्रधानमंत्री ने कहा कि सरकार पिछड़ जाये तो चिन्ता मत कीजिये, समाज को नहीं पिछड़ना है।

महोत्सव के भव्य समापन समारोह का यह आयोजन पर्यटन एवं संस्कृति मंत्रालय तथा भगवान महावीर 2600 वॉ जन्म कल्याणक महोत्सव महासमिति द्वारा किया गया। प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने मुख्य अतिथि के रूप में भाग लिया तथा केन्द्रीय पर्यटन व संस्कृति मंत्री श्री जगमोहन ने समारोह की अध्यक्षता की। केन्द्रीय गृहमंत्री श्री लालकृष्ण आडवाणी, वित्तमंत्री श्री यशवंत सिन्हा, केन्द्रीय कपड़ा राज्यमंत्री श्री धनंजयकुमार, केन्द्रीय संस्कृति सचिव श्री एन. गोपाल स्वामी, प्रसिद्ध विधिवेत्ता डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी एवं महासमिति की कार्याध्यक्ष श्रीमती इन्दु जैन मंच पर आसीन थे।

प्रधानमंत्री ने बोलते हुए आगे कहा कि आज से 2600 वर्ष पूर्व की कल्पना कीजिये जब भगवान महावीर ने अहिंसा एवं अनेकान्त का दर्शन दिया जिसमें धर्मनिरपेक्षता, सह अस्तित्व एवं सहिष्णुता का पाठ था। उनके सिद्धान्तों में बल प्रयोग का कोई स्थान नहीं था बल्कि आत्म बल की महत्ता थी। अनेकता में एकता ही सच्ची धर्म निरपेक्षता है।

उन्होंने कहा कि आज हम एक संकटपूर्ण हिंसा के दौर से गुजर रहे हैं। हो सकता है हम समय-समय पर भटक गये हों। ऐसी संकटपूर्ण स्थितियों से जूझना पड़ा हो, पर हम अपना धर्मनिरपेक्षता एवं अनेकता में एकता का लक्ष्य कभी नहीं भूलें। अंधकार में प्रकाश की यही एक किरण है जो हमें सही रास्ता दिखा रही है और हमें क्षणिक संकटों से उबारती रही है। अंधकार में ज्ञान के दीप का प्रकाश हमें अपना लक्ष्य मार्ग दिखायेगा। हमें विश्वास है कि यह स्थिति शीघ्र सुधर जायेगी। हमें निराश होने की जरूरत नहीं क्योंकि हमारा आधार मजबूत है और भविष्य उज्ज्वल है। उन्होंने गुजरात में हिंसा की घटनाओं पर पश्चिम व यूरोपीय देशों की टिप्पणियों पर कहा कि वे धर्मनिरपेक्षता पर हमें उपदेश न दें। भगवान महावीर का अहिंसा, अनेकान्त व सहिष्णुता का दर्शन धर्मनिरपेक्षता का दर्शन है जो हमारे पूर्वज हजारों साल पहले हमें सिखा गये हैं। हमें इसे कारगर रूप में अमल में लाना है। आत्मचिंतन की मुद्रा में उन्होंने विश्व के जैन मंदिरों का उल्लेख करते हुए कहा कि ये कलात्मक मंदिर हमें शताब्दियों से मानवता का संदेश दे रहे हैं। ये मंदिर कैसे बने, कैसे उनकी रक्षा हो, सभी इनका दर्शन करें, महावीर की मानवता का संदेश 'दुनिया भर में' फैले, यही हम चाहते हैं।

स्वागत भाषण करते हुए महासमिति की कार्याध्यक्ष श्रीमती इन्दु जैन ने जैन धर्म की आधारभूत देन - अहिंसा, अनेकान्त, धर्मनिरपेक्षवाद एवं पर्यावरण संरक्षण पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि अहिंसा एवं अनेकान्त से बड़ा कोई धर्म नहीं है जो सभी जीवों को जीवन जीने का समान अधिकार व दूसरों के मत को सम्मान देना सिखाता है। भगवान महावीर का अहिंसा का संदेश इस हिंसक विश्व में और अधिक समीचीन हो गया है। यह परम्परा प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ से प्रारंभ होकर आज तक प्रवाहित है। उन्होंने जैन समाज को 'अल्पसंख्यक' समुदाय घोषित करने की भी प्रार्थना सरकार से की। श्रीमती जैन ने कहा कि महावीर सबसे बड़े धर्मनिरपेक्ष थे जिन्होंने अपने संघ

में लिंग, जाति एवं वर्ण के भेदभाव के बिना श्रावकों को समान स्थान दिया और विपरीत विचारधारा वालों को भी सहजता से विवेकानुसार आदर देने का उपदेश दिया।

केन्द्रीय गृहमंत्री श्री लालकृष्ण आडवाणी ने इस बात पर बल दिया कि महावीर के संदेश की आज की हिसक परिस्थितियों में अधिक आवश्यकता एवं सार्थकता है। उनके जैन दर्शन के गहन ज्ञान से श्रोतागण तब अभिभूत हो गये जन उन्होंने रत्नत्रय-सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र की विस्तृत व्याख्या की। उन्होंने कहा कि रत्नत्रय में सम्यक् चारित्र सबसे महत्वपूर्ण है। दर्शन और ज्ञान को आचरण में उतारकर ही प्रत्येक व्यक्ति का जीवन सार्थक हो सकता है। श्री आडवाणी ने गुजरात का उल्लेख करते हुए कहा कि यही सही वक्त है जब भगवान महावीर के अहिंसावाद की सख्त जरूरत है।

केन्द्रीय वित्तमंत्री श्री यशवंत सिन्हा ने भारत की अर्थव्यवस्था में जैन समाज के महत्वपूर्ण योगदान की सराहना की और इस बात पर बल दिया कि इस समुदाय के योगदान को रेखांकित किये जाने की आवश्यकता है। उन्होंने कहा कि मैं जैन परिवार में तो नहीं जन्मा हूँ किन्तु मुझे गौरव है कि मेरा जन्म उस राज्य में हुआ जो भगवान महावीर की जन्म भूमि एवं कर्मभूमि है।

केन्द्रीय पर्यटन एवं संस्कृति मंत्री श्री जगमोहन ने बताया कि उनके मंत्रालय ने देशभर में जैन मंदिरों, तीर्थों, स्थापत्य - स्मारकों एवं पुरा - स्थलों के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिये 81 कार्य - योजनाओं प्रारम्भ की गई हैं। की राशि आवंटित की गई है। इनके लिये 51 करोड़ रुपये की राशि आबंटित की गई है। इन सभी महत्वपूर्ण स्थलों को पर्यटन की दृष्टि से एक प्रोजेक्ट के अन्तर्गत जोड़ा जायेगा और सड़क, पानी व बिजली की दृष्टि से उनका विकास होगा। उन्होंने रचनात्मक कार्यों पर बल देते हुए इस बात पर आश्चर्य व्यक्त किया कि हम प्रेरक जीवन सिद्धान्तों की बात तो करते हैं किन्तु कितने लोग हैं जो जीवन में उन्हें अपनाते हैं। श्री जगमोहन ने आश्चर्य व्यक्त किया कि महोत्सव वर्ष के शेष सभी कार्य पूरे होंगे और वित्तमंत्री श्री यशवंत सिन्हा की ओर देखते हुए कहा कि वित्तमंत्री शेष कार्यों के लिये इस वर्ष में पूरा बजट देंगे।

सांसद एवं विधिवेत्ता डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी ने कहा कि आज का दिन 'धन्यता और धन्यवाद' का दिवस है। प्रधानमंत्रीजी के प्रति हम कृतज्ञ हैं कि उन्होंने इस महोत्सव को अहिंसा वर्ष के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित किया और हम धन्य हैं कि भगवान महावीर का यह 2600 वाँ जन्म कल्याणक महोत्सव हम आजाद देश के रूप में मना रहे हैं। 2500 वें जन्म कल्याणक वर्ष के समय भारत पराधीन था, आज स्वाधीन है। महावीर एक सनातन विचार और दर्शन है जो हमारे जीवन मूल्यों को संस्कारित करता है। उन्होंने विश्व को 'मनुष्यता का संविधान' दिया। महावीर ने उस परम्परा से प्राणीमात्र को अनुप्राणित किया जो आध्यात्मिक जीवन - मूल्यों के रूप में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से प्रभावित थी।

इस ऐतिहासिक समारोह में प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने भारत सरकार द्वारा जारी 100 रुपये के स्मृति सिक्कों एवं 5 रुपये के प्रचलन सिक्कों का लोकार्पण किया। साथ ही प्रधानमंत्रीजी ने पंजाब सरकार के स्वर्ण एवं रजत मेडलियन का भी लोकार्पण किया। इन पर भगवान महावीर का योगासन मुद्रा में चित्र है तथा दूसरी ओर जैन प्रतीक एवं मंगल कलश है। साथ में 'अहिंसा परमोधर्मः' और 'जियो और जीने दो' अंकित है।

पंजाब सरकार के स्वर्ण एवं रजत मेडलियन की जानकारी निम्न प्रकार है - 10 ग्राम सोने के गोल्ड मेडलियन की कीमत रु. 5800/- है। 50 ग्राम के चांदी के मेडलियन की कीमत 700 रुपये है। बैंक ऑफ पंजाब तथा एच.डी.एफ.सी. बैंक की कुछ शाखाओं सहित पंजाब इम्पोरियम - 'फूलकारी' - सी-6, बाबा खड़कसिंह मार्ग, नई दिल्ली में इन मेडलियन के लिये बुकिंग की व्यवस्था है।

## सिख, बौद्ध व जैन को हिन्दू से अलग धर्म मानने का सुझाव

सिख, बौद्ध एवं जैन -मतावलंबियों की अलग पहचान को मान्यता देने की मंशा से संविधान समीक्षा आयोग ने सिफारिश की है कि सिख, बौद्ध और जैन पंथ को हिन्दू मत से 'अलग-धर्म' का माना जाना चाहिए और कहा कि इन पंथों के मतावलंबियों को हिन्दुओं से जोड़नेवाले संवैधानिक प्रावधान को खत्म कर देना चाहिए। गौरतलब है कि संविधान के अनुच्छेद 25 की मौजूदा स्पष्टीकरण 2 (अन्तःकरण की आजादी व स्वतंत्र-व्यवसाय, आचरण व धर्म-प्रचार) के तहत कहा गया है कि हिन्दुओं के संदर्भ में सिख, बौद्ध व जैन धर्म मानने वाले लोगों को भी शामिल करके अर्थ लगाया जाएगा और हिन्दुओं की धार्मिक-संस्थाओं का आशय भी उसी तरह होगा।

सरकार को सौंपी गई न्यायमूर्ति एम.एन. वेकटचलेया आयोग की सिफारिश के अनुसार संविधान के अनुच्छेद-25 के स्पष्टीकरण-2 को संविधान से हटाने के लिए कहा गया है। आयोग ने यह भी कहा है कि अनुच्छेद-25 में एक उपनियम जोड़ दिया जाए, जिससे जो बात इस अनुच्छेद के एक नियम में नहीं की गई है और इससे किसी मौजूदा-कानून का क्रियान्वयन प्रभावित न होता हो, या सामाजिक-कल्याण व सुधार के लिए कोई कानून बनाने से राज्य को रोकता न हो, या जो सार्वजनिक प्रकृति की हिन्दू धार्मिक-संस्थाओं को हिन्दू-समुदाय के सभी वर्गों के लिए खोलता हो।

आयोग ने इसी क्रम में आगे यह भी सुझाव दिया है कि अनुच्छेद-25 के नियम (2) के उपनियम (बी) को इस प्रकार पढ़ा जाए कि सामाजिक कल्याण व सुधार के लिए या हिन्दू, सिख, जैन व बौद्धों की सार्वजनिक महत्ववाली सभी धार्मिक-संस्थाओं का दरवाजा इन धर्मों के सभी वर्गों व समुदायों के लिए खोल दिया जाये।

## सर्वोदय शिक्षण शिविर में वर्गोदय का पाठ न पढ़ायें

— गणिनी ज्ञानमती

भगवान महावीर जयंती महोत्सव के पंचदिवसीय कार्यक्रम के अन्तर्गत पूज्य गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के संसंध सान्निध्य में फिरोजाबाद शहर में 27 अप्रैल 2002 को आयोजित 'रङ्गधू पुरस्कार' समारोह (श्री श्यामसुन्दरलाल शास्त्री श्रुत प्रभावक न्यास द्वारा) में पुरस्कार विजेता प्रख्यात समाजसेवी जीवनदादा पाटील (महा.) को प्रेरणा प्रदान करते हुए पूज्य माताजी ने उनके द्वारा आयोजित सर्वोदय शिक्षण शिविरों में वर्गोदय का पाठ न पढ़ाये जाने की अपनी आंतरिक भावना व्यक्त की। पूज्य माताजी ने कहा कि आज समाज भिन्न-भिन्न साधुओं से सम्बन्धित भक्तों रूपी वर्गों में विभक्त होता चला जा रहा है, यह प्रवृत्ति सर्वथा अवांछनीय है। श्रावकों के लिये तो सभी दिगम्बर जैन साधु-साध्वी पूजनीय हैं, अतः शिक्षा शिविरों के माध्यम से तो इस प्रवृत्ति को कतई बढ़ावा नहीं दिया जाना चाहिये। श्री जीवन दादा पाटील ने बड़े हर्ष एवं उत्साहपूर्वक तीन बार पूज्य माताजी के चरणों में नमोस्तु करके इस संकल्प को ग्रहण करते हुए पूज्य माताजी के प्रति अपने श्रद्धाभाव व्यक्त किये।

■ ब्र. (कु.) स्वाति जैन, संघस्थ

### कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार - 2002

एवं

### ज्ञानोदय पुरस्कार - 2002

हेतु आवेदन पत्र कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ कार्यालय में उपलब्ध हैं।

आवेदन की अन्तिम तिथि 31.12.2002

## श्री पारसदासजी जैन को 'साहू श्री अशोक जैन स्मृति पुरस्कार'



आचार्यश्री विद्यानन्दजी महाराज के सान्निध्य में आयोजित भव्य समारोह में वरिष्ठ पत्रकार व समाजसेवी श्री पारसदास जैन को 'साहू अशोक जैन स्मृति पुरस्कार' से सम्मानित करते हुए जस्टिस विजेन्द्र जैन।

नई दिल्ली। राष्ट्रसंत आचार्य श्री विद्यानन्दजी मुनिराज के 78 वें जन्मोत्सव पर उन्हीं के पावन सान्निध्य में 22 अप्रैल 2002 को परेड मैदान के वैशाली मण्डप में आयोजित एक ऐतिहासिक एवं भव्य समारोह में देश के वरिष्ठ पत्रकार एवं प्रमुख समाजसेवी श्री पारसदासजी जैन को उनकी अनन्य सामाजिक एवं साहित्यिक सेवाओं के लिये समाज के शीर्ष नेता साहू श्री अशोक कुमार जैन की पुण्य स्मृति में दिगम्बर जैन समाज बड़ौत द्वारा स्थापित वर्ष 2002 का 'साहू श्री अशोक जैन स्मृति पुरस्कार' प्रदान किया गया।

पुरस्कार समिति के अध्यक्ष श्री सुखमालचन्द जैन ने उन्हें माल्यार्पण, साहू श्री रमेशचन्द जैन ने शाल, समारोह के अध्यक्ष दिल्ली हाईकोर्ट के न्यायमूर्ति श्री विजेन्द्र जैन ने प्रशस्ति पत्र, श्रीफल एवं एक लाख रुपये की राशि प्रदान की। उन्हें स्वर्ण पदक पहनाकर 'श्रावक शिरोमणि' की उपाधि से भी अलंकृत किया गया। समारोह का विद्वत्तापूर्ण संचालन करते हुए डॉ. सुदीप जैन ने प्रशस्ति पत्र का वाचन किया।

आचार्यश्री ने अपने आशीर्वचन में कहा कि पारसदासजी ने साहू शांतिप्रसादजी, रमाजी, श्रेयांसप्रसादजी के साथ कार्य करते हुए जैन धर्म की प्रभावना में बहुत बड़ा योगदान दिया। अशोकजी इन्हें मित्र मानते थे। इन्होंने साहित्य, समाज और धर्म की महान सेवा की है। समाज इनकी सेवा भुला नहीं सकता। इनके पुत्र अनिल जैन भी नेपाल में जैन धर्म की भारी प्रभावना कर रहे हैं।

समारोह के मुख्य अतिथि केन्द्रीय सामाजिक न्यास एवं अधिकारिता मंत्री श्री सत्यनारायण जटिया ने कहा कि समाज में सद्कार्य करने वालों का सम्मान होना ही चाहिये। पारसदासजी की समाजसेवा सभी के लिये एक अनुकरणीय आदर्श है। लालबहादुर संस्कृत विद्यापीठ वि.वि. के उपकुलपति प्रो. वाचस्पति उपाध्याय ने कहा कि हम अशोकजी की तरह शोक रहित, मितभाषी, संकल्प के धनी पारसमणि बनें। आचार्यश्री ऐसे प्रकर्ष दीप हैं जो अपने सान्निध्य में आने वाले प्रत्येक प्राणी को ज्ञानवान बना देते हैं, इनकी छाया अमृत रूप।

भा.दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी एवं परिषद के राष्ट्रीय अध्यक्ष साहू रमेशचन्दजी ने पारसदासजी को निष्ठावान व सच्चरित्र समाजसेवी बताते हुए उनकी निःस्वार्थ समाजसेवा की सराहना की। डॉ. हुकमचन्द जैन भारिल्ल ने उनकी समाज की एकता के लिये किये गये प्रयासों की सराहना की।

श्री पारसदासजी ने आभार व्यक्त करते हुए कहा कि आचार्यश्री की दृष्टि व्यापक है, उन्हीं के आशीर्वाद से वे सेवा के कार्यों में आगे बढ़ सके हैं। साहू अशोकजी को समाज का गांधी बताते हुए उन्होंने कहा कि वे समन्वयवादी थे। हमेशा संगठन की बात करते थे। पारसदासजी ने श्रम और मानवता के प्रति अपनी अटूट आस्था को निरन्तर बनाये रखने का संकल्प व्यक्त करते हुए पुरस्कार राशि एक लाख रुपये समाजसेवी कार्यों में ही खर्च करने की घोषणा की।

## ‘आचार्य कुन्दकुन्द’ एवं ‘आचार्य उमास्वामी’ पुरस्कार समर्पित

गत 28 अप्रैल 2002 को राष्ट्र संत आचार्य श्री विद्यानन्दजी के मंगल सान्निध्य एवं पूर्व लोकसभाध्यक्ष श्री शिवराज पाटिल के मुख्य आतिथ्य में अ.भा. आयुर्विज्ञान संस्थान के जवाहरलाल नेहरू सभागार में प्राकृत भाषा के क्षेत्र में विशेष कार्य हेतु डा. नामवरसिंह को आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार तथा संस्कृत भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान हेतु प्रो. वाचस्पति उपाध्याय को आचार्य उमास्वामी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इन पुरस्कारों का संयोजन कुन्दकुन्द भारती, दिल्ली द्वारा किया जाता है।

पुरस्कृत मनीषी विद्वानों को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार की ओर से हार्दिक बधाई।

## वाग्भारती पुरस्कार 2000 एवं 2001 की घोषणा

युवा विद्वानों व नव प्रतिभाओं को प्रोत्साहन देने की मूल भावना से स्थापित वाग्भारती पुरस्कार की घोषणा कर दी गई है। वर्ष 2000 का वाग्भारती पुरस्कार डॉ. उज्ज्वला सुरेश गौसवी (जैन), औरंगाबाद को तथा वर्ष 2001 का पुरस्कार पं. पवनकुमार जैन ‘दीवान’ शास्त्री, मुरैना को प्रदान करने का निश्चय किया गया है। पुरस्कार में रु. 11,111/- की नगद राशि, प्रतीक चिन्ह, अभिनन्दन पत्र, वस्त्र आदि भेंट किया जाता है। इसकी स्थापना डॉ. सुशीलकुमार जैन, मैनपुरी द्वारा वर्ष 1998 में पूज्य मुनि श्री प्रज्ञासागरजी, मुनि श्री प्रसन्नसागरजी महाराज के सान्निध्य में की गई थी। वर्ष 98 का पुरस्कार पं. शैलेन्द्र जैन, बीना तथा 99 का पुरस्कार डॉ. सुरेन्द्र जैन ‘भारती’, बुरहानपुर को प्रदान किया गया था। डॉ. श्रीमती उज्ज्वला गौसवी को यह पुरस्कार पू. मुनि श्री प्रज्ञासागरजी महाराज के सान्निध्य में श्रुत पंचमी पर्व पर रांची में तथा पं. पवनकुमारजी जैन को यह पुरस्कार 1 सितम्बर को प्रदान किया गया।

वर्ष 2002 के लिये नाम पुनः सादर आमंत्रित हैं। विद्वान की आयु 40 वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिये तथा वे पर्व पर प्रवचनार्थ अवश्य जाते हों।

■ डॉ. सौरभ जैन, मंत्री - वाग्भारती ट्रस्ट, मैनपुरी

## डॉ. महावीर राज गेलरा महादेवलाल सरावगी आगम मनीषा पुरस्कार से सम्मानित



तेरापंथ श्वेताम्बर जैन धर्मसंघ के यशस्वी आचार्य श्री महाप्रज्ञजी की पावन सन्निधि में 21 जनवरी 2002 को जैन विश्व भारती संस्थान के पूर्व कुलपति तथा जैन दर्शन एवं विज्ञान के प्रख्यात विद्वान प्रो. एम.आर. गेलरा को रु. 51,000 = 00 के महादेवलाल सरावगी जैन आगम मनीषा पुरस्कार 2002 से सम्मानित किया गया। डॉ. गेलरा को यह पुरस्कार जैन आध्यात्मिक साहित्य के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान हेतु प्रदान किया गया।

## प्रो. के.के. जैन, बीना

## अहिंसा इन्टरनेशनल भगवानदास शोभालाल जैन शाकाहार पुरस्कार - 2000 से सम्मानित



शासकीय महाविद्यालय बीना में राजनीति विज्ञान के प्राध्यापक एवं एन.सी.सी. अधिकारी प्रो. (मेजर) के.के. जैन को शाकाहार के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य हेतु वर्ष 2000 के अहिंसा इन्टरनेशनल भगवानदास शोभालाल जैन पुरस्कार - 2000 से सम्मानित किया गया। बधाई।

## **Renowned Scholar of Jainology**

### **Dr. Vasantraj Honoured with Felicitation Volume**

Renowned Scholar, Retd. Professor and Head of the Dept. of Jainology in Mysore and Madras Universities was felicitated on the eve of his completing 75 years of age. Prof. Shubhchandra welcomed and told that Dr. Jayendra Soni will reveal a surprise. Dr. Soni, Professor, Martburg University-Germany brought out a packet from his bag and requested Prof. Hegde, Vice-Chancellor of Mysore University to release it and offered it to Dr. Vasantraj. The gathering was rather curious to know and see it. Dr. Hedge opened and announced that it was rather curious to know and see it. Dr. Hegde opened and announced that it was a felicitation volume '**Vasant Gouram**' edited by Dr. Soni. He had spent nearly two years to collect research papers from scholars on Jainology from all over the world and kept it a secrete. Dr. Hedge appreciated the scholarship of Dr. Vasantraj and desired that the universities should come forward to utilise the scholarship of such retired scholars. On hearing the title of Felicitation Volume, the gathering was mered and silently extended warm appreciation to Dr. Soni for his efforts in recognising the qualities of an Indian Scholar. It may be said that this is the first event that an Indian Scholar has been honoured with felicitation volume by a Profesor of German University, containing research papers in Jainology by scholars from India and abroad.

Dr. Vasnatraj replying for his felicitation expressed his happiness to the Vice-Chancellor of the University, where he had rendered service for long time had come for the function. He acknowledged the love and affection of students, friends and admirors and especially Mr. & Mrs. Soni for his selfless venture.

Shri Rajshekhar Kuti, Editor-Andolan daily, was the chief guest on the occasion. He appreciated the contribution of Dr. Vasantraj to the study and research in Jainology. He also expressed his admiration for Dr. Soni's noble work.

The function was organised in the residence of Dr. Vasantraj in Kuvempunagar, Mysore. Smt. Ratnavatidevi Vasantraj, Dr. Soni, Luitguard Soni were on the dias. Smt. H.R. Leeladevi, President, State Sangeet Nratya Academy, Famous singer H.S. Kaghuram, Dr. Taranath, Shri Chandrakeerti were few among the members attended the function.

---

### **डॉ. सुदीप जैन सम्मानित**

प्राकृत विद्या के यशस्वी सम्पादक डॉ. सुदीप जैन को वर्ष 2002 के प्राकृत भाषा विषयक राष्ट्रपति सम्मान से सम्मानित करने की घोषणा की गई।

इस सम्मान हेतु ज्ञानपीठ परिवार की हार्दिक बधाई।



## जैन धर्म की सर्वोत्तम पुस्तकों पर दो लाख रुपयों के पुरस्कार की घोषणा

भगवान महावीर फाउण्डेशन, चेन्नई ने भगवान महावीर के 2600 वें जन्म कल्याणक महोत्सव वर्ष के उपलक्ष्य में जैन धर्म एवं दर्शन की हिन्दी व अंग्रेजी की सर्वोत्तम पुस्तक पर प्रत्येक पर एक लाख रुपये पुरस्कार स्वरूप प्रदान करने का निश्चय किया है। प्रत्येक पुरस्कार प्राप्तकर्ता को प्रशस्तिपत्र एवं स्मृतिचिन्ह भी प्रदान किये जायेंगे।

इस पुस्तक को लिखवाने का उद्देश्य एक ही है कि एक ही पुस्तक द्वारा जैन धर्म एवं दर्शन का हार्द (मर्म) अभिव्यक्त हो। पुस्तक की भाषा सरल एवं सरस होनी चाहिये ताकि सामान्य जिज्ञासु व्यक्ति (जैन एवं जैनेत्तर) भी उसका आशय भलीभांति समझ सके। इस पुस्तक में किसी विशेष जैन सम्प्रदाय का प्रस्तुतीकरण नहीं होना चाहिये। प्रस्तुत की जाने वाली पुस्तक में भगवान महावीर के सार्वभौमिक सिद्धान्तों का आधुनिक ढंग से प्रतिपादन तथा वर्तमान युग की समस्याओं के समाधान में उसकी उपयोगिता आदि का प्रतिपादन अवश्य किया जाना चाहिये। विषय को और अधिक सुगम बनाने के लिये पुस्तक में चित्र एवं रेखा चित्र भी दिये जा सकते हैं। पुस्तक का शीर्षक आकर्षक हो। सामान्यतया पुस्तक की अनुमानित पृष्ठ संख्या 250 से अधिक नहीं होनी चाहिये। पुस्तक लेखक की मौलिक तथा अप्रकाशित कृति होनी चाहिये। इस पुरस्कार के अतिरिक्त, फाउण्डेशन अपनी इच्छानुसार ऐसी अन्य कृतियों को, यदि योग्य पायी गई तो रु. 50000/- प्रत्येक के दो पुरस्कार भी प्रदान कर सकती है। चयन समिति द्वारा विचारार्थ पुस्तक की पाण्डुलिपि की छह प्रतियाँ पृष्ठ (ए/4 साइज) के एक तरफ टाइप कराकर जमा करानी होगी। प्रारंभ में पुस्तक का सारांश, जो दस पृष्ठों से अधिक न हो, फाउण्डेशन को प्रेषित करना होगा। फाउण्डेशन हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषाओं के विद्वानों को उपर्युक्त नियमों के आधार पर जैन धर्म एवं दर्शन पर सर्वोत्तम पुस्तक लिखने के लिये आमंत्रित करता है। अन्य विवरण हेतु संयोजक से निम्न पते पर सम्पर्क करें -

**दुलीचन्द जैन, संयोजक**

पो.बा. 2983, 11 पोन्नप्पा लेन, ट्रिप्लिकेन हाई रोड, चेन्नई - 600 005

फोन : 044 - 8571066, 8571246

---

### चिन्तक / लेखकों के लिये अपूर्व अवसर

चिन्तनशील लेखकों को यह जानकारी प्रसन्नता होगी कि श्री दिग. जैन साहित्य, संस्कृति, संरक्षण समिति के संस्थापक सुश्रावक श्री शिखरचन्द्रजी जैन, नई दिल्ली ने भगवान महावीर के 2600 वें जन्मकल्याणक समारोह वर्ष को सार्थक बनाने हेतु भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित अहिंसा विषय पर लिखित सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ पर रु. 51,000/- के पुरस्कार की घोषणा की है। यह पुस्तक मौलिक होने के साथ-साथ रोचक शैली तथा सरल भाषा में सर्वगम्य होनी चाहिये।

वर्तमानकालीन विषम समस्याओं के समाधान में अहिंसा की उपयोगिता, साथ ही जैनेत्तर प्राच्य एवं पाश्चात्य चिन्तकों द्वारा प्रतिपादित अहिंसा की परिभाषाओं से जैन अहिंसा के वैशिष्ट्य का प्रतिपादन भी उसमें अनिवार्य है। इस बात का ध्यान रखना भी आवश्यक होगा कि उसमें इतर धर्मों के प्रति छींटाकशी न हो तथा वह ग्रंथ पूर्णतया निर्विवाद हो।

अनेक विद्वानों के पास सूचना पत्र प्रेषित किये जा चुके हैं। फिर भी यदि किसी कारण से उनके पास सूचना न पहुँची हो, तो निम्न पते पर पत्र लिखकर विस्तृत जानकारी मंगवाने की कृपा करें -

**शिखरचन्द जैन**

डी - 302, विवेक विहार, नई दिल्ली - 110 095

फोन : 011 - 2152244, 2167631 फैक्स : 011 - 2281100

## डॉ. पाटील 'चामुण्डराय पुरस्कार' से सम्मानित

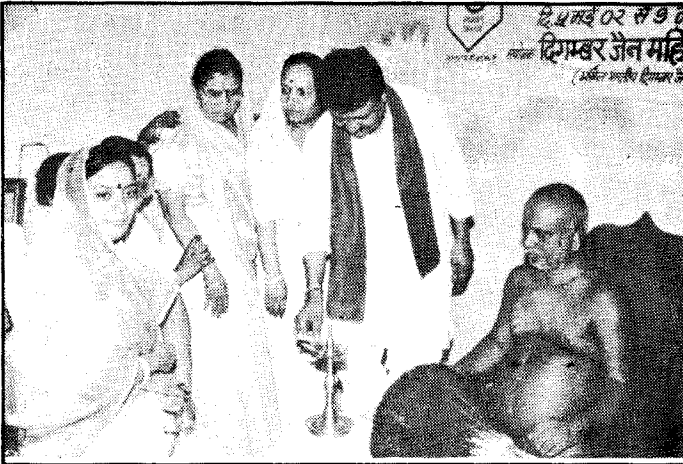
कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़ के कन्नड़ तथा जैन शास्त्र विषय के सेवानिवृत्त अध्यापक डॉ. पाटील को उनके समीक्षात्मक संशोधन प्रबन्ध 'चामुण्डराय पुराण - एक अध्ययन' के लिये कन्नड़ साहित्य परिषद, बेंगलूर की ओर से प्रस्तुत वर्ष 2001-2002 का 'चामुण्डराय पुरस्कार' घोषित हुआ। शेडवाल (जि. बेलगांव) के डॉ. पाटील ने 'जैन संस्कृति तथा साहित्य', 'जैन संस्कृति तथा त्योहार', 'कर्नाटक और मराठी साहित्य', 'स्त्री', 'अतिथि' तथा मराठी लेखिकाओं की कथाओं का अनुवाद सहित लगभग 40 ग्रन्थों की रचना की है।

## 26 प्रतिभाएँ 'जैन रत्न' से सम्मानित

भगवान महावीर 2600 वें जन्म जयंती समारोह की पूर्णता पर जैन समाज दिल्ली के सौजन्य से शाह ऑडिटोरियम, दिल्ली में 28.4.2002 को जैन रत्न अलंकरण समारोह आयोजित किया गया। पूज्य उपाध्याय मुनि श्री गुप्तिसागरजी महाराज के मंगल सान्निध्य, N.C.E.R.T. के अध्यक्ष प्रो. जे. एस. राजपूत के मुख्य आतिथ्य तथा लखनऊ टेक्निकल वि.वि. के उपकुलपति प्रो. दुर्गासिंह चौहान की अध्यक्षता में सम्पन्न इस कार्यक्रम में देश के शीर्षस्थ जैन समाजसेवी सम्मिलित हुए।

■ मनोज जैन, दिल्ली

## विशाल जैन संस्कार शिविर सम्पन्न



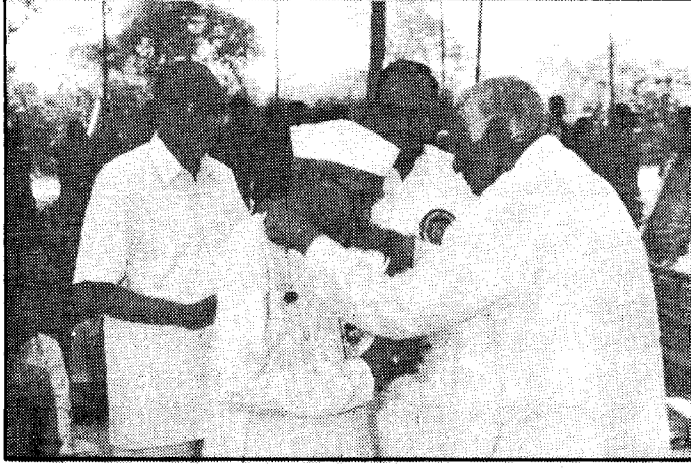
श्रमण संस्कृति विद्या वर्द्धन ट्रस्ट, इन्दौर तथा दिगम्बर जैन महिला संगठन, इन्दौर के संयुक्त तत्वावधान में दिनांक 5 से 9 मई 2002 के मध्य गोम्मटगिरि पर विशाल जैन बाल संस्कार शिविर पूज्य उपाध्याय मुनि श्री निजानन्दसागरजी महाराज के मंगल सान्निध्य में आयोजित किया गया। इस अत्यन्त सफल शिविर में 300 बच्चे सम्मिलित हुए। कार्यक्रम के संयोजन में श्रीमती सुमन जैन, श्रीमती मीना विनायक्या, श्रीमती उषा पाटनी की प्रमुख भूमिका रही।

## वैद्य ज्ञानचन्द्रजी 'ज्ञानेन्द्र' का निधन



ढाणा के वयोवृद्ध कवि, साहित्यकार एवं समाजसेवी पंडित वैद्य ज्ञानचन्द्रजी जैन 'ज्ञानेन्द्र' का दुःखद निधन हो गया। आप कई सामाजिक, धार्मिक संस्थाओं से जुड़े हुए थे। आपने कई वर्तमान ज्वलन्त समस्याओं से जुड़े सामाजिक और धार्मिक विषयों को कविताओं के माध्यम से जनसाधारण तक पहुँचाया। आपने देश के स्वतंत्रता संग्राम आन्दोलन में भी खुलकर भाग लिया। आपको अखिल भारतीय जैन स्वतंत्रता सेनानी समारोह में महामहिम राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित किया गया। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ से भी आप परोक्ष रूप में जुड़े रहे हैं। ज्ञानपीठ की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि।

## वयोवृद्ध विद्वान पं. नाथूरामजी डोंगरीय - इन्दौर सम्मानित



सुप्रसिद्ध वि. जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी में 27 अप्रैल 2002 को सार्वजनिक मेले के अवसर पर विद्या वयोवृद्ध पं. नाथूरामजी डोंगरीय, इन्दौर को उनकी सद्यः लिखित एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित कृति 'समीचीन सार्वधर्म सोपान' ग्रन्थ के उपलक्ष्य में श्री जैन विद्या संस्थान, श्रीमहावीरजी द्वारा उनके संयोजक डॉ. कमलचन्द सोगानी तथा क्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष एवं मान्य समस्त पदाधिकारियों द्वारा बड़ी प्रसन्नता एवं उत्साह के साथ तिलक लगाकर, मोतियों का हार पहनाकर, शाल ओढ़ाकर प्रशस्ति-पत्र के साथ रु. 5,000/- समर्पण कर अभिनन्दन किया गया।

समारोह में परमपूज्य 108 मुनि श्री क्षमासागरजी महाराज का सान्निध्य प्राप्त था तथा जैन/अजैन हजारों की संख्या में जनता मौजूद थी। यह पुरस्कार ब्र. पूर्णचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया के नाम से प्रायोजित था। पुरस्कार के संयोजक डॉ. कमलचन्द सोगानी ने पंडितजी का परिचय देते हुए ग्रन्थ की सार्वजनिक एवं सार्वभौमिक उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए उसे आधुनिक अनेक भ्रमों का निवारक प्रतिपादित किया तथा उसे एक निर्दोष युगीन श्रावकाचार घोषित किया तथा समाज में उसके प्रचार-प्रसार की आवश्यकता पर बल दिया।

### जैन धर्म - दर्शन एवं संस्कृति तथा अपभ्रंश पत्राचार प्रमाणपत्र (Certificate) पाठ्यक्रम 2003 में प्रवेश

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी द्वारा संचालित जैन विद्या संस्थान, भट्टारकजी की नसियाँ, सवाई रामसिंह रोड़, जयपुर-4 तथा अपभ्रंस साहित्य अकादमी द्वारा निर्धारित उपर्युक्त पाठ्यक्रम भारत स्थित उन अध्ययनार्थियों के लिये होंगे जिन्होंने किसी भी विश्वविद्यालय से स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की है। इसका माध्यम हिन्दी भाषा होगा। इसमें हिन्दी तथा प्रान्तीय भाषा विभागों के साथ-साथ अन्य सभी विभागों के अध्यापक, शोधार्थी, अध्ययनरत छात्र एवं संस्थानों में कार्यरत विद्वान सम्मिलित हो सकेंगे। नियमावली एवं आवेदन पत्र अकादमी कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड़, जयपुर-4 से प्राप्त करें। पाठ्यक्रम का सत्र 1 जनवरी 2003 से 31 दिसम्बर 2003 तक रहेगा। निर्धारित आवेदन पत्र जयपुर कार्यालय से मंगवाकर 30 अक्टूबर 2002 तक भेजें।

प्रवेश अनुमति मिलने पर पाठ्यक्रम का शुल्क रु. 150/- ड्राफ्ट द्वारा दिनांक 30.11.2002 तक भेजना होगा।

■ डॉ. कमलचन्द सोगानी, संयोजक

## विद्वत् परिषद द्वय के चुनाव सम्पन्न

अ.भा. दि. जैन विद्वत् परिषद (डॉ. रमेशचन्द्र जैन गुट) के त्रिवार्षिक चुनाव दिनांक 13 दिसम्बर 2001 को देवबंद (जिला सहारनपुर) में डॉ. रमेशचन्द्र जैन की अध्यक्षता में निम्न प्रकार किये गये -

**अध्यक्ष - डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी' (वाराणसी),** उपाध्यक्ष - डॉ. शीतलचन्द जैन (जयपुर),  
मंत्री - डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती' (बुरहानपुर), संयुक्त मंत्री - डॉ. विमला जैन (फिरोजाबाद),  
उपमंत्री - डॉ. नैमीचन्द जैन (खुरई), कोषाध्यक्ष - ब्र. पं. अमरचन्द जैन (कुंडलपुर), प्रकाशन  
मंत्री - डॉ. कमलेशकुमार जैन (वाराणसी)। डॉ. रमेशचन्द्र (बिजनौर), डॉ. वृषभ प्रसाद जैन व  
डॉ. विजयकुमार (लखनऊ), डॉ. सुरेशचन्द्र व डॉ. हुकमचंद जैन (दिल्ली), डॉ. सुपाश्वकुमार (बड़ौत),  
डॉ. विजयकुमार (वैशाली), डॉ. प्रेमचन्द रावका व डॉ. सनतकुमार (जयपुर), डॉ. एच.पी. संगवे  
(सोलापुर), डॉ. शुभचन्द्र (मैसूर), पं. पूर्णचन्द 'सुमन' (दुर्ग), पं. लालचन्द 'राकेश' (गंजबासोदा)  
कार्यकारिणी सदस्य चुने गये।

स्वस्ति श्री चारुकीर्तिजी भट्टारक (श्रवणबेलगोला), संहितासुरी पं. नाथूलालजी व पं. रतनलालजी  
(इन्दौर), प्रो. उदयचन्द जैन (वाराणसी), पं. गुलाबचंद 'पुष्प' (टीकमगढ़), डॉ. नन्दलाल जैन (रीवा),  
डॉ. रतनचन्द जैन (भोपाल) तथा डॉ. भागचन्द 'भास्कर' (नागपुर) संरक्षक बने। ज्ञातव्य है कि  
पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज इस समय देवबन्द में ही विराजमान थे।

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद (डॉ. राजाराम गुट) के त्रिवर्षीय चुनाव  
आचार्य श्री विद्यानन्दजी महाराज के सान्निध्य में तथा कार्याध्यक्ष डॉ. हुकमचंद 'भारिल्ल' की अध्यक्षता  
में सम्पन्न परिषद की साधारण सभा की बैठक में निम्न प्रकार किये गये -

**अध्यक्ष - पं. प्रकाशचन्द्र जैन 'हितैषी' शास्त्री (दिल्ली),** कार्याध्यक्ष - डॉ. हुकमचन्द 'भारिल्ल'  
(जयपुर), उपाध्यक्ष - डॉ. सुदर्शनलाल जैन (वाराणसी), महामंत्री - डॉ. सत्यप्रकाश जैन (दिल्ली),  
मंत्री - डॉ. राजेन्द्रकुमार बंसल (अमलाई), संगठन मंत्री - डॉ. उदयचन्द्र जैन (उदयपुर), प्रचार  
मंत्री - श्री अखिल बंसल (जयपुर) एवं कोषाध्यक्ष - पं. अशोक गोयल शास्त्री (दिल्ली)। डॉ.  
विमलप्रकाश जैन (दिल्ली), डॉ. बी.एल. सेठी (झुन्झुनू), डॉ. पी.सी. जैन (जयपुर), श्री अनूपचन्द  
जैन एडवोकेट (फिरोजाबाद), श्री श्रेणिक अन्नदाते (डोबिवली), डॉ. कमलेश जैन (दिल्ली), पं. शांतिकुमार  
पाटिल (जयपुर), पं. हेमचन्द जैन (भोपाल), पं. महेन्द्रकुमार जैन शास्त्री (हस्तिनापुर), पं. कस्तूरचन्द्र  
जैन (विदिशा) तथा श्री आनन्द प्रकाश जैन (दिल्ली) कार्यकारिणी सदस्य चुने गये। इनके अलावा  
डॉ. एस.पी. जैन (धारवाड़) तथा श्री सतीश जैन (दिल्ली) को कार्यकारिणी समिति द्वारा सहवरण  
किया गया।

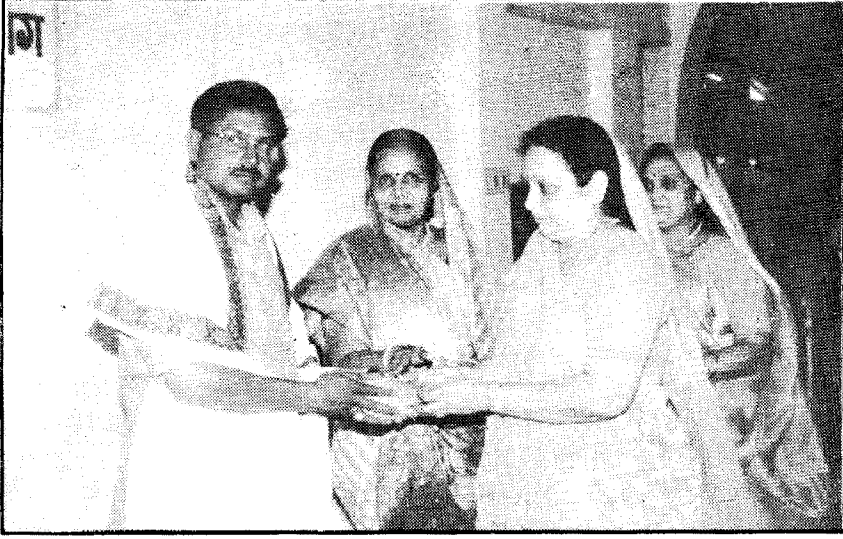
स्वस्ति श्री भट्टारक चारुकीर्तिजी, पं. नाथूलालजी शास्त्री, डॉ. उदयचन्द जैन, ब्र. पं. माणिकचन्दजी  
भिसीकर, डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री, डॉ. राजाराम जैन, पं. चुन्नीलाल शास्त्री तथा डॉ. त्रिलोकचन्द  
कोठारी संरक्षक बनें।

सभी चयनित विद्वानों को कुंदकुंद ज्ञानपीठ परिवार की हार्दिक बधाई।

## भगवान महावीर दिगम्बर जैन विद्वत् समिति का गठन

भगवान महावीर के 2600 वें जन्म कल्याणक महोत्सव वर्ष में उनके सर्वोदयी सिद्धान्तों  
के प्रचार-प्रसार हेतु राजस्थान के जैन विद्वानों द्वारा 'भगवान महावीर दिगम्बर जैन विद्वत् समिति'  
का गठन किया गया। जैन समाज के बच्चों एवं युवावर्ग में जो नैतिक जीवन मूल्यों का निरन्तर  
हास हो रहा है, उसे रोकने एवं नैतिक, सदाचार तथा श्रावकोचित जीवन शैली के संस्कार देने  
के संकल्प के साथ समाज को उन्नत करने के कार्य हेतु इस संस्था का गठन किया गया है।  
समिति की प्रथम कार्यकारिणी का गठन डॉ. जिनेन्द्र जैन की अध्यक्षता में किया गया। उपाध्यक्ष  
डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन - लाडलू, महामंत्री पंडित अरविन्दकुमार जैन शास्त्री - सुजानगढ़, कोषाध्यक्ष  
पंडित वीरेन्द्रकुमार जैन - सुजानगढ़, प्रकाशन मंत्री डॉ. विमलकुमार जैन - जयपुर, संयुक्त मंत्री  
डॉ. भागचन्द जैन शास्त्री - जयपुर, प्रचार मंत्री श्री निर्मलकुमार जैन - सुजानगढ़, विधि सलाहकार  
डॉ. प्रभात जैन - जयपुर को मनोनीत किया गया।

## ‘मेरा महावीर कितना मेरा’ प्रतियोगिता सम्पन्न



### डॉ. अनुपम जैन का सम्मान करते हुए बहनें

भगवान महावीर 2601 वीं जन्म जयंती सप्ताह के अन्तर्गत दि. जैन महासमिति महिला प्रकोष्ठ इन्दौर संभाग द्वारा ‘मेरा महावीर कितना मेरा’ विचार प्रतियोगिता का आयोजन दिग. जैन मंदिर, पलासिया - इन्दौर में किया गया। श्रीमती कौशल्या जैन पतंगिया (जैन कालोनी) को प्रथम, श्रीमती ज्योति जैन (इन्द्रलोक कालोनी) को द्वितीय तथा सुभाष वेद (अग्रसेन नगर) ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। निर्णायक थे श्रीमती सुशीला सालगिया, श्रीमती संगीता मेहता एवं श्रीमती शकुन्तला बड़जात्या।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे निर्मल एण्ड कंपनी इन्टरप्राइजेस के डायरेक्टर श्री निर्मल जी जैन। अध्यक्षता की दिग. जैन महासमिति महिला प्रकोष्ठ मध्यांचल की अध्यक्षा श्रीमती पुष्पा कासलीवाल ने तथा विशेष अतिथि के रूप में उपस्थित थे अर्हत् वचन शोध पत्रिका के सम्पादक डॉ. अनुपम जैन, जिन्हें अभी-अभी कोलकाता में जैन राष्ट्र गौरव से सम्मानित किया गया है। इस अवसर पर संस्था की अध्यक्षा श्रीमती विजया पहाड़िया द्वारा शाल, श्रीफल से उनका स्वागत किया गया। श्रीमती शशि रॉवका और मीना जैन ने अतिथियों का स्वागत किया। कार्यक्रम का संचालन श्रीमती पुष्पा पांड्या व श्रीमती उर्मिला जैन ने किया तथा कार्यक्रम की संयोजिका थी श्रीमती आशा सोनी। आभार माना सहसचिव पुष्पा कटारिया ने।

### वर्णीजी की मूर्ति का अनावरण

7 दिसम्बर 2001 को श्री कुन्दकुन्द जैन महाविद्यालय, खतौली के परिसर में नवनिर्मित वर्णी-वाटिका में जैन जगत के गांधी नाम से विख्यात पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी की अष्ट धातु से निर्मित साढ़े तीन फुट ऊँची पद्मासनस्थ मूर्ति का अनावरण केन्द्रीय कपड़ा राज्यमंत्री श्री वी. धनंजयकुमार जैन द्वारा सराकोद्वारक उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज और मुनि श्री वैराग्यसागरजी महाराज के सान्निध्य में धूमधाम से सम्पन्न हुआ। समारोह की अध्यक्षता साहू श्री रमेशचन्द जैन ने की।

पूज्य उपाध्याय ज्ञानसागरजी ने अपने उद्बोधन में कहा कि वर्णीजी का जीवन शिक्षा के क्षेत्र तक सीमित न रहकर करुणा, दया व वात्सल्य की अविरल धारा था। इस अवसर पर ‘वर्णी स्मारिका’ और डॉ. श्रीमती ज्योति जैन द्वारा लिखित ‘वर्णीजी की राष्ट्रीयता’ फोल्डर का विमोचन भी हुआ।

## वर्धमान महावीर स्मृति ग्रन्थ का लोकार्पण

‘जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर के अहिंसावाद, अनेकान्तवाद, स्यादवाद एवं अपरिग्रहवाद जैसे कालजयी संदेश आज के भौतिकवादी वातावरण में भी पूरी तरह प्रासंगिक बने हुए हैं। उन्होंने आत्मिक विकास के लिये जो रास्ता बताया, वह व्यक्ति के चरित्र को उन्नत तो करता ही है, साथ ही सम्पूर्ण समाज और राष्ट्र के लिये भी सर्वतोमुखी उन्नति प्रदान करता है। जीवन में अहिंसा, विचारों में अनेकान्त, वाणी में स्वादवाद और समाज में अपरिग्रह की भावनायें यदि आ जायें तो हिंसा आदि पापों को कोई स्थान इस देश में नहीं बचेगा तथा आपस में प्रेम, मैत्री और सहयोग की भावना उस चरम शिखर पर होगी, जहाँ हमारे धर्मग्रन्थ सर्वोत्तम लक्ष्य के रूप में व्यक्ति को पहुँचने की प्रेरणा देते हैं। लोकतंत्र का बाह्य रूप भले ही भारतीय न हो, लेकिन उसकी आत्मा भारतीय है। अनेकान्तवाद को लोकतंत्र बाह्यरूप भले ही भारतीय न हो, लेकिन अनेकान्तवाद न हो तो लोकतंत्र नहीं होगा। आज के इस कार्यक्रम में भगवान महावीर के जीवन - दर्शन, परम्परा और प्राकृत भाषा के सम्बन्ध में जिस विशालकाय स्मृति ग्रन्थ का लोकार्पण हुआ है, वह अपने आप में इस 2600 वें जन्म कल्याणक वर्ष की अतिविशिष्ट उपलब्धि है।



साथ ही प्राकृत भाषा एवं संस्कृत भाषा के जिन विशिष्ट विद्वानों का यहाँ सम्मान किया गया है, वह सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति का सम्मान है। मैं स्वयं भगवान महावीर के सिद्धान्तों में पूर्ण आस्था रखता हूँ और मेरा दृढ़ विश्वास है कि पूज्य आचार्य श्री विद्यानन्दजी

महाराज जैसे महान सन्त ही आज के वातावरण में राष्ट्र

‘वर्धमान महावीर’ ग्रंथ का लोकार्पण करते पूर्व लोकसभा अध्यक्ष श्री शिवराज पाटिल को सही दिशाबोध दे सकते हैं।’ ये विचार ‘वर्धमान महावीर स्मृति ग्रन्थ लोकार्पण’ एवं ‘आचार्य कुन्दकुन्द’, आचार्य उमास्वामी पुरस्कारों के समर्पण समारोह के सुअवसर पर पूर्व लोकसभाध्यक्ष एवं वर्तमान में विपक्ष के उपनेता माननीय श्री शिवराज पाटिल ने अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में प्रस्तुत किये।

इस समारोह का आयोजन भगवान् महावीर के 2600 वें जन्मकल्याणक वर्ष के सुअवसर पर दिनांक 28 अप्रैल, 2002 रविवार को अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के जवाहरलाल नेहरू सभागार में गरिमापूर्वक किया गया। समारोह में स्वागत - भाषण श्रीमती सरयू दफ्तरी ने दिया तथा समारोह का संयोजन एवं संचालन डॉ. सुदीप जैन ने किया। कृतज्ञता - ज्ञापन भारतीय ज्ञानपीठ के प्रबन्ध न्यासी साहू रमेशचन्द्र जैन ने किया। इस सुअवसर पर जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति प्रो. कपिल कपूर, पुरातत्ववेत्ता डॉ. मुनीशचन्द्र जोशी, प्रो. बी.आर. शर्मा, श्री सतीशचन्द्र जैन (S.C.J.) श्री चक्रेश जैन बिजलीवाले, कुन्दकुन्द भारती न्यास के मंत्री श्री सुरेशचन्द्र जैन एवं कुन्दकुन्द भारती न्यास के न्यासीगण तथा अन्य अनेकों महानुभाव उपस्थित थे।

## पुरुलिया में डेढ़ हजार साल पुरानी मूर्तियाँ / मंदिरों के अवशेष मिले

पश्चिमी बंगाल के पुरुलिया जिला अन्तर्गत अगयानरों अंचल स्थित कुसटाईड ग्राम में गत 19 अगस्त 01 को की गई खुदाई के क्रम में भगवान महावीर समेत कई मूर्तियाँ, कलश तथा मंदिरों के पौराणिक ध्वंसावशेष प्राप्त हुए हैं। सभी मूर्तियाँ पत्थरों को गढ़कर बनायी गई हैं। कलश, चाक तथा मंदिर भी पत्थर के बने हुए हैं। मूर्तियों तथा अन्य ध्वंसावशेषों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त स्थान पर कभी जैनियों की बस्तियाँ तथा मंदिर थे। अनुमान के तौर पर उक्त अवशेष कितना पुराना तथा किस काल का है, इस संबंध में निश्चित रूप से अभी कुछ कहना मुश्किल है।

खुदाई के क्रम में भगवान महावीर की 34 इंच की एक सिरविहीन मूर्ति, साढ़े चौंतीस इंच ऊँचा काले रंग का एक अद्भुत कलश, साढ़े तेरह तथा बीस इंच ऊँचे दो अन्य कलश मिले हैं, तीनों कलशों के ऊपर पत्थर के ही पत्ते बने हुए हैं।

सभी अवशेष जमीन के नीचे अवस्थित मंदिर के कमरों में थे। खुदाई के क्रम में लोगों ने एक-एक कर उन्हें बाहर निकाल कर रख दिया है।

तीन बड़े तथा एक छोटे कमरे में विभक्त उक्त मंदिर चौकस पत्थरों से बना था जिसकी दीवारों की चौड़ाई लगभग ढाई फुट है। पास-पास सटे दोनों कमरों की लम्बाई, चौड़ाई लगभग 8X8 फुट है जबकि बड़ा कमरा 12X12 फुट का है। मंदिर के पश्चिम की ओर उसका ढाई फुट चौड़ा मुख्य दरवाजा है। मंदिर के निर्माण में सीमेंट बालू का उपयोग नहीं हुआ है।

---

## प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी के भूतपूर्व निदेशक, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त जैन विद्वान डॉ. सागरमलजी जैन ने जैन, बौद्ध और हिन्दू धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र में अध्ययन-अध्यापन, शोध कार्य एवं ज्ञान-ध्यान साधना करने के लिये शाजापुर नगर की दुपाड़ा रोड पर प्राच्य विद्यापीठ की स्थापना की है। इसका विशाल एवं सुन्दर भवन बनकर तैयार हो गया है। इस विद्यापीठ को वर्ष 2002 में विक्रम वि.वि., उज्जैन से मान्यता भी प्राप्त हो गई है।

प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर से शोधार्थी के रूप में जैन, बौद्ध और हिन्दू धर्म और दर्शन से संबंधित किसी भी विषय पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर विक्रम वि.वि., उज्जैन से पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की जा सकती है। प्राच्य विद्यापीठ में 7 सुसज्जित अध्ययन-अध्यापन हॉल, किचन व स्टोर्स तथा प्रसाधन की समुचित व्यवस्था है। इस भवन में एक सुसज्जित पुस्तकालय है जिसमें लगभग 10000 के करीब पुस्तकें, पत्रिकाएँ एवं पुरानी पांडुलिपियाँ हैं जिन पर शोध कार्य अपेक्षित है।

डॉ. सागरमल जैन के सद्प्रयास से जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूँ (राज.) (मानित वि.वि.) ने अपने द्वारा संचालित पत्राचार पाठ्यक्रमों के लिये अध्ययन एवं परीक्षा केन्द्र के रूप में इस संस्थान को मान्यता प्रदान की है। अब यहाँ से विद्यार्थी इन विषयों में बी.ए./एम.ए. की डिग्री हेतु भी सम्मिलित हो सकते हैं। इन डिग्रियों का रोजगार की दृष्टि से वही उपयोग है जो अन्य विषयों से सम्बन्धित डिग्रियों का है। वर्तमान में विद्यापीठ के पुस्तकालय का लाभ लेकर 2 छात्र/छात्रा जैन विद्या में एम.ए. पूर्वाद्ध, 9 छात्र/छात्राएँ एम.ए. उत्तरार्द्ध में अध्ययनरत हैं। इसके अतिरिक्त तीन जैन साध्वियाँ जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ से पी.एच.डी. की उपाधि के लिये अपना शोध प्रबन्ध तैयार कर रही हैं। साथ ही 2 छात्रों ने विक्रम वि.वि. से पी.एच.डी. की डिग्री हेतु पंजीयन कराने के लिये आवेदन किया है।

इसी विद्यापीठ में दिनांक 28,29,30 मार्च 2002 को पू. भानुविजयजी महाराज (पाटण-गुजरात) एवं डॉ. सागरमल जैन के मंगल सान्निध्य में तीन दिवसीय मौन ज्ञान ध्यान शिविर का आयोजन किया गया। इस शिविर में स्थानीय धर्मप्रेमियों के अतिरिक्त गुजरात एवं मध्यप्रदेश के विभिन्न नगरों से पधारे लगभग 125 शिविरार्थियों ने सम्मिलित होकर ज्ञान ध्यान साधना का लाभ लिया।

## तीर्थस्थल आस्था और विश्वास से बनते हैं, इतिहास एवं भूगोल से नहीं

श्री 108 सूर्यसागर दिगम्बर जैन नसिया, भिण्ड के प्रांगण में दिगम्बर जैन महासमिति, खालियर-चम्बल संभाग के अन्तर्गत भिण्ड शहर की मेन इकाई, इकाई नं. 2 बंगला बाजार, महावीर गंज, भूता बाजार एवं महिला इकाई द्वारा 7 सितम्बर 2002 को आयोजित विचार गोष्ठी में डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर द्वारा 'भगवान महावीर की जन्मस्थली कुण्डलपुर (नालन्दा) या वैशाली?' विषय पर मुख्य वक्ता के रूप में समस्त इकाईयों के सदस्य एवं जैन समाज के उपस्थित प्रबुद्ध जनों के बीच अपने उद्बोधन में कहा कि दिगम्बर जैन आम्नाय के प्राचीनतम मान्य ग्रन्थों में भगवान महावीर की जन्मस्थली कुण्डलपुर को ही मान्यता प्रदान की गई है। दिगम्बर जैन ग्रन्थों - तिलोयपण्णत्ति, धवला, महाधवला, षट्खण्डागम आदि सभी ग्रन्थों में उक्त विषय पर विस्तार से वर्णन मिलता है। आपने अनेक ग्रन्थों के उदाहरण के साथ ही इस विवाद को पैदा किये जाने पर क्षोभ व्यक्त किया। ज्ञातव्य है कि डॉ. जैन होल्कर साईस कालेज, इन्दौर में गणित के प्राध्यापक हैं एवं आपने जैन गणित से पीएच.डी. एवं एम.फिल. किया है। आप समाज के लिये पूर्ण रूप से समर्पित व्यक्तित्व हैं। आप तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ के महामंत्री हैं तथा दिगम्बर जैन महासमिति पत्रिका नई दिल्ली, अर्हत् वचन इन्दौर एवं दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र निर्देशिका के प्रधान सम्पादक के अलावा अन्य अनेक जैन पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक मंडल में हैं।



आपने अपने उद्बोधन में जैन समुदाय को अल्पसंख्यक घोषित किये जाने की आवश्यकता एवं भगवान महावीर की जन्मस्थली के विवाद के पटाक्षेप पर विशेष बल दिया। आपने कहा कि भगवान महावीर की जन्मस्थली के रूप में कुण्डलपुर (नालन्दा) को समस्त दिगम्बर जैन समाज हजारों वर्षों से मानता चला आ रहा है एवं अपनी श्रद्धा व्यक्त करने हेतु वहाँ की वन्दना करने जाता है। वैशाली को भगवान महावीर की जन्मस्थली के रूप में मान्यता प्रदान किये जाने के लिये कुछ जैन एवं जैनोतर विद्वान नवीन शोध के नाम पर प्रयास कर रहे हैं। तीर्थस्थल हमेशा श्रद्धा एवं विश्वास से ही बनते हैं। वह इतिहास एवं भूगोल के नाम पर नवीन शोध के आधार पर बदले नहीं जा सकते। आपने दिगम्बर जैन महासमिति के द्वारा किये जा रहे प्रयासों की सराहना करते हुए प्रत्येक दिगम्बर जैन धर्मावलम्बी से इसके सदस्य बनने की अपील की।

डॉ. वीरेन्द्र जैन द्वारा शहर की समस्त इकाईयों की ओर से एक प्रस्ताव भगवान महावीर की जन्मस्थली कुण्डलपुर के पक्ष में पारित कर भेजने का सुझाव दिया जिसे सभी उपस्थित महिला एवं पुरुषों ने स्वीकृति प्रदान की। संभाग एवं शहर की समस्त इकाईयों की ओर से डॉ. अनुपम जैन को अभिनन्दन पत्र सभा की अध्यक्षता कर रहे श्री प्रमोद जैन सराफ ने भेंट किया।

■ डा. एस. के. जैन, संभागीय अध्यक्ष - दिग. जैन महासमिति



## श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार एवं सराक पुरस्कार 2002

सराकोद्धारक संत, परमपूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज की प्रेरणा से स्थापित श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ द्वारा जिनवाणी के प्रचार-प्रसार में अपने-अपने क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान देने वाले विशिष्ट विद्वानों को निम्नांकित पाँच श्रुत संवर्द्धन वार्षिक पुरस्कारों से एवं सराक क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य हेतु संस्था अथवा व्यक्ति को प्रतिवर्ष सम्मानित किया जाता है। पूज्य उपाध्यायश्री के पावन सान्निध्य में आयोजित होने वाले भव्य समारोह में प्रत्येक चयनित विद्वान को रु. 31,000/- (सराक पुरस्कार हेतु रु. 25,000/-) की सम्मान निधि, प्रशस्ति पत्र, शाल एवं श्रीफल से सम्मानित किया जाता है। इस वर्ष हेतु पुरस्कारों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है -

### 1. आचार्य शांतिसागर (छाणी) स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार - 2002

यह पुरस्कार जैन आगम साहित्य के पारम्परिक अध्येता/टीकाकार विद्वान को आगमिक ज्ञान के संरक्षण में उसके योगदान के आधार पर प्रदान किया जाता है।

### 2. आचार्य सूर्यसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार - 2002

यह पुरस्कार प्रवचन निष्णात एवं जिनवाणी की प्रभावना करने वाले विद्वान को प्रदान किया जाता है।

### 3. आचार्य विमलसागर (भिण्ड) स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार - 2002

यह पुरस्कार जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने वाले जैन पत्रकार को दिया जाता है।

### 4. आचार्य सुमतिसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार - 2002

यह पुरस्कार जैन विद्याओं के शोध/अनुसंधान के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य हेतु प्रदान किया जाता है। चयन का आधार समग्र योगदान होगा।

### 5. मुनि वर्द्धमानसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार - 2002

यह पुरस्कार जैन धर्म/दर्शन के किसी भी क्षेत्र में लिखी हुई मौलिक, शोधपूर्ण, अप्रकाशित कृति पर प्रदान किया जाता है।

### 6. सराक पुरस्कार - 2002

यह पुरस्कार सराक क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के आधार पर दिया जाता है।

उपरोक्त पुरस्कार हेतु कोई भी विद्वान/सामाजिक कार्यकर्ता/संस्था निर्धारित प्रस्ताव पत्र पर अपने आवेदन 15 नवम्बर 2002 तक निम्न पते पर प्रेषित कर सकते हैं। प्रत्येक पुरस्कार हेतु प्रस्ताव पृथक-पृथक प्रस्ताव पत्र पर सभी आवश्यक संलग्नकों सहित भेजे जाने चाहिये। प्रस्ताव पत्र एवं नियमावली श्रुत संवर्द्धन संस्थान, प्रथम तल, 247 दिल्ली रोड, मेरठ (उ.प्र.) से प्राप्त की जा सकती है।

■ डॉ. अनुपम जैन  
पुरस्कार संयोजक

ज्ञानछाया, डी - 14, सुदामा नगर, इन्दौर - 452 009

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित 'अर्हत् वचन' का जनवरी-मार्च 2002 अंक अभी प्राप्त हुआ। पत्रिका हाथ आते ही शुरु से अंत तक पूरी पढ़ गया। सचमुच आपका संस्थान एक बहुत अच्छी शोधपूर्ण पत्रिका प्रकाशित करता है। डॉ. राधाचरण गुप्त का लेख 'जैन गणित पर आधारित नारायण पंडित के कुछ सूत्र' बहुत सारी जानकारियों से युक्त है। इन सूत्रों के आधार पर अनेकों शोध कार्य किये जा सकते हैं। डॉ. (ब्र.) प्रभा जैन एवं प्रो. एल. सी. जैन का लेख 'आधुनिकतम मस्तिष्क सम्बन्धी खोजें - जैन कर्म सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में' पढ़कर बहुत सारी नई जानकारियाँ प्राप्त हुईं। पत्रिका की समस्त सामग्री पठनीय, ज्ञानवर्द्धक व बहुत सारी जानकारियों से युक्त है।

■ **राजेन्द्र पटेरिया**

संपादक - खनन भारती, नागपुर

---

पत्रिका स्तर अति प्रशंसनीय है। इतनी महंगाई में इतनी अच्छी पत्रिका प्रकाशित करने हेतु आप एवं आपकी संस्था साधुवाद की पात्र है।

■ **डॉ. विजयकुमार जैन, लखनऊ**

---

शोध पत्रिका 'अर्हत् वचन' का प्रस्तुत अंक गणित विषयक चयनित सामग्री के कारण गणित क्षेत्र में विशेषाधिकार ज्ञात होता है। साथ ही अन्य गणितज्ञों ने जैनाचार्यों द्वारा प्रणीत प्राचीन सूत्रों का अवलम्बन लिया यह भी बोध होता है। 'जैन साहित्य में ध्वनि विज्ञान' तथा 'जैन कर्म सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक मस्तिष्क संबंधी खोजें' आलेख नवीन जानकारी प्रदान करते हैं। पत्रिका पठनीय, संकलनीय एवं शोधार्थियों के लिये विशेष उपयोगी है।

3.10.02

■ **संपादक - जैन मित्र (साप्ताहिक)**

---

*Visited the Kundakunbda Gyanpeeth, held discussions with Dr. Anupam Jain and saw the library.*

*I am impressed by the sincerity of Dr. Anupam Jain and his enthusiasm to make it a good academic and research institute. With the dedicated attitude in him, I am sure that this will develop into a good institute. Nothing could be better than a good academic institute. My best wishes.*

16.08.02

■ **K. P. Joshi**

Professor, School of Physics, D.A.V.V., Indore

---

*I am extremely happy to visit your institute. You are doing great service for the cause of study and research in Jainology. You are maintaining excellent library for use by scholars and students.*

*I was amazed to see the work of research on 'Siri Bhuwalaya', which will bring to light knowledge of ancient wisdom of our country. I wish your institute great success.*

19.08.02

■ **Dulichand Jain**

Secretary - Research Foundation for Jainology, Chennai

## कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार

श्री दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, इन्दौर द्वारा जैन साहित्य के सृजन, अध्ययन, अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के अन्तर्गत रुपये 25,000 = 00 का कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रतिवर्ष देने का निर्णय 1992 में लिया गया था। इसके अन्तर्गत नगद राशि के अतिरिक्त लेखक को प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिह्न, शाल, श्रीफल भेंट कर सम्मानित किया जाता है।

1993 से 1999 के मध्य संहितासूरि पं. नाथूलाल जैन शास्त्री (इन्दौर), प्रो. लक्ष्मीचन्द्र जैन (जबलपुर), प्रो. भागचन्द्र 'भास्कर' (नागपुर), डॉ. उदयचन्द्र जैन (उदयपुर), आचार्य गोपीलाल 'अमर' (नई दिल्ली), प्रो. राधाचरण गुप्त (झांसी) एवं डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन (इन्दौर) को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है।

वर्ष 2000 एवं 2001 हेतु प्राप्त प्रविष्टियों का मूल्यांकन कार्य प्रगति पर है। वर्ष 2002 हेतु जैन विद्याओं के अध्ययन से सम्बद्ध किसी भी विधा पर लिखी हिन्दी/अंग्रेजी, मौलिक, प्रकाशित/अप्रकाशित कृति पर प्रस्ताव 30 दिसम्बर 02 तक सादर आमंत्रित हैं। निर्धारित प्रस्ताव पत्र एवं नियमावली कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ कार्यालय में उपलब्ध है।

देवकुमारसिंह कासलीवाल

अध्यक्ष

30.09.2002

डॉ. अनुपम जैन

मानद सचिव

## जम्बूद्वीप पुरस्कार समर्पित

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर (मेरठ) द्वारा वर्ष 2000 से प्रवर्तित जम्बूद्वीप पुरस्कार के अन्तर्गत रु. 25,000/- की नगदराशि, शाल, श्रीफल एवं रजत प्रशस्ति प्रदान की जाती है।

वर्ष 2000 का पुरस्कार इंजी. श्री के. सी. जैन (हस्तिनापुर) को दिल्ली में समर्पित किया गया था। वर्ष 2001 एवं 2002 के पुरस्कार क्रमशः ज्योतिषज्ञ श्री धनराज जैन (अमीनगर सराय) तथा डॉ. शेखरचन्द्र जैन (अहमदाबाद) को 20.10.2002 को पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के ससंध सान्निध्य में तीर्थकर ऋषभदेव तपस्थली, प्रयाग में समर्पित किये गये।

पुरस्कृत विद्वानों को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार की ओर से बधाई।



# डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर 'जैन राष्ट्र गौरव' अलंकरण से विभूषित



भगवान महावीर 2600 वें जन्म जयंती महोत्सव वर्ष में देश के प्रख्यात पत्रकार, समाजसेवी एवं शाकाहार कार्यकर्ता डॉ. चिरंजीलाल बगड़ा के संयोजकत्व में गठित अखिल भारतीय दिगम्बर जैन प्रतिभा सम्मान समारोह समिति का गठन एक वर्ष पूर्व किया गया था। समिति ने इस योजना का सुनियोजित ढंग से प्रचार किया, फलतः सम्पूर्ण देश से शिक्षा,

साहित्य, विज्ञान, खेलकूद, संगीत, चिकित्सा आदि विविध क्षेत्रों की 338 प्रतिभाओं के प्रस्ताव प्राप्त हुए। विशेषज्ञों की सूक्ष्म परीक्षण समिति ने प्रथम चरण में 60 प्रतिभाओं का चयन किया, तदुपरान्त इन 60 प्रस्तावों का पाँच सदस्यीय अखिल भारतीय निर्णायक मंडल द्वारा मूल्यांकन कर सर्वश्रेष्ठ 26 प्रतिभाओं का चयन किया गया। निर्णायक मंडल निम्नवत् था - (1) श्री प्रदीपकुमारसिंह कासलीवाल (इन्दौर), (2) प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन (फिरोजाबाद), (3) श्री बाबूभाई गांधी (अकलूज-महाराष्ट्र), (4) श्री मिलापचन्द डंडिया (जयपुर) तथा (5) डॉ. चिरंजीलाल बगड़ा (कोलकाता)। चयनित प्रतिभाएँ निम्नवत् हैं -

मास्टर नितिन जैन - सहारनपुर, मास्टर आयुष जैन - मेरठ, श्रीमती अंजली जैन - नई दिल्ली, डॉ. डी. सी. जैन - लखनऊ, कु. पल्लवी कासलीवाल-नासिक, कुमारी स्नेहा गांधी-सोलापुर, श्री पार्श्वनाथ उपाध्ये-बेलगाँव, कु. आकृति आहा-बिलासपुर, डॉ. अनुपम जैन - इन्दौर, श्री विजयदादा आवति-जयसिंगपुर, सौ. सुरेखा सी. शाहा - सोलापुर, श्री सुल्तानसिंह जैन-रुड़की, डॉ. प्रेमचन्द गोदरे-सागर, डॉ. जी. जवाहरलाल-हैदराबाद, श्री सुधीर जैन-सतना, श्रीमती अर्चना पाटनी-थाने, कुमारी सारिका जैन-तेजपुर, श्री डी.एन. अक्की-गुलबर्गा, श्री सुरेश जैन-नई दिल्ली, प्रो. चन्द्रसेनकुमार जैन-भुवनेश्वर, कु. इन्दू जैन-वाराणसी, प्रो. भागचन्द्र 'भागेन्दु'-दमोह, कु. अस्मिता काला-जयपुर, डॉ. संदीप नारद-इन्दौर, श्री एस. एम. जैन-कोटा, श्री मिश्रीलाल जैन-गुना।

जैनाचार्यों के गणितीय अवदान का विशिष्ट अध्ययन कर जैन गणित के शोध के माध्यम से राष्ट्र एवं समाज निर्माण में विशिष्ट योगदान देने वाले डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर को कोलकाता के भव्य विज्ञान नगरी सभागार (साइंस सिटी आडिटोरियम) में 15 अप्रैल 2002 को 'जैन राष्ट्र गौरव' अलंकरण से सम्मानित किया गया। इस अलंकरण में धातु निर्मित भव्य प्रतीक एवं काष्ठांकित प्रशस्ति भी प्रदान की गई।

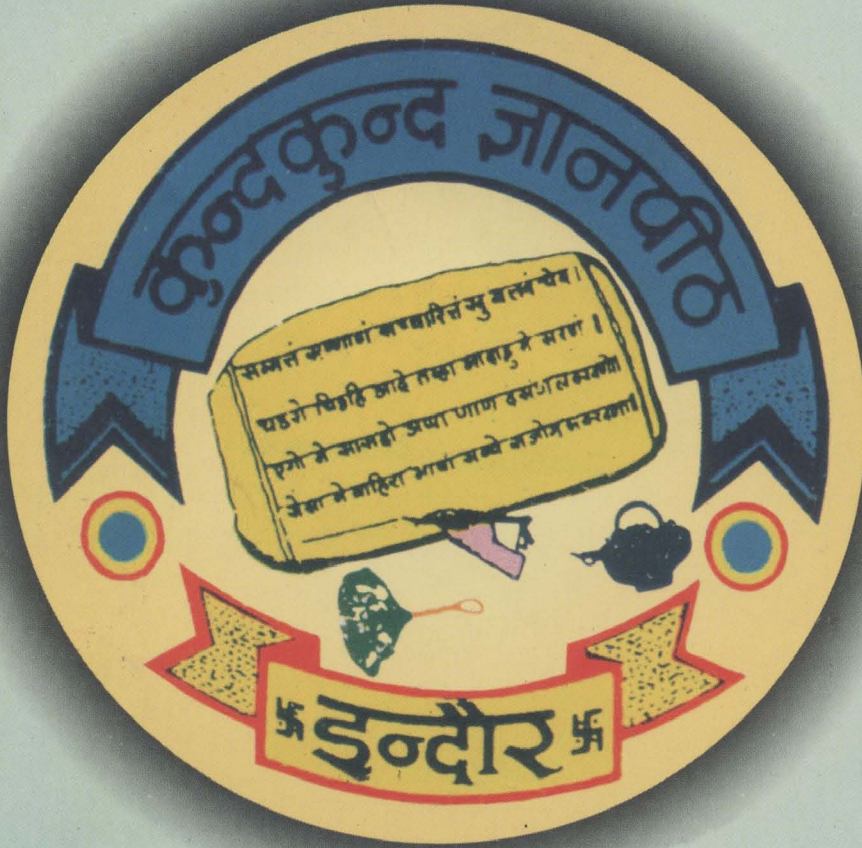
इस अवसर पर डॉ. जैन ने जैन गणितीय परम्परा के इतिहास पर प्रकाश डाला। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के अध्यक्ष श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल, होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. नरेन्द्र धाकड़, पूर्व कुलपति प्रो. ए. ए. अब्बासी, ज्ञानपीठ के अन्य निदेशकों, प्रसिद्ध शिक्षाविदों, समाजसेवियों एवं प्रबुद्धजनों ने डॉ. अनुपम जैन को बधाई दी।

जयसेन जैन  
सम्पादक - सन्मति वाणी



I.S.S.N. 0971-9024

अर्हत् वचन भारत सरकार के समाचार-पत्रों के महापंजीयक से प्राप्त पंजीयन संख्या 50199/88



स्वामी श्री दि. जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर की ओर से देवकुमारसिंह कासलीवाल द्वारा 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर से प्रकाशित एवं सुगन ग्राफिक्स, सिटी प्लाजा, म. गा. मार्ग, इन्दौर फोन : 538283 द्वारा मुद्रित।